362

हर हर महादेव

गो. नी. दाण्डेकर

शारदा पुस्तकालय
(संभावना शा. द. केंद्र)
क्रमांक.....362.....

हर हर महादेव

हर हर महादेव

POSTAKALYA NEEVADHIMALAYA
VIDHAGAK Sahayata Samiti,
Acc no. 1.2.4

गोपाल नीलकंठ दाण्डेकर

सुरुचि साहित्य
२९, रानी झांसी मार्ग, नयी दिल्ली

प्रकाशक:
सुरुचि साहित्य, नयी दिल्ली

वितरक :
सुरुचि प्रकाशन
दरियागंज, नयी दिल्ली

अनुवादक :
चि० वा० केलकर

मूल्य : ३२.००

© लेखकाधीन

संस्करण : प्रथम, १९८२

मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

HAR HAR MAHADEV
(मूल मराठी से अनूदित) by Gopal Neelkantha Dandekar

परिक्रमा

वागी पिंडारी धावे बोलते। घरवार को, कबीले को बचायें भी तो कितना ? और कब तक ?···घरों में ढूंढ-ढूंढकर वहां मटकों और ठीकरों में रखा चून, नमक, मिरची तक लूट ले गये थे।

अमीन का थाना था शिरवल। वह भी कहीं दूर नहीं था। किन्तु··· अमीन के सिपाही गांव की ओर दो कारणों से आते थे—एक तो वसूली समय पर न पहुंचने के कारण गिरफ्तारी का फरमान लेकर और दूसरा बेगार की जरूरत पड़ने पर।···

धान पीली होते ही अमीन सैनिक भेजता। गांव-गांव उसकी चौकियां बैठतीं। सैनिक घूमते। धान की कुटाई हुई कि उसका दाना-दाना शिरवल पहुंचता। इन दिनों सुरमा लगाये, दुर्गन्धभरे घुड़सवारों की टोलियां हिरडस मावल में ऊधम मचातीं। जिसे चाहे पकड़ते, पीटते। हाथ बांध-कर घोड़ों के पीछे बंधवाकर खिचवाते। कुछ पूछताछ हुई तो उत्तर सुनिश्चित—'इस हरामजादे ने हुजूर की धान छिपायी'। फिर उस फरि-यादी की कौन सुनता ! उसका सारा कबीला कतल कर देने पर भी कोई जवाबदेही नहीं होती थी। मावले किसान खेतों में ढोर जैसे खपते··· जी तोड़ परिश्रम करते। उस सारे श्रम का, सारे कष्टों का सौंधा-सौंधा सोने जैसा कौर मुंह के पास तक पहुंचता कि दावेदार उसका दाना-दाना उठाकर ले जाते। अपने ही बैलों पर लादकर धान को सुभान के किले तक नहीं पहुंचाना पड़ा तो खैर हुई समझो।

× × ×

क्षेत्र पूना। दो-चार हजार की बस्ती। किसी समय का बड़ा ही सुन्दर गांव। घनी हरी झाड़ियों में पला, संजोया, स्वच्छन्द !···

मालोजीराव भोंसले की जागीर का यह गांव था। ··यहां विवाह-कारज होते, जेवनार होतीं, देवताओं के उत्सव होते, भण्डारे होते, मनौं भात बनता।···देवताओं के उत्सवों में नाटक होते, लीलाएं होतीं, स्वांग होते।

चार मुखों वाले ब्रह्माजी कमलासन पर विराजते। सरस्वती मोर पर

शोभा देतीं, बड़ी तोंद वाले गणेश जी बड़े से चूहे पर बैठे दिखते।···

शहाजी राजा ने छत्तीसों गांवों के देशमुखों, देशपाण्डों को बुलावा भेजा था। महारों, कुम्हारों, कारीगरों को भी पुकारा था। बनियों, व्यापारियों को बुलाया था। उन्हीं में बैठकर राजा शहाजी ने अपने मन का संकल्प उन लोगों के सामने खुलकर रखा था,···

"अब यहां से आगे कोई भी आदिलशाही अमीनों को नहीं मानेगा।··· इन छत्तीसों गांवों से आदिलशाही को घास का तिनका भी नहीं पहुंचेगा। बेगार के लिये काली कुतिया भी आदिलशाही के अमल-हुमल में नहीं जायेगी। सभी अपने-अपने हथियार पानी चढ़ाकर, तैयार रखेंगे।···"

स्वराज्य के संकल्पों की ये गुप्त बातें दो से चार मुखों तक होती हुई फूट पड़ीं,···बीजापुर के दरबार में अंगारे भड़क उठे।···आला हजरत ने नाराज होकर रायाराव का नाम पुकारा। उसके आगे पान थाल पहुंचा।···

रायाराव ने अपनी सेना को पूना की ओर कूच करने की आज्ञा दी।···सारा आकाश आदिलशाही के घुड़सवारों की चिल्लाहटों से भर गया।···'या अली, या खुदा' की गर्जना चारों ओर से उठने लगी।··· धूल की धुंध ऐसी छा गयी कि लोग अपना-पराया भी नहीं पहिचान पा रहे थे। देवालयों के कलश मिट्टी में मिल गये, देवमूर्तियां तोड़ दी गयीं, शिव-लिंग लुढ़का दिये गये।··· तब से पूना उदास हो गया, उजाड़ हो गया।

× × ×

सारे के सारे भूस्वामी, देशमुख, पाटील, देशपाण्डे, भाई-बान्धवों की छातियों पर अपने करतब दिखाने में मगन थे। यह जो दावेदार है, निस्सन्तान हो, निपूता हो—यही एकमात्र मंगलकामना! और उसे पूरा करने के लिये आदिलशाही के सरदारों की जूतियां, पन्हैयां उठाते। वे कहते थे, ये करते थे। भाई-बन्धु का नाश हो, उसकी भूमि हमें मिले; यही एकमात्र आशा।···ऐसे घर डुबाने वालों से गरीब कौन-सी आस करें? बेचारी गरीब जनता ने नदियों और जंगलों का आश्रय लिया। बाप-दादों की बसायी बस्तियां, खेड़ा, गांव, खाली होने लगे। सारे के सारे कुटुम्ब-कबीले सह्याद्रि की गोद में, उसी के सहारे छिपकर रहने लगे।

× × ×

ऐसे उस उजाड़ में, ममतामयी जीजाऊ आयीं। यह वार्ता चारों ओर फैलते ही जंगलों, बीहड़ों में घूमते पशुओं के कंकालों में भी चेतना उत्पन्न हुई, मनुष्यों की क्या कहें?···एक क्या, बारहों पठारों और अठारहों घाटियों ने आंखें खोलीं तो देखा कि सभी ओर लोग जाग उठे हैं।···शंख फूंके जा रहे हैं।···

× × ×

"शिववा! सब होने पर भी यदि राज्य का नैतिक अधिष्ठान नहीं है तो उससे क्या करना है? वह सारा राज्य और उसका रत्नों का वैभव मुर्दों की झांकी है।"

चकित बालराजा ने मां से पूछा, "तब राज्य की पूर्णता किससे होती है मां?" जीजाऊ मां का मन भर आया···। वे बोलीं, "मां-बहिनों को अभय का, सुरक्षा का भरोसा मिलना चाहिए·· किसी का साहस न हो कि उनकी ओर कुदृष्टि से टेढ़ी आंख भी उठा सके।···

"परिपूर्ण राज्य उसे कहते हैं शिववा! जहां तीर्थक्षेत्र श्रद्धालुओं के लिये सदा खुले हों। जहां सेवक-सेविकाओं को भी उतना ही प्रेम और स्नेह मिलता हो, जितना स्वजनों को। जहां जंगल में रहने वाले जंगम और बीहड़ों में रहने वाले बेरड भी यह सोचते हों कि यह राज्य मेरा है, यह राष्ट्र मेरा है। यावच्चन्द्रदिवाकरौ यह वैभव-सम्पन्न हो। इस कार्य के लिये अपने प्राणों की बाजी भी लगानी पड़े तो अपनी तत्परता है।···

"यदि प्रजा सोचे कि जैसी निजामशाही, जैसी आदिलशाही है, वैसी ही यह भोंसलेशाही, तो···राजे! हमारा मातृत्व व्यर्थ हो जायेगा।"

बालराजे का मुख तेज से उजला हो गया। उनका मन कुछ गुन रहा था।

× × ×

" 'शिवा! ये गाड़ दी गयी आवाजें हैं। यहां बैठे शंकर के आस-पास घूम रही हैं। उसके द्वार पर युगों से दस्तक दे रही हैं। उग्र हुंकार कर रही हैं। अब देखना इतना भर है कि वह शंकर, जो दयासागर-प्रलयंकर है, उसका तीसरा नेत्र कब खुलता है।

'उसकी आग की लौ के साथ उठने वाली पुकार का साथ देने का

तेरी छाती में साहस हो, तभी इस रायरेश्वर के शिवालय की ओर पैर बढ़ा। नहीं तो लौट जा। जा, तेरी राह तुझे खुली है। तू लौट सकता है।'

मैंने रुककर अपने इस शरीर की ओर देखा···पर तभी···मनमें एक आवाज उठी। कहा—अरे, यह पुकार केवल तेरे ही लिये नहीं है।···तेरे भाइयों के चौड़े वक्ष, फौलादी शरीर किसके हैं ? उनकी बलिष्ठ भुजाओं की फड़फड़ाती शक्ति किसकी है ?···सारे एक होकर हाथों में हाथ गूंथकर खड़े हो जाओ तो यह सारा का सारा क्या तुम समेट नहीं सकोगे ?

यह सुनते ही मैं रायरेश्वर के सामने जाकर खड़ा हो गया तो उन्होंने भी मेरे मस्तक पर हाथ रखकर कहा—

'मेरे बेटे ! चिन्ता मत करो।

'अब लौटना कैसा ? पैर बढ़ाकर आगे रखा है तो उसे पक्का करो। लौटना तो अब हो ही नहीं सकता।

'यहां हिन्दवी स्वराज्य हो, यही मेरी इच्छा है।' "

सभी चित्रलिखे से राजा की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। शिवाजी ने फुर्ती से कटि से खड्ग खींचा, अपनी छोटी अंगुली पर चलाया और उसकी धार महादेव की पिण्डी पर धर दी।

तभी एक ने विभोर होकर गर्जना की—हर हर महादेव ! सारा मन्दिर—सारा शिवालय गूंज उठा—हर हर महादेव !!

× × ×

किले के सैनिकों की तलवारें नयी थीं,···मावलों की केवल छातियां लड़ रही थीं।···राणोजी चिल्ला उठा—शाबास रे मां के पूतो ! एक बार और बढ़ो, चलो। बोलो—हर-हर महादेव !

किलेदार चकित था। वह अपनी दाढ़ी हाथ में भर-भरकर बुदबुदा रहा था—'कहर ढा दिया, गजब ढा दिया'···

पूर्व में सूर्य उगा। उसने देखा—कल तक जिस ध्वज-दण्ड पर हरा निशान फरफरा रहा था, वहां आज लगभग तीन-साढ़े तीन सौ वर्षों बाद इसी माटी के सपूतों का भगवा ध्वज ऊपर उठ रहा है।

एक

अवसरी गांव में देसमुख की बड़ी हवेली। हवेली के पास बाड़ा। इसी में खाद की ढेर-सी चरी और पुआल भी रखा जाता था। एक दिन पहले ही बागियों ने गांव पर धावा बोल दिया था। सारी चरी और पुआल वे लूट ले गये थे। हवेली में बंधी गाय और उसका बछड़ा कल शाम से, भूखे ही, खूंटे पर बंधे थे। दोनों ही बार-बार उठते-बैठते, किसी दीन की तरह रम्भाते और आखिर निराश होकर चुप बैठ जाते। उनकी यह दशा, हुमस-भरी बैचेनी जानकी से देखी नहीं जा रही थी।

देशमुखों की इतनी बड़ी हवेली, किन्तु आज उसकी जरा भी रौनक नहीं रही थी। बागी पिंडारी धावे बोलते, घर-बार को, कबीले को, बचाएं भी तो कितना ! और कब तक ! गांव के कबीले के लोग गांव से बाहर भटककर दूर-दूर बिखर गये थे। आठ घर जैसे-तैसे हिम्मत से टिके थे, वे भी बाजीराव देशमुख के सहारे। गांव के चारों ओर के परकोटे को बागियों ने जगह-जगह से गिरा दिया था। उसका दरवाजा तोड़कर जला दिया था। इस प्रकार खुले पड़े इन घरों को ढूंढ़-ढूंढ़कर उनमें मटके और ठीकरों में रखा चून, नमक, मिरची तक लूट ले गये थे। और तो और चूल्हे में ढेर नरक कर गये थे।

अमीन का थाना शिरवल था। वह भी कहीं दूर नहीं था। किन्तु सरकार का बंदोबस्त कुछ बचा ही नहीं था। अमीन के सिपाही गांव की ओर दो कारणों से जाते थे—एक तो वसूली समय पर न पहुंचने के कारण गिरफ्तारी का फरमान लेकर और दूसरा बेगार की जरूरत पड़ने पर। ऐसे समय हर घर से एक आदमी बांधकर कोड़ों से पीट-पीटकर सुभान

मंगल के किले में हाजिर किया जाता। बाकी समय बेचारी जनता और बागियों को एक दूसरे से निपटने के लिए छोड़ दिया जाता।

बाजीराव इस धक्का-मुक्की से ऊबकर शिरवल के किले में, सुभान मंगल के पास पहुंचा था। इन लुटेरे बागियों के विरुद्ध फरियाद लेकर। उसी समय इधर गांव पर फिर से धावा बोल दिया गया था। प्राणों के भय से गांव वाले घरों में दुबक-दुबककर बैठे थे। देशमुख के नौकर ने हिम्मत से बड़ा दरवाजा बन्द कर दिया और उसमें बेंडा लगाकर चोर दरवाजे से निकलकर अपनी बीमार मां की चिन्ता से घर की ओर भाग गया। बागियों ने बाड़े में बंधे पशुओं को खोल दिया, उनकी पीठ पर चरी और पुआल के गट्ठर लाद उन्हें कोड़ों से हांककर ले गये।

आखिर बाजीराव देखमुख की पत्नी जानकी से गाय और बछड़े की बेचैनी नहीं देखी गयी। कार्तिक की शाम थी। वह कुछ निश्चय से खुद ही हाथ में बछड़े का रस्सी पकड़कर और हंसिया लेकर जंगल की ओर चल पड़ी। घर-घर के लोग उसका यह करतब देखकर चकित हो रहे थे। देशमुख की घरवाली खुद ही हाथ में हंसिया लेकर जंगल को जाने के लिये निकले, यह क्या साधारण-सी बात थी! देशमुख के घर की आन और शान की परंपरा को छोड़कर इस प्रकार का अनोखा काम कभी किसी ने किया भी था!

अम्बा दीदी बड़ी मर्याद से अपना घूंघट कुछ और आगे खींचकर धीरे से बोल ही पड़ी, "मैं कहूं शिरीपत कहां गया? आज देशमुख की घरवाली घास के लिये खुद निकली है।" जानकी ने एक बार अम्बा दीदी की ओर देखा। दांतों तले होंठों को भींच लिया। साड़ी का छोर संभाला और बछड़े को खींचती आगे बढ़ गयी।

गांव से सटकर पहाड़ियों की एक कतार गुंजबन की घाटी में उतरती चली गयी थी। पश्चिम की ओर मुरुबदेव की पहाड़ी की ऊंची नाक-सी टेकड़ी आसमान में घुसी जा रही थी। उसी का एक हिस्सा इधर भी आ टिका था। अवसरी गांव की ओर इस पहाड़ी के ऊंचे कटे-कटे भीत से खड़े थे। उनके पेट के नीचे घास खूब उगता था। अमन के दिनों में उस मुलायम घास को घासवालियां कभी की काटकर ले जातीं। किन्तु इन दिनों

लुटेरों की मार-धाड़ के कारण अकेले उस ओर जाने की हिम्मत कौन करता ! पहाड़ी पर बीच-बीच में बने छोटे-छोटे खेतों में से धान काटी जा चुकी थी । जिन खेतों में से धान की बालियां लुटेरे काटकर ले गये थे, वहां अब ठूंठ खड़े थे ।

जानकी यह देखती हुई जंगल की ओर बढ़ रही थी । जैसे-जैसे वह पहाड़ी के पास पहुंच रही थी; जंगल घना हो रहा था । इधर-उधर घास में मुंह मारते बछड़े को खींचती हुई जानकी उस कड़े की ओर जा रही थी । इस डरावने जंगल की ओर वैसे भी वह कभी कभार ही आयी थी । एक आदमी घास का गट्ठर सिर पर लिये उसी ओर से आ रहा था । उसने देशमुख की घरवाली को देखा तो दांतों तले जीभ काटकर, उसके लिए रास्ता छोड़कर एक ओर हटकर खड़ा हो गया । सिर के खिसकते आंचल को जरा-सा ठीककर उस आदमी को अनदेखाकर जानकी ऊंचाई पर चढ़ने लगी । इतने परिश्रम से ही कातिक की उस शाम के समय में भी जानकी के गुंदे, गोरे चांद जैसे मुखड़े पर पसीने की बूंदों के मोती झलक उठे थे । माथे की बिन्दी के चांद के किनारे भी भीग गए थे । चढ़ाई पर पहुंचते ही छोटे-छोटे खेतों की कतार खत्म हो गयी । और अब घना जंगल शुरू हो गया । शीत के दिन जो जल्दी सरकते हैं । कड़े के पास पहुंचकर घास का गठ्ठर बांधकर जल्दी लौटना जरूरी था । उसमें भी बागियों का भय । कब क्या हो ?

जब तक चढ़ते बना, बछड़ा चढ़ा । बाद में वह पीछे खिसने लगा । जानकी की रफ्तार के साथ वह चढ़ नहीं पा रहा था । आखिर जानकी ने सादड़ी को एक पेड़ से बांध दिया । वह सुन्दर बछड़ा इधर-उधर घास में मुंह मार रहा था । उस सीधी दीवार जैसे कड़े के नीचे काले पत्थरों का कोयला जैसा ढेर चारों ओर छितरा पड़ा था । उसे जैसे-तैसे पारकर जानकी कड़े के पेड़ के नीचे जा पहुंची और कुचली के घास पर सपासप हंसिया चलाने लगी । दस-बीस मुट्ठा काटती और घास के छोर से उसकी पिंडी बांधती । वह जहां घास काट रही थी, वहां से कड़े के नीचे का दूर तक का दृश्य दिख रहा था । दोनों ओर के पहाड़ों के बीच में गुंजवान की घाटी उदास-सी हाथ-पैर ढीलेकर बैठी थी । उसमें बाबुर्डी

कोठुर्डी, पाल, खोकरा, नेसरी गुंजवन, जैसे दस-बीस खेड़ा, यहां वहां झुरमुटों में दुबके टिके थे।

हर खेड़ा के आस-पास धान के खेत थे। कुछ जमीन सूखी-सी वीरान पड़ी थी और बाद में घना जंगल। ठीक दूसरे गांव की सीमा तक उस घाटी में ही कितने ही खेत अछूते उदास पड़े थे झाड़-झंखाड़—उनमें पड़ी काली मां पुकारती, "उठो मेरे पूतो ! औरों को आवाज दो, हिम्मत से खड़े होओ, मूठ-मूठ भर बुआई करो, मन-मन भर इकट्ठा करो।" किन्तु काली मां के इस मौन निमंत्रण की ओर ध्यान देने की किसी को जरा भी फुरसत नहीं थी। प्राणों का भय चारों ओर छाया रहता। दिन सुख से कटें तो बुआई भी हो। यही जवाब हर ओर से आता था। गांव के गांव उठ गये थे। जिएं भी, टिकें भी, तो किसके सहारे ! कभी कहीं किसीके मजबूत बाजुओं की शरण लेने की हरकत करें, तो उसी पर कुल्हाड़ी-सी आफत आ पड़ती। घर भी डूबता और पाहुना भी डूबता। सारे ही गांवों पर यह आफत आ पड़ी थी। कभी कभार किसी गांव में किसी मन्दिर का शिखर दिखता तो वह भी बिना कलश का। लुटेरे उसको कभी का उखाड़ चुके। इस सब में गुंजवान नदी, टेढ़ी-मेढ़ी लकीर खींचती गुंजवन के पठार की ओर भाग रही थी।

जानकी घास काटने में जुटी थी। पीछे मुड़कर चारों ओर फैले इस उजाड़ की ओर देखने के लिए उसे फुरसत कहां ! वह एक मुट्ठा घास काटकर उसे बांधने ही वाली थी कि एकाएक चकित-सी ठिठक गयी। उसके आगे ही दस-बीस हाथ दूर झाड़ी में से उसे गुरगुराहट सुनाई दी। हाथ का मुठ्ठा वैसे ही छोड़कर वह एकदम खड़ी हो गयी। दूसरे ही क्षण साड़ी को और हंसिये को सम्हालती वह बछड़े की ओर भागी। गुरगुराहट किसकी थी यह बछड़ा जान गया था। मुंह का कौर वैसा ही छोड़कर वह रंभाने लगा। उसका सारा शरीर कांपने लगा। जानकी उसके पास पहुंची। उसकी रस्सी हाथ में ली। तब तक वह जानवर छलांग लगाकर खुले में आ गया था। वहां वह जमीन से लिपटा नाखूनों से जमीन को कुरेदता, पिछले पंजों से धूल उड़ाता, आक्रमण की

ताक में बैठा था। यह एक पट्ठा चीता था। कमर तक ऊँचा। चार-साढ़े चार हाथ लम्बा। उसका पेट लपलप करता चल रहा था। बीच-बीच में वह दांत दिखाता, गुर्राता।

वह समझ गया था कि अब यह बछड़ा कहाँ जायेगा। जल्दी करने की भी क्या जरूरत। डराकर ही अधमरा कर दूं। फिर एक हाथ, फिर कंठ फोड़कर ताजा खून पिऊं। बछड़े के पास तो एक स्त्री है। उसकी क्या बिसात। इस डरावने जबड़े को देखते ही बेहोश होकर गिर पड़ेगी।

किन्तु जानकी ने किया कुछ अनोखा ही। उसने झट से साड़ी को ऊपर खींचकर रख लिया, एक हाथ से बछड़े को अपने पीछे छिपाया और दूसरे से हंसिया उस चीते पर उठाया। यह सारा उसने इतनी फुर्ती से किया कि चीता क्षण-भर के लिये दंग रह गया। तभी जानकी जोर से चिल्ला उठी—"मरे तू! हांड् हांड्।"

चीता क्षण भर ठिठका। दूसरे ही क्षण वह बिजली की तेज गति से उछला, और कमान से छूटे तीर की तरह वह बछड़े पर आ गिरा। आगे के दोनों पंजे उसने बछड़े के पुट्ठे पर गाड़ दिये। चीते का झपट्टा इतने जोर का था कि जानकी नीचे गिर पड़ी। चीते ने बछड़े के मांस को नोचने के लिये जबड़ा खोलकर मुंह आगे बढ़ाया ही था कि जानकी बिजली-सी उठी और उसने चीते के खुले जबड़े पर हंसिये का एक भरपूर वार कर दिया। चीता मुंह झाड़कर बछड़े के पुट्ठों से जबड़ा उतारकर एक ही छलांग में पीछे की ओर झाड़ी में छिप गया। उसे झाड़ी में घुसा देखकर जानकी गांव की ओर मुड़कर जोर से चिल्ला उठी और बछड़े को खींचती नीचे की ओर भागने लगी। थोड़ी देर पहले उतरा घासवाला, गट्ठर पेड़ के सहारे रखकर तम्बाकू रगड़ते हुए टिककर खड़ा था। उसने जानकी की आवाज सुनी। वह भी घबड़ाकर सीधा खड़ा हो गया। और गांव वालों को चीते से आगाह करके जानकी की ओर भागा। वह आदमी करने गया कुछ और किन्तु हो गया कुछ और ही। गांव वालों ने उसकी आवाज सुनी और उनके मन में लुटेरों का भय जाग उठा। धाड़-धाड़कर घरों के किवाड़ बन्द कर लिए। हर घर का

आदमी दुबक गया। देशमुख की घरवाली जंगल को गई है, उस पर अब क्या बीतेगी, यह बात किसीके मन में उठी ही नहीं।

इधर जानकी पहाड़ की ढाल उतरकर बछड़े को खींचती एक छोटे से खेत तक आ पहुंची। एक आंख रास्ते की ओर थी तो दूसरी चीते की ओर। छाती धक-धक हो रही थी। प्राण का भय जो था किन्तु बछड़ा उसके शरीर से ऐसे चिपका जा रहा था कि जानकी के मनमें वज्र निश्चय जाग उठा। जो हो सो, आकाश भी गिर पड़े किन्तु बछड़े को बचाना ही है। वह एक छोटे-से खेत में उतरी। तब तक झाड़ी में छुपा चीता भी तेजी से छलांग लगाता फिर से उसके पास आ पहुंचा। तब तक वह आदमी भी चिल्लाता हुआ जानकी के पास आ पहुंचा। वह भी गालियां देता और पैरों के नीचे से पत्थर उठा-उठाकर चीते पर फेंकने लगा। आदमी एक से दो हो गए। देखकर चीता पीछे हट गया। पास के ही खेत में से होकर एक नाला गांव की ओर जाता था। उसी में निर्गुण्डी की झाड़ियों में चीता छिप गया।

उस आदमी ने जानकी से कहा।

बछड़ा मुझे दे दो, उस पर नजर रखकर चलो, इतना ही बहुत है। जानकी ने बछड़े का रस्सा उसके हाथ में दिया। वह उसे अपने कन्धे पर रखकर चल पड़ा। दोनों ही बड़ी तेजी से गांव की ओर चल रहे थे। आदमी ने कहा, सारा गांव क्या मर गया! या मरी पड़ गई!! मैं इतना चिल्लाया पर कोई बाहर आया तक नहीं।

चीता समझ गया था कि इन दोनों के पास केवल हंसिये हैं। कोई बड़ा हथियार नहीं है। तब उसने एक आक्रमण और किया। गांव की बाड़ के पास एक पुराना ओसारा था उसी के पास से इन दोनों का रास्ता गांव की ओर जाता था। वे दोनों ही दौड़ते हुए उस ओसारे तक पहुंचे ही थे कि बछड़ा ले जाने वाले आदमी के पुट्ठे पर चीते ने एक झपट्टा और मारा, और गुर्राता हुआ उस ओसारे में घुस गया। चीते के उस झपट्टे में वह आदमी घायल हो गया। खून बह निकला। फिर भी बछड़ा उसने नहीं छोड़ा। गिरते-पड़ते वे दोनों गांव की बाड़ में भीतर घुस गये। "चीता है रे चीता!! दौड़ो रे दौड़ो!!" चिल्लाने लगे।

अब तक रात उतर आई थी। सूरज कब का पहाड़ी की ओट में हो गया था। अंधेरे की जालियों से पहाड़ों की दरियां और अंधेरी होने लगी थीं। गांव वाले किवाड़ों की ओट से झांककर गांव की ओर कौन-सी आफत आ रही है, इसकी टोह ले रहे थे। तभी एक-दो के कान पर चीता आने की आवाज आ पड़ी। तब कहीं उनके धक-धक करते मन स्थिर हुए। खूंटियों पर टंगे हथियार ले-लेकर, औरों को आवाज देते हुए सभी उस ओर दौड़े। कुछ ही क्षण में तलवार, भाला, बरछी जैसे पानी चढ़े शस्त्र उस ओसारे के पास इकट्ठे हो गए। आदमियों को दौड़ते हुए आता देखकर उस आदमी ने चिल्लाकर कहा, "इस ओसारे मैं घुसा है रे चीता।"

हाथों में हथियार लेकर उन सभी लड़ाकुओं ने ओसारे को घेर लिया आस-पास पड़े पत्थर उठा-उठाकर वे ओसारे में बरसाने लगे। चिल्ला-चिल्लाकर हो हल्ला मचा दिया। आदमियों की भीड़ देखकर चीता डर गया। ओसारे के लकड़ी के दरवाजे के पास सरकंडे की सूखी लकड़ियों का ढेर पड़ा था। उसकी आड़ में चीता मौके की ताक में दुबका बैठा था। वहीं से दांत निपोर रहा था। भीड़ ने घेरा और कस लिया। वे सब ओसारे की मिट्टी की भीत से सट गये। यह दीवार भी जगह जगह धंस गयी। छप्पर पचासों जगह से खिसक गया था। उसी में सिर डालकर कुछ लोग भीतर देख रहे थे। अंधेरा हो चला था। फिर भी चीते के सफेद और बड़े दांत दिख रहे थे। लोगों ने उसके सामने का छप्पर खींचकर साफ किया और चीते पर सीधे पत्थर बरसाने लगे। चीता अब चिढ़ गया और वह घेरा डालने वालों पर पिल पड़ने की हिम्मत साधने लगा।

इतने में एक नौजवान ने पूरी ताकत से हाथ का भाला चीते पर फेंका। चीता नीचे दुबक गया। परन्तु बार उसकी पीठ को चाट गया। जखम खाकर जानवर और भड़क उठा। दीवार की एक चौड़ी दरार में से होकर बाहर आया और पास ही खड़े एक पशु पर झपट पड़ा। तभी सभी हथियार लिए लोग उस ओर दौड़े। उन्होंने उसे अब घेर ही लिया। सभी ने उस पर अपने हथियार चलाए। पर चीता उस पशु पर पंजे का

झपट्टा देकर भाग निकला और पास की एक झाड़ी में घुस गया। भीड़ ने उसे वहां भी घेर लिया और पत्थर बरसाने लगी। चीता चिढ़कर भयानक आवाज में गरज उठा। अन्त में घेरा तोड़ने के लिए वह एक ओर पिल पड़ा। उसी समय सभी हथियार उस पर बरस पड़े। एक पट्टे वाले ने घात लगाकर ऐसा भरपूर वार किया कि चीते का जबड़ा ही कट गया। चीता अन्तिम बार गरजा और उसका शरीर एक ओर लुढ़क गया। फिर भी उस पर शस्त्रों की मार पड़ रही थी। उनमें से एक समझदार बोला, "सुनो रे! देशमुख की घरवाली को जरा जानवर तो देख लेने दो।" अब तक बाड़ के टूटे दरवाजे की चौखट के सहारे खड़ी जानकी घबराये मन से उस दृश्य को देख रही थी।

वह आगे बढ़ आयी। अभी कुछ देर पहले जिसने उस पर घात लगायी थी, वही चीता अब हाथ-पांव फैलाकर चित पड़ा था। जानकी हाथ के हंसिये से उसका मुंह उलट-पलट करने का प्रयत्न कर रही थी। किसी एक आदमी ने पूछा, "क्या देख रही है?"

जानकी मन में बुदबुदायी·····

"वार करते समय मेरा हंसिया उसके जबड़े में धंस गया था।" तभी सभी को चौंकाती आग की लपटें गांव में उठीं। सारा का सारा गांव घरों के ओसारे में खड़ा चीते का बखेड़ा देख रहा था। सभी घबड़ाकर लपटों की ओर देखने लगे। जानकी की छाती धक-धक करती रह गयी। उसने अपने दोनों ही हाथ छाती पर रख लिये। सभी लोग गांव की ओर भाग खड़े हुए। देशमुख के घर के पास डफली की आवाज उठने लगी। उसी के साथ ताल शंखों की धुघत्कार!! उसको सुनते ही जानकी का चेहरा स्याह पड़ गया। एक चीत्कार के साथ जानकी खड़ी-खड़ी बेहोश गिर पड़ी।

दो

गुंजन घाटी के दाहिने सटकर बेलबंड का दो-आब। उसके परे हिरडस मावल। यह जमीन खूब उपजाऊ है। इसकी धान के क्या बखानें। उबलते चावलों पर तैरती चिकनाई में डुबोई बाती रात-रात जलती है। सुगन्ध ऐसी कि धान के खेतों पर भौंरे झूम उठते हैं।

इस धान पर अमीन की बड़ी नजर रहती। धान पीली होते ही अमीन सैनिक भेजता। गांव-गांव उसकी चौकियां बैठतीं। सैनिक घूमते। धान की कुटाई हुई कि उसका दाना-दाना शिरवल पहुंचता। इन दिनों सुरमा लगाए बदबू भरे घुड़सवारों की टोलियां हिरडस मावल में ऊधम मचातीं। जिसे चाहते पकड़ते, पीटते। हाथ बांधकर घोड़ों के पीछे बंधवाकर खिचवाते। कुछ पूछताछ हुई तो उत्तर ठहरा हुआ, 'इस हरामजादे ने हुजूर की धान छिपाई।' फिर उस फरियादी की कौन सुनता! उसका सारा कबीला कतलकर देने पर भी कोई जवाबदेही नहीं होती थी।

मावले किसान खेतों में ढोरों जैसे खपते। दो बार, तीन बार हल चलाते। छोटे-छोटे खेतों में कीच बनाते, उस पर सड़ी करब और घास डालते, घास-फूस जलाकर उसे भूंजते। उसके धुएं को धुपाते। बीज को धुपाते। सरसराती वर्षा में घुटनों कीच में फिर से हल चलाते। पौध लगाते। इस प्रकार वे किसान जी तोड़ मेहनत करते। और उस सारी नेहनत का, उन सारे कष्टों का सौंधा-सौंधा सोने जैसा कौर मुंह के पास पहुंच पाता कि दावेदार उसका दाना-दाना उठाकर ले जाते। अपने ही बैलों पर लादकर धान को सुभान के किले तक नहीं पहुंचाना पड़ा तो खैर हुई समझो।

आंगन में मुक्ता-मोती फूलते-फलते और अपने ही हाथों अमीन की कबर पर चढ़ाने पड़ते। मावलों को फिर भी जीना हो तो, कौदों पर। वह कम पड़ा तो महुआ के फूल हैं ही।

गये साल जैसा वह सारा तमाशा हिरडस मावल में इस बार भी हुआ। इतने दिनों बाड़ों में, चरागाहों पर, घेरकर रखे पशु खुले घूमने लगे। बढ़िया घास चर-चराकर गायों की गरदनें भरने लगीं। सांड़ों के पुट्ठे भरने लगे। सांड हुंकारने लगे, गायों के पीछे भागने लगे। बांबी

को उखाड़ने लगे। आपस में टकराते तो सींगों की खटखट होती।

टेकड़ियों और बीहड़ों में छुपे भेड़िये अब मैदानों में उतरने लगे थे। दिन-दहाड़े ढोरों पर घात लगाते। झुंडों में घूमते भेड़िये अकेली गाय को घेर लेते। सभी ओर से एक-एककर उसे तोड़ता। अभी खड़ा ढोर क्षणभर में हड्डियों का ढेर रह जाता। दिन डूबने तक भी यदि किसी का पशु घर नहीं लौटा तो वह सहज है कह देता, भेड़िये ने तोड़ा होगा।

दिवाली आयी और गयी भी। पर कहीं भी सुख के दिये नहीं जले। चारों और दरिद्दर ही दरिद्दर। भाई दूज की दिवाली क्या! पड़वा की गाय की उतारी क्या! इतना कौतुक का, सुख का त्यौहार पर उसने भी मावल घाटी पर ममता के पंख नहीं फैलाए।

घास कहीं घुटनों तक, कहीं कमर तक। कहीं-कहीं उसके फूल ललई ले रहे थे। नालों के किनारे उगी कैरजी की हरी-भरी पत्तियों में से इक्का-दुक्का पत्ता पानी में टपक पड़ता। टहनियां छांटने के कारण ऐन के वृक्ष मुंह बाए उदास खड़े थे।

हिरडस मावल की उलंगवाड़ी को पीछे छोड़कर, डूबे-उदास मन से अवसरी का देशमुख पूरब से पश्चिम तक फैली—रायेरेश्वर की टेकड़ी की ओर बढ़ रहा था।

बाजीराव को गौर से देखने पर उसका सगा भी आज उसे पहचान नहीं पाता। आज उसकी फौलादी जांघों के नीचे पंच-कल्याणी घोड़ा नहीं था। पैरों में चरमराती पन्हैया नहीं थी। कमर में दुपट्टा कसा नहीं था। न ही वहां खोंसी कटार थी। बाएं हाथ में सोने की मीनाकारी से मढ़ी मूठ वाली तलवार भी नहीं थी। न सिर पर पगड़ी थी, न पैरों में तुमान थी। आज तो वह कुछ और ही था।

तन पर टूटे बंदों का अंगरखा जैसे-तैसे अटका था। पिछौरा सिर पर पड़ा था। धोती की कांछ कुछ खोंसी, बहुत कुछ खुली हुई थी। दाढ़ी का जंगल खूब फैला था। उसी में मूंछें पसरी थीं। नशे में धुत-सा वह ठोकर खाता, गिरता-पड़ता मंजिल दर मंजिल आगे बढ़ रहा था। बीच में किसी नाले को पार करते हुए क्षण-भर पानी में खड़ा रहता। मुंह भर-भरकर पानी पीता। गरारे, कुल्ले करता। दो-चार हाथ पानी के मुंह पर दे लेता।

और नाला पारकर फिर से नाक की सीध में चल पड़ता। बीच-बीच में अनेकों पगडंडियाँ मिलतीं। कभी-कभार दो-चार जवानों के साथ मायके वाली की डोली लेकर, कहार चल-चलकर पैर उठाते निकल जाते तो कभी कोई भाले का लम्बा मजबूत डण्डा कंधे पर रखकर लम्बे-लम्बे डग भरता चला जाता। इनमें से कभी कोई देशमुख को आवाज देता। पूछ भी लेता।

राम राम, भई राम राम।

कौन गांव के ?

खोए चेहरे से बाजीराव उस ओर देखता। उसमें उत्तर कहां ! पूछने वाला खिसियाकर अपने पांव आगे बढ़ जाता। दोपहर ढलते-ढलते बाजीराव खड़े खेतों को पारकर चढ़ाई पर पहुंचा था। थका निढाल-सा वह हर्र के पेड़ के नीचे लुढ़क गया। पास की झाड़ियों में चरते वन मुर्ग उसे देखते ही चहुंकते वहां से उड़-उड़कर पास के एक डूह पर जा बैठे। बाजीराव इनकी ओर ध्यान देने के लिए अपने में था ही कब ! इसी कारण उस हर्र के पेड़ के पीछे ढलान की ओर भी उसका ध्यान नहीं था। आंखों पर हाथ पसारकर पड़ा रहा। उसकी आंखों के सामने बीता इतिहास उभरता-मिटता सरकता रहा।

अवसरी के ननावरे देशमुख और दुधोंड़ी के देशमुख कांटे। दोनों ही घरों का बैर पुराना। दोनों ही घरों में कोई नहीं जानता था कि यह बैर क्यों और कब से चला। फिर भी दोनों ही घर उस बैर को बड़ी निष्ठा से कुलाचार मानकर आज भी निभा रहे थे, बढ़ा रहे थे।

बात बहुत पुरानी है। जलालउद्दीन के बहुत ही नेक और लायक भतीजे अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी सेना के अथाह प्रवाह में देवगिरी के यादवों के साम्राज्य को डूबो दिया। बाद बहुत कुछ उठा और डूबा। उसी में अहमदनगर में निजामशाही का तखत बना। निजाम शाही के सरदार हाथियों को और तुर्की घोड़ों को लेकर दसियों रास्तों और बीसीयों घाटियों से होकर अंधड़ से कोंकण में उतरने लगे। इस अंधड़ में ऊंचे और दूर तक बिखराए पत्तों के समान उन फौजों के थपेड़ों से इन बारहों मावलों के देशमुखों के सूखे वतन भी उड़ते-गिरते रहे। कुछ देशमुखों ने निजामशाही का दामन थाम लिया। दरबार में जौहर किया, मुजरे किये, झुके और

अपने वतनों को बख्श लिया। इन दिनों अब निजामशाही के सितारे डूब रहे थे। और उधर बीजापुर में आदिलशाही के सितारे बुलन्द हो रहे थे।

इतना बड़ा युग बीत गया। किन्तु ननावरे देशमुख और कांटे देशमुख दोनों ही का बैर अभी बुझा नहीं था। एक के बाद दूसरी, ऐसी पीढ़ियां उठीं —और देखते-देखते इसी बैर में खप गयीं। कुछ तो इसी बैर के झगड़ों में, कुछ टोटकों में, तो कुछ मरी में मर गये। कुछ छोड़कर चले गए तो कुछ दरिद्दर के कारण भूखे, पैरों को घिसट-घिसटकर शान्त हो गये थे। किन्तु मरते समय जिसमें भी होश रहा, उसने नयी पीढ़ी के कानों में इस बैर का मंत्र जरूर ही फूंका था। प्राण निकलते-निकलते अपने पैरों पर हाथ रखवा-कर, उगती पीढ़ी से सौगन्ध लिवाई, गंगाजल उठवाया, कहलवाया कि "इन दावेदारों की गर्दनों पर पैर रखे बिना सुख से कौर नहीं खाऊंगा।"

और हर पीढ़ी ने इस बैर को जीवन्त रखने के लिए नित नए तरीके अपनाए। दोनों देशमुखों के घर परम्पराओं को निष्ठा से चलाते-पालते आये थे। रीति के अनुसार कुलदेवताओं के उत्सवों में, मान-मननैतियों की पंगतों में, जेवनारों में, एक-दूसरे के घर न्यौता जरूर ही देते। वैसे हर समय दोनों ही घरों के लोग न्यौते को मानकर आते-जाते भी रहे। किन्तु जाने वाला हर पुरुष अपनी पत्नी की बिन्दी अपने हाथों उतारकर ही जाता था। ऐसे ही समय बदला चुकाया जाता। कभी विष दिया जाता। कभी गठरी बांधकर कुओं-बावडियों में फिंकवा दिया जाता। कभी टोटके किये जाते। कभी नींबू फेंके जाते, तो कभी घरों में घुसकर लोहा चलाया जाता और सिर उड़ा दिये जाते।

बाजीराव के बाप ने बाजीराव का ब्याह रचा। दुधोंड़ी के देशमुखों के घर न्यौता गया। न्योता चूल का था। डोकर से लेकर पाहुने तक, नौकर और चाकर तक का। दुधोंड़ी के देशमुखों ने सोचा, अब कैसा आना और लौटाना ? बस उन्होंने गऊ दान दिए, अन्तिम इच्छाएं पूरी कीं और तब घर के चार-छह आदमियों को भेजा। एक डोकर, एक दम्पती और एक छोरा। ननावरे देशमुख ने इन सभी का मान-सम्मान किया। वस्त्र दिए। साड़ियां दीं। रात में कुल देवता के उत्सव में ढोल-

ढपली बज उठी और उसी में दुधोंड़ी के देशमुखों के उस पूरे कबीले को काटकर बोटी-बोटी कर दिया। उनका रोना-चिल्लाना बाहर सुनाई न दे, इसलिए हवेली के बाहर डफली जोर-जोर से पीटी जा रही थी। सौ-सौ नगाड़े बज रहे थे। शंख फूंके जा रहे थे।

इस कथा को घटे कितने ही साल बीत गये थे। बहुत कुछ बना-बिगड़ा। ननावरे देशमुखों की बहू-बेटियों के मन में सदा ही खटका-सा बना रहता कि कब क्या हो! वे मन में कहतीं, "दुधोंडी के दुशमुखों के दावेदारों की ओर से जो कुछ घात आ पड़नी है, आ पड़े, और एक बार वह लेन-देन का कर्जा उतर जाए। कभी न कभी तो वह भोग भोगना ही है। होनहार की रेखा फूंक से तो बनती-बिगड़ती नहीं। वह तो होकर ही रहेगा। कभी न कभी उनके शंख यहां फुंकने हैं। बात केवल इतनी भर है कि यह सब आस्मानी होनहार कब आकर गिरती है। जब भी कभी ननावरे देशमुखों के घर कोई विवाह या कुछ काम होता, तब-तब जानकी का छोटा-सा हृदय, धक्-धक् करता रहता। मन बार-बार असुगन के भय से कांप जाता।

आखिर दावेदारों ने दावा इस रात साध लिया। लुटेरों और भेड़ियों के भय से सारा अवसरी गांव उदास और वीरान हो गया था। घर-घर खाली पड़ा था। जैसे गांव में मरी पड़ी हो। घरों के किवाड़ बंदकर उन पर बड़े पत्थरों को ठांप कर पैर जिस ओर बढ़ा, उस ओर का रास्ता नापते-नापते लोग बिखर गये थे। लुटेरों ने एक दिन पहले ही अवसरी गांव में घुसकर पूरा गांव ढूंढ़-ढूंढ़कर सफा कर दिया था। पौ फटने लगी तो देशमुखों की हवेली को फोड़ने की इच्छा वैसे ही छोड़ दी थी। आज तो नहीं पर कल, कभी न कभी वह भी होना ही था। ननावरे देशमुख इन लुटेरों की फरियाद लेकर ही दीवान की कचहरी में गया था। उधर जानकी प्राणों को मुट्ठी में लिए उसकी बाट जोह रही थी। आखिर घर में नौकर-चाकर होते हुए भी गाय के बछड़े की भूख से, उसकी तड़पन से बैचेन होकर जानकी खुद ही घास के लिये जंगल गयी। और इधर दुश्मनों ने उसी क्षण बदला चुका लिया और शिवालय का पुजारी शिवालय में आरती के लिये नीराजनी लगा रहा था और उधर करंजी के

तेल में डुबोई चिंधियों की गाँठें चारों और से फेंककर दुधोंडी के देशमुखों ने हवेली को जुआर की करब के ढेर के समान जला दिया। हवेली के चारों ओर नंगी तलवार लिए दुधोंडी के लठैत खड़े थे। बिल्ली के पिल्ले तक को उन्होंने बाहर नहीं निकलने दिया। सारी हवेली जलकर राख हो गयी।

चीते पर धावा बोलकर गांव वाले उधर भागे और इधर उतने में ही दुधोंडी के देशमुखों ने पुराना बैर चुका लिया। अपना एक-एक दाम वसूल कर लिया। अकेली जानकी बची। वह भी केवल बछड़े के कारण। यदि वह बछड़े के लिये जंगल न गयी होती, तो बाजीराव को उसकी भी राख उठानी पड़ती। अवसरी में लौटने पर जब बाजीराव ने यह सब देखा तो वह इस आघात से पागल हो गया। छाती पीटती, रोती-चिल्लाती जानकी को धीरज देने का, कुछ उसकी पूछताछ करने तक का उसे होश नहीं रहा। जानकी रोती-चिल्लाती बेहोशी की ओर-छोर डूबती-उतरती रही। उसे अक्कामा के ओसारे पर वैसे ही छोड़कर वह उस जली उजाड़ बनी राख हुई हवेली के चारों ओर घूमता रहा, निरास, उदास, सगे-सम्बन्धियों तक को उसने नहीं माना। सारी रात उस हवेली के ढेर-ढेर राख के सामने रीते मन से बैठा रहा। उस पर चौकसी रखने वाले लोग जब उतरती रात के पहर में कुछ ऊंघने लगे तब बाजीराव चुपचाप उठा और रायरेश्वर की ओर चल दिया। सोचा, रायरेश्वर के शम्भू महादेव के सामने पहुंचकर हठकर बैठूंगा। उसकी आज्ञा नहीं होती तब तक उठूंगा ही नहीं। और यदि ईश्वर की कृपा नहीं हुई तो वहीं प्राण दे दूंगा। बस, अब यही निश्चय। अब पैर पीछे नहीं हटेगा।

तीन

हिरिडी घाटी की ढलान की आड़ में सत्या बेरड की एक छोटी-सी छपरिया थी। वैसे इस पूरी घाटी के आंचल के गांवों में सत्या के बहुत से

घर थे। उसकी चार घरवालियां थीं। अलग-अलग चार गांवों में रहती थीं। इनके अलावा उसके टिकने की अनेकों जगहें थीं। कहीं किसी कड़े के नीचे, कहीं किसी घनी राई में, तो किसी पहाड़ी की ढलान की ओट में। उन्हीं में से एक यह भी थी। उसमें सत्या गूदड़ी पर औंधा पड़ा था। पास में चौड़े फलक की तलवार रखी थी। कुहनी जमीन पर टिकाकर, ऊपर फैले पंजों पर अपनी मटके-जैसी ठोड़ी रखे वह पड़ा था। बीच-बीच में सिरहाने की ओर के पेड़ के तने पर तम्बाकू की पीक थूकता था। बीच-बीच में हुंकार भी भर देता था। बेशक खां के पजामे की और अंगरखे की तीखी बू उसे भी परेशान कर रही थी, पर इस समय वह उस ओर ध्यान नहीं दे रहा था।

बेशक खां की नाक उसकी दोनों आंखों के बीच में पसरी थी। उसके चिढ़ने पर वह और भी फैल जाती थी। बार-बार घास का एक कीड़ा उसकी करीने से कटी, बनी दाढ़ी में घुसा जा रहा था। बेशक खां बोलते-बोलते बीच-बीच में उस कीड़े को थप्पड़ मारता। डरावनी आंखें चारों ओर चौकसी से घुमाता हुआ वह बुदबुदा रहा था।

"जो तालाब की चौकसी करेगा, वह पानी भी तो पिएगा। यह तो बिल्कुल साफ और बाइन्साफ है। आसवली जैसे टेकड़ियों की खाइयों में समाए हुए गांवों में देशमुख कय्यूम खां का मुतालिक बनकर काम करना हंसी-ठठा है! वहां के दरख्त आसमां के बादलों को सिर पर टिकाते हैं। घास तो शैतान की जुल्फों का जंगल है। और वहां की वे दरियां हैं! खाइयां हैं! वे तो दोजख के खुले दरवाजे हैं। और उन मनहूस लोगों के चेहरे! बिस्मिल्ला!! खुदा बचाए उनसे!! पर ऐसे माहौल में भी बेशक खां मुतालकी कर ही रहा था। कचहरी में बैठकर सारी मालगुजारी वसूलता था। बैठ-बिगार चला ही रहा था। कारीगरों, मजदूरों से काम भी ले रहा था। उन पांच-पैंतीस कोसों के इलाके में दीवानी-फौजदारी के मामलों को अपने मन के मुताबिक ही निपटाता रहा था। एकठों की जमीन दूठों कर रहा था। दोनों ही ओर से इनाम-मेहनताना रखवा लेता था। हथियारबंद हशम रखे हुए था। रौब न मानने वालों को चावड़ी के सामने खोड़ों में लगवाकर रखता था। पहाड़ों की तलहटी में कानंदी

नदी के तीर पर बना कैवल्येश्वर का शिवालय इसी ने तुड़वाया था। उसके स्थान पर कैदियों से मस्जिद उसी ने बनवायी थी।

कय्यूम खां विंझर में रहता था। वहां उसने हवेली बनवायी थी। नाम रखा था आस्मान-महल। वहां से वह कभी-कभार ही आसवली में उतरता था। पर कानन्दी की तलहटी में, उन पहाड़ी खाइयों में बेशक खां अपना आसन जमाए बैठा था। उसके न आगा था, न पीछा। अकेला था। कभी न कभी मक्का जाकर हज करने की बातें भी करता। पर ये बातें सौ-सौ चूहे खाने वाली बिल्ली जैसी ही थीं। अभी तो वह पैसों-टकों की जुगाड़ कर रहा था।

अवाम को, रय्यत को निचोड़ने में कय्यूम खां को कोई शिकायत नहीं थी। कय्यूम खां का कहना था कि ढेर-ढेर-सा वसूलने पर मुट्ठी-दो-मुट्ठी बेशक खां खा ले तो खा भी ले। पर बाकी वसूल तो मलिक तक पहुंचे ही। इधर बेशक खां की फरियाद थी कि शैतान के बच्चों की, लंगोटी वालों की बस्ती में रहकर सारा वसूल इकट्ठा करना क्या खेल है, हंसी-ठट्ठा है? पर नाम तो कय्यूम खां का ही चलता था। कभी-कभी कागजों पर निशानी दस्खत होते, तभी कय्यूम खां काम करते। त्योहारों पर जो नजर-न्यौछावर आती वह तो विंझर में कय्यूम खां के पास ही भेजनी पड़ती। इतने पर भी वसूली पर सारी रकम वसूली कय्यूम खां की ओर ही पहुंचनी चाहिए, ये तुर्रा क्यों? यह कोई इन्साफ हुआ?

पर यह सब जम नहीं पाया। सावजी द्वारा नजर की गई कुछ थोड़ी-सी अशर्फियों ने अपना काम किया। एक दिन पौ फटते ही कय्यूम खां आया और उसने बेशक खां का बोरिया-बिस्तर कचहरी से उठाकर फिंकवा दिया। और इस प्रकार फिर से सावजी के हाथों में आसवली के देशमुख के सील-सिक्के पहुंच गए। यह बेशक खां के दिल को कचोट रहा था। उसी क्षण से उसने कय्यूम खां से दुश्मनी बांध ली।

खुद बेशक खां के लिए कय्यूम खां भारी ही था। वैसे कय्यूम खां कुछ कम धूर्त नहीं था। उसने अपनी हवेली गढ़ी जैसी मजबूत बनवाई थी। जब भी वह बाहर निकलता, उसके घोड़ों की पूंछ पकड़े आठ-दस हथियार बंद लठैत हमेशा साथ दौड़ते। उन्हें यह माहवारी चिट्ठा भी देता था। इसका

एक कारण और भी था। सिंहगढ़ के किलेदार को केवल दस मोहरें देकर देशमुखों की यह सनद उसने शोलार से जबरन ली थी। वे ही शेलार लोग इकट्ठा होकर कब धावा बोल दें और कब अपना सिर रास्तों की धूल चाटने लगे, इसका उसे हमेशा डर लगा रहता था।

आखिर वेशक खां ने सत्या बेरड से सांठ-गांठ करने का विचार किया। सत्या का तो यह धंधा ठहरा। जो भी आकर उसे मुंहमांगा दाम देता, सत्या उसका काम करता। कोई भी उसकी मुट्ठी भर दे, यल्लमा की सौगन्ध दिला दे, उसकी भभूत उसके ललाट पर लगा दे, फिर वह आसामी जनमेजय के समान एक खम्भे के महल पर छिपकर भी रहे, सत्या जुगाड़, जुगत लगाकर वहां तक पहुंचता और उसका सिर उतार-कर लाता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि उसके चारों घरों में खाने को कुछ भी न होता। पर फिर भी किसी बेरड की उसके घर की ओर आंख उठाने की हिम्मत नहीं होती थी। दीवान की कचहरी से बेगार जुटाने के लिए हशम आते—हर घर से एक आसामी जाती, पर सत्या के घर की ओर बढ़ने की कोई हशम जुर्रत नहीं करता था।

वैसे सत्या सभी का मीत था। कोई भी उससे ठाकुर जी के सिर का फूल उठवा ले, सौगन्ध खिला ले। उसकी दम की तलब पूरी कर दें और फिर अपने वैरियों के लिए सत्या को छोड़ दे। जो भी पहले पहुंचेगा, सत्या का लोहा उसके लिए चलेगा। दस-बीस लोग उसके साथी बने थे। उसका साथ देने वाले ये ईमान के पक्के थे। जहां सत्या का पसीना गिरता, वहां उनका रक्त बहता। उनके इसी साथ से सत्या ने पूरी मावल पट्टी में अपनी धाक जमा ली थी। उसका नाम था, रौब था।

बेरड तो वह था ही। झोंपड़ियों से बढ़कर उसे महल नहीं था। पहाड़ों की खाइयों से बढ़कर उसे वन-उपवन नहीं थे। गूदड़ी से बढ़कर गद्दे तकिये उसे नहीं थे। मन भर कर दम भरने को मिले, वाऽऽ···फिर किसी दर्रे की किसी भी ढलान की ओट में सत्या पड़ा रहता था। एक बार जिसके काम की सौगन्ध ली, उसके लिए वह उसी रात निकल पड़ता। और अपनी तलवार का पानी दिखाकर ही लौटता। और लोगों की

तलवारों के म्यान भी होते हैं, इसकी तलवार हमेशा खुली रहती निर्द्वन्द्व !! स्वछन्द !!

वेशक खां की बातें सत्या के कानों पर से यूं ही गुजर गयीं। सत्या ने अंगड़ाई ली, मुंह खोलकर जुम्हाई ली और बोला—

"साल्ले वेशक खां, यार दिन डूब रहा है। तुम्हारी ये अर्र-टर्र चलती ही रही, मेरा तो माथा ठनकने लगा। एक बात भी भीतर नहीं उतरी। अब जरा हमारी तलफ बुझाओ तो सुने।

वेशक खां चकित-सा रह गया। उसे अब होश आया। वह समझ रहा था कि उसकी बातों का एक-एक अक्षर सत्या सुन रहा है, समझ रहा है। उसके सिर के बालों के जंगल में उसकी बातें कहीं भी अटक नहीं रही हैं। पर यह तो कुछ और ही हो गया। बात कुछ तीसरी ही निकली।

फिर भी सत्या की तलफ की बात सुनकर वह खुश हुआ और बोला, "क्या बात कही—नाईक जी, यह लो आपकी दवा भी हाजिर है।"

इतना कहकर वेशक खां ने अपनी कमर के बटुये के लिए हाथ बढ़ाया। इधर सत्या ने पड़े-पड़े ही अपना हाथ पसार दिया था। वहीं से उसने झोंपड़ियों के छप्पर में धंसाई चिलम को प्यार से देख लिया। सोच रहा था—'पहाड़ी की ढलान के किसी झरने पर गांजा मलूं। फिर चिलम भरूं। एक फूंक में चिलम की आग भफकर जलेगी ऊपर से नीचे तक। और चिलम साफ और फिर वेशक खां की फरियाद सुनी जाएगी। इक्के-दुक्के का काम हो तो आज रात में ही यल्लामा का नाम लेकर तलवार पूजूं।'

पर सत्या के पसरे हाथ पर कुछ पड़ा ही नहीं। और उल्टे वेशक खां घबड़ाया। चिल्ला उठा। गांजे की पुड़िया की क्या कहें, वहां तो कय्यूमखां के हाथ का लिखा मुतालिकी का कागज भी गायब था। कमर में बटुआ था ही कहां! वह चिल्ला उठा—'नाईक बचाओ, मुझे बचाओ।' अब सत्या ने आंखें खोल दीं, बोला, "क्या हुआ मियां, आस्मां टपक पड़ा या धरती फट गयी ?"

"गजब हुआ भाई, गजब हो गया।"

जैसे-तैसे वेशक खां ने सत्या को बटुआ खोने की बात कही और वहीं झुपड़िया में इधर-उधर टटोलने, ढूंढ़ने लगा।

"टपका आया होगा कहीं। और अब यहां ढूंढ़ रहा है। तेरा बटुआ क्या नाचने वाली का घुंघरू है जो यहां पड़ा मिल जायेगा। चावल बीनने जैसा यहां ढूंढ़ रहे हो !!"

पागल बना बेशक खां झोंपड़ी के बाहर दौड़ा। अब कुछ सांझ उतर रही थी। इसके कुछ-कुछ उजाले में वह आधे रास्ते में ढूंढ़ने लगा। पर कहीं कुछ हाथ नहीं लगा। वह कुछ आगे बढ़ा, चढ़ाई चढ़कर ऊपर आया तो एक हर्र के नीचे पड़ा बाजीराव उसे दिखा। उसे देखते ही बेशक खां कुछ सहम गया। उसे लगा—यह कोई शैलार है, अवसरी का, सावजी का भाई-बंधु, उसीका भेजा हुआ। हरामखोर कहीं का। हरामजादा, बस्स, इसे मैं खुद ही सफा करूं। शैतान हर्र के नीचे पड़ा हमारी गुफतगू सुन रहा था। चुपचाप जमीन से चिपककर !! साल्ला !!

बेशक खां की तलवार खिंची, आसमान में चमकी, तभी सत्या ने रौबीली आवाज में कहा, "एऽऽ, हाथ नीचे, नहीं तो वह टूटा।" वह सत्या की आवाज थी। बेशक खां की तेग नीचे झुक गई। एक ही छलांग में सत्या बाजीराव के पास आ पहुंचा। उसकी आंखें बेरड की थीं। आसमान के पंछी के पर गिनने वाला वह। देखते ही समझ गया कि यह असामी भी इज्जत और आबरू की है। भले घर का है। कोई उठाईगीर या उचक्का नहीं है। बेशक खां को पीछे खींचते हुए सत्या बाजीराव के पास उकड़ू बैठा। उसकी बेहोशी अभी उतरी नहीं थी। उसे हिलाकर जगाना चाहा। बाजीराव की आंखें कुछ खुलीं। तभी ढलान के नीचे से कुछ आदमियों के आने की आहट सुनाई पड़ी।

रात में रायरेश्वर के सामने ब्याह की मनौती का उत्सव समाप्त करने के लिए कुछ लोग जा रहे थे। साथ में कुछ हथियारबन्द लोग भी थे। अंधेरा हो रहा था, इस कारण उनमें से कुछ लोगों ने मशालें जला दी थीं।

उन्हें देखकर सत्या एक ही छलांग में इधर-उधर हो गया। फालतू की बला लेने को उसकी इच्छा नहीं थी। सत्या को खिसकते देखकर बेशक खां भी भागा। पर उसके पैरों में मोच आ गयी। भागते-लंगड़ाते, पड़ते वह बाजीराव को और सत्या-को जहन्नुम भेज रहा था।

वन-मुर्ग चिहुंकने लगे। वृक्षों पर पक्षियों की फड़-फड़, चूं-चूं होने

चार

लगी। वैरागी रायरेश्वर के शिवालय की दाहिनी ओर बने कुण्ड में नहाने के लिए उतरा।

पुष्ट तराशा हुआ-सा शरीर। उसे पंजों से निपट-निपटकर साफ करता। बगल पर हाथ आता तो फट-फट आवाज होती। पूर्व की ओर उषा जग रही थी। उसकी ललाई से वैरागी का शरीर लाल हो रहा था। स्नान हुआ। वैरागी—अब संध्या-वंदन करने लगा। एक पैर पर खड़े रह-कर गायत्री का जप करने लगा।

चारों ओर हर्र के पेड़ों के फलों की परतें जमी थीं। तेरडी के फूलों का मौसम बीत चुका था। पर फिर भी कहीं-कहीं इक्का-दुक्का फूल डोल रहा था। सोनकी के फूल खूब गहगहाकर फूल रहे थे। लगता था कि खंडोबा की विभूति चारों ओर बिखेर दी है। सारा जंगल पीला ज़र्द दिख रहा था। तलहटी में कहीं-कहीं घास पीली हो गई थी। ढलानों पर हरी-हरी घास की पट्टियां दिखती थीं। हवाओं से वे नीचे-ऊपर होतीं तो लगता किसी कुंवारी की साड़ी का आंचल लहरा रहा है। आकाश से ऊंचे उठे शिखरों वाले अंजनी के पेड़ खड़े थे। लगता था कंधे पर भाला लिए शिले-दार खड़ा हो आमों के डेरों के नीचे डरा-छिपा अंधेरा अभी भी उसका दामन छोड़ने को तैयार नहीं था।

इस सलोनी छवि से भरे महके खेतों पर मोती टिके थे। उन पर लाल-लाल किरणें पड़तीं। हवा का झोंका आता तो हजार-हजार बूंद एक साथ टपकती। लगता वन-देवता सूर्योपासना में शत-शत पुष्पों का अर्घ चढ़ा रहा है। चारों ओर सृष्टि का यह यौवन छाया हुआ था। पर उस तपस्वी का ध्यान उस ओर नहीं गया। उसकी गंभीर मुख-मुद्रा उस

सौंदर्य से भी अप्रभावित ही रही।

भरा शरीर। घूमने-फिरने से भरी हुई पिण्डलियां। पटे हुए पुट्टे। सूर्य नमस्कार के व्यायाम से बना छाती का चौड़ा आकार। बाजुओं की नाचती मछलियां। किसीका हाथ थाम ले तो उसका पैर न उठे, ऐसी मजबूत कलाइयां। सिर पर भरे-भरे बाल। उन्मुक्त। उनमें अभी जटिलता नहीं आयी थी। नहाने के कारण अभी भी पानी से भरे थे। पानी की बूंदें रह-रहकर उसकी चौड़ी पीठ पर उतर रही थीं। मुख की मुद्रा जरा लंबी थी, सीधी उन्नत नाक थी। लम्बी-सी। करीब अठ्ठाईस की आयु। दाढ़ी-मूछें व्यवस्थित फेरी हुईं। लगता दिन भर में दो-चार बार उसमें से हाथ फिरता था। ललाट पर बीचोंबीच आंवले जैसी गांठ पड़ी थी। दृष्टि पैनी। जागरूक, साधक की-सी योगी की-सी, अंतर्मुख। सारी सृष्टि को निहार रही थी। मुख पर सात्विकता फैली थी। पर उसमें भी अपार करुणा भरी प्रतीत हो रही थी। बीच-बीच में आंखों में व्याकुलता उभरती। वह दृष्टि की तृप्ति को, सात्विकता को, कुछ-कुछ ढक देती, जैसे बादल नीले स्वच्छ आकाश को छा देता है।

वैरागी ने बायीं जांघ पर दायां पैर रखकर सिद्धासन लगाया। बायीं आंख में कुबड़ी का सहारा लिया। आंखें बंद कर लीं। और जब अपने इष्ट देव रघुवीर, समर्थ राम, की उपासना आरम्भ की।

वैरागी के मुख से काव्य-सरिता बहने लगी।

'निर्गुण रूप जय जय राम
सगुन रूप जय जय राम
मत्स्य रूप जय जय राम
कूर्म रूप जय जय राम,

एक-एक चरण उसके हृदय की गहराइयों में से निकल रहा था। भगवान श्री राम का चरित्र उसके मुख से निकलने लगा। जैसे कोई रहस्य सहज ही अपने आप खुलता जाता है। जैसे किसी साधक के मन में बसी देव-मूर्ति काले प्रस्तर पर क्रमशः साकार हो रही हो।

'रघुपति राघव जय जयराम, रविकुल मण्डन जय जय राम।
जलद प्रभा निभ जय जय राम, राजीव लोचन जय जय राम॥

आजानुबाहु जय जय राम, अभय करांबुज जय जय राम।
कामुकप्राणी जय जय राम, नर-तनु-धारी जय जय राम॥
सुरसाह्यकर जय जय राम, धर्म-संस्थापक जय जय राम॥

इस चरण के साथ ही बैरागी कुछ चकित होकर जग उठा। वह तो काव्य रचना कर रहा था।

मेघ, श्याम, कमल नयन, अभयवरद, धनुर्धारी, मानवरूप, देवहितकारी, धर्म-रक्षक राम उसके मनोमंदिर में विराजने लगे। और धर्म-संस्थापक का नाम निकलते ही बैरागी ठोकर खाकर रुका। गीता का वह श्लोक उसके मन में उठने लगा—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् धर्म-संस्थापनार्थाय···।' साधुओं का परित्राण ? कहां ? दुष्कृतों का विनाश ? वह भी कहां है ? धर्म संस्थापना ? कहां हो रही है ? चारों ओर ये विध्वंस के, विनाश के बादल घिर रहे हैं, वे किस लिये ? यह जो दुर्दिन छाया है, वह भी किस लिये ? यह वातावरण इतना कौंध गया है, वह भी किस लिये ? यह श्वास-प्रश्वास का निरोध हो रहा है ? वह भी किस लिए ?

बीते कुछ सालों से मैं घूम रहा हूं। सारा देश घूम रहा हूं। तीर्थ-यात्रा के बहाने जंगल के जंगल घूम चुका हूं। मैंने घाम देखी नहीं, वर्षा-पानी की परवाह की नहीं, ठिठुरने वाली ठण्ड को माना नहीं। सारा उजाड़ ध्वस्त देख रहा हूं। यह सब देखकर मन भरभरकर आता, आंखे बार-बार फूट पड़ती हैं। तब क्या इन्हें ऐसे ही बहने दूं ? क्या करूं ?

बैरागी की मुखमुद्रा दमकने लगी। उसके ओंठ थरथराने लगे। अनायास हृदय की गहराई से शब्द निखरने लगे। जैसे आकाश में—घन-गर्जन हो वैसे बैरागी के मुख से एक के बाद एक पंक्ति निकलने लगी—

सालों ही बीते प्रलय ना टरों है।
मंहगाई आतंक छायो बहुत है।
गिनती कहां लौं जो यमघर सिधारें
कहां लौं कहौं घर घर बिखर गै।

उत्तर में गंगा-यमुना के मैदान, नर्मदा के घने जंगल के मंदिर और क्षेत्र, गोमती, गोदावरी के पवित्र उद्गमस्थान, डाकिनी श्री क्षेत्र का

भीमाशंकर, कृष्णा, कोयना का महाबलेश्वर, क्या हुई इन तीर्थों की प्रतिष्ठा, कहां गयी ? उनकी सारी-की-सारी स्थान-महिमा कहां लुप्त हुई ? मंदिरों-शिवालयों के शिखर जमीन में गहरे गाड़कर, उन पर उठी मीनारें हमने जीते जी देखीं। जन-जन के मन-मन में पूजित वह देवभूमि कहां है ? कहां है वह पुण्यभूमि ?

मैंने सुना था इस मेरे विशाल देश में भूमि खूब अमृत देती है। रत्न के आंगन हैं। धन और धान्य के भण्डार भरे हैं। विद्वानों-पण्डितों के घर मुक्ता-मोती बिखरे हैं। माणिक्य और मोती-दाड़िम समझकर तोते चुगते हैं। गृहणियां गृह समार्जन में तोते की इस झूठन को एक ओर सरका देती हैं। गांव-गांव, घर-घर गोधन है। स्वच्छन्द चर रहा है। दूध है। घी है। समृद्धि है। तृप्ति है। आदर है। सौजन्य है। सहृदयता है। यहां घर-घर में मानव रहता है।

पर मैंने जो देखा वह क्या था ? मैंने भोगा, सहा, वह क्या था ? मानो एक काल का अन्त हो रहा है। महंगाई मुंह बाए जन-जन को निगल रही है। कितने ही भूख से तड़पकर, पैर घिसट-घिसटकर मर रहे हैं। कितने ही घर बिखर गए, बिगड़ गए, टूट गए। भरे गांव, खेड़ा खाली हो गए, हो रहे हैं। कितने ही गांवों के खेत आकाश की ओर देखते पड़े हैं। उनके शरीर पर झुर्रियां पड़ी हैं। उनकी माटी बांझ हो गई है, ऊसर हो गई है। जहां-कहीं मुट्ठी-दो-मुट्ठी उपजा भी, वह चोरों-लुटेरों ने लूट लिया है। डाके पड़े हैं। शत्रुओं के आक्रमण हुए। मुगल आये, तुर्क आये, पठान आये। उड़ना अजगर आये और मुंह खोलकर, जो भी मिले उसे अपने पेट में समाता जाये वैसी गत हो गयी है।

कितने ही खेड़ा श्मशान हो गये।
कितने ही खेड़ा श्मशान होंगे।
अनाजों न ऊगे, उगे तो नसावै।
कितेकौं ही लूटे, लुटे तो लुटैं ही।
लड़े दो विदेशी—मरे इस देश का ही ॥

जैसे किसी मीठे निर्मल पानी के प्रपात से स्वच्छ, पानी की धारा सर-सरकर गिरे, उसीप्रकार वैरागी के मुख से एक के बाद एक चरण,

पंक्ति निकल रही थी। वैरागी क्षण-दो क्षण इस नवीन अनुभूति से रोमांचित हो उठा। एक अनुभूत विस्मय से उसका चित्त भर गया। उसे वाल्मीकि का स्मरण होने लगा। क्रौञ्च पक्षी मात्र के वध से उसका मन द्रवित हो उठा था। उसके मन के आंगन में इसीप्रकार काव्य के चरणों ने पदन्यास किया था।

आज ऐसे कितने क्रौञ्चों का वध हो रहा है।

वैरागी का मन चिन्तन में डूब गया। यह कैसा दुःख है? प्रजा को भरोसा था राजा का, शासक का। वह भरोसा क्या हुआ? आज तो सुलतानी की शिला के नीचे सारे-के-सारे पिस रहे हैं। कम-से-कम यह विशाल करुणा का सागर, आकाश, इन दीन-दुखियों पर कुछ छाया करे, द्रवे। पर वह भी नहीं। पानी बरसे। धरती कुछ उपजे। इन बुजदिल चोरों, लुटेरों, उचक्कों से कुछ बचे। उसे ही खाकर प्रजा समय बिताए। पर वे मेघ भी तो कहीं के कहीं खो गये। वे भी निठुर हो गये। वर्षा की धारा सूख गई। इतने बड़े विशाल आकाश का राजा भी कुपित हो गया। सबसे बड़े भरोसे ने आंखें फेर लीं, उसीने माया ममता क्षीण कर दी।

और तब, अनेक इज्जत-आबरूवाले घरों की धूल-धूल हो गई। इज्जत-आबरू जैसे-तैसे बचा भी पाये? जंगल का सांवा कोदो खाया। आज वह भी नहीं। पेड़ों के पत्ते खा लेते थे। वर्षा क्या उड़ी, आज पेड़ों के पत्ते भी नसीब नहीं। क्या खाएं? कैसे जिएं? कहां जाएं? क्यों जिएं? खूंटी पर रखी तलवार उतारकर कबीला काटकर फेंक दें! और खुद भी मर जाएं। और दूसरा उपाय भी नहीं है। इस पेट के गड्ढे को भरने के लिए माया, ममता, मर्यादा सब कुछ छोड़ दें। कहते हैं विश्वामित्र ने अकाल में कुत्ते की टांग खा ली थी। वह भी चण्डाल के घर में घुसकर। कुछ भी करें। पर जिएं। और इसप्रकार जीकर भी क्या हो? वे ही, डाके, वही लूट, वही बेआबरू, वही तमाशा। इससे छुटकारा तो कैसे भी नहीं।

दिन साल, बीते बरसै न मेघा।
सूखा कितौं ना, मरे लोग कैना?

"है—है, इससे भी छूटने का उपाय है। मान-सम्मान से भी जीने का उपाय है एक। बस एक ही। पुरखों की परम्परा छोड़ दो, श्रद्धा-केन्द्र नष्ट कर दो, जिन मूर्तियों के सामने, महान सन्तों के, वीर पुंगवों के मस्तक झुके, उन्हें ठोकर मारकर उड़ा दो, ठीकरें कर दो। धर्मान्तर करो तुर्कों का धर्म स्वीकार करो, कलमा पढ़ो, नमाज पढ़ो।

गांव-गांव का अनाज खतम हो गया है। पर अमीन और मुतालिकों के घर में भण्डार भरे हैं। थानेदारों, देशमुखों के घर में दाना रखने के लिये ठौर नहीं है। इधर बच्चे, डांगर, अन्न के बिना तड़प रहे हैं। वहां घोड़ों का दाना सड़ रहा है, घूरे पर फेंका जा रहा है। ऐसे अमीरों, सरदारों, मालिकों के कदमों को चूमिये, वे जो भी कहें मानिये,—सही मानो,—अन्न मिलेगा। पेट पल जायेगा, जीवन मिल जाएगा।" ऐसा ही सोच-सोचकर कितने ही लोग भ्रष्ट हो गये। इस पितृभूमि के, मातृभूमि के बन्धन तोड़ दिये।

पर कितने ही लोगों ने यह स्वीकार नहीं किया। उनकी दृष्टि से धर्म का देश का, ईमान सबसे श्रेष्ठ। सबसे बढ़कर। मनुष्य क्या केवल रोटी के लिये ही जीता हैं? टुकड़ा तो कुत्ते भी पा लेते हैं। घर-घर, डगर-डगर डोलकर, याचनाकर, पेट दिखाकर, खुशामदकर, आपस में झगड़कर, कहीं मार खाकर, कहीं गाली खाकर, जैसे-तैसे जी ही लेते हैं। यदि मनुष्य होकर हम भी यही करें, तो कुत्तों में और हम मनुष्यों में क्या फरक! नहीं, हम यह सब करेंगे नहीं। पुरखों ने प्राणों की बाजी लगाकर, सब कुछ खोकर जिसे सम्हाला, उसे हम प्राण-प्रण से जीवित रखेंगे। यदि प्राण भी देने पड़े तो देंगे। जिन मूर्तियों, श्रद्धा-केन्द्रों के सन्मुख हमारे पूर्वजों के मस्तक नमते रहे, उनके लिये जीवन कुर्बान कर देंगे। यह शरीर की माटी!!! यह तो दूसरे जन्म भी मिलेगी, पर धर्म के लिये मरने का यह सुअवसर शायद ही मिले!! ऐसा सोचकर उन धर्मवीरों ने घर-बार, धन, सब कुछ त्यागकर धर्म की वेदी पर शरीर को समर्पित किया।

इतने बलिदान पर्याप्त नहीं हुए। इतने मात्र दुःख से कुछ नहीं हुआ। देशद्रोही, धर्मद्रोही प्राणियों की दुष्टों की टोलियां बनी घूमने

लगीं। भले और इज्जत-आबरू वाले घरों में घुसने लगे। बहू-बेटियों को उठाकर, घोड़ों पर डाल-डालकर भागने लगे। पेट की क्या कहें? आबरू भी जाती रही।

अनेकों करें पाप या अन्न काजैं।
ना अन्न, पिए विष ही कितेकौं।
पापी कितैकों, घरैं बेटी बहू भी,
न्यायौ डूबैलौं, सबजू मुजौरी॥

'हे करुणा सागर, हे दयालु, ये तेरे विरुद आज व्यर्थ हो रहे हैं। कहां हो तुम? अरे-तेरे दासों और सेवकों की यह दशा? जिस देश की धूल के कण-कण में तेरी लीला की गाथायें रमीं, तेरे गीत रमे, उसी देश की आज यह दुर्दशा? कुटुम्ब टूट रहे हैं, पति-पत्नी बिछुड़ रहे हैं। दसों दिशाओं में यही हाहाकार है।

आया स्वयं काल! बिलगै कुटुम्बी।
कबीले ले कटे, कुछ बिगड़ें, बिखर गे॥

कितने ही लोग कुओं-बावड़ियों में समा गए। कितनों ही ने विष खा लिया। कितने ही स्वयं फांसी लगाकर यम के घर चले गये। कितने ही लोग घरों में बन्द होकर, घरों को जलाकर उसी में राख हो गए।

भीमा, भामा, मुला, मुठा, कुकड़ी, कोयना, कृष्णा, प्रवरा सारी-की-सारी ये नदियां जीवनदायिनी कहलाती थीं। आज उनके प्रवाह, मुर्दों, शवों से भरे हैं। सारा राष्ट्र, सारे जंगल,पर्वत, सभी ओर स्थान-स्थान पर शव पड़े हैं—"कुत्ते नोंच रहे हैं, गिद्ध मुर्दे फाड़ रहे हैं, सारा राष्ट्र ही मुर्दाघर हो रहा है।"

किसी भी गांव के आसपास, कोई वृक्ष ऐसा नहीं रहा, जिसकी मजबूत शाखा पर फांसी नहीं ली गई हो, शव लटका नहीं हो।

नदी से भरत जल उसी में ढरकगै।
विस खै कितै कौ रुख पर लटकगै,
आगी लगाकै, जलें तोकितै कौं।
फजीहत जनों की, जनी की कहै का?

जमीन क्या जोतें! क्या बुआई करें! क्या गुड़ाई करें! सांझ का

दिया भी कहां ! किसके तुलसी के बिरवा पर धरें ! और वह भी किसके लिए ? चोरों ने और अपने ही सगों ने, अपनों के रक्त के बीज के पापी पूतों ने लूट लिया। बचा ही क्या है ! उदासी ! वीरानी !! विध्वंस !!! मटियामेट देश ! निर्जन खेड़ा !! दुर्गन्ध भरे गांव !!!

पदारथ लुटैलो, धरो देश कोरा।
अनाजौं मिलैना, कपड़ा किधौं तो।
घर तो भरें ! पर, भरे, तो भरें का ?
बहती हवा ? पड़ी धूल ? उसासौं परे है।

ये देश !! क्या नाम है ? यह खान-देश है। यह ब्रह्माण्ड प्रान्त, यह पान पठार, यह गुंजन पठार—यह नामावली किस लिये ? जहां धरती को जोते नहीं, बुआई नहीं, कटाई नहीं। वहां कौन रहें ? कौन दिए जलाएं !

"इन देशों, प्रान्तों, प्रान्तों के नामों के तिलक लगाकर क्या हो ? आज यह सब व्यर्थ हो गया है। केवल शरीर, निर्मांस हड्डियों का ढांचा। जहां जमीन कुछ देती नहीं, जहां पानी झरता नहीं, आकाश बरसता नहीं, उस डरावनी उदास जमीन से क्या !" ऐसा सोच-सोचकर कितने लोगों ने घर, गांव, देश, प्रान्त, छोड़ दिए हैं। यह सही भी तो है ! यहां है भी क्या ! सभी का अभाव मात्र। इस देश के झूम-झूम झूमती बालियों से भरे खेत आज कहां हैं ! मोती जैसे दानों से भरे जुआर के भुट्टे कहां हैं ? गेंहू की ये तुर्रेदार बालियां कहां हैं ! कहां गयीं बावड़ियां ! वे तालाब, वे सरोवर कहां है ! पानी की बूंद नहीं, इन गढ्ढों को क्या पूजें ! केवल इतना कहें —'यहां इतना था, यहां तक था, खूब था और अब ? सूख गया !!! आज वर्षा नहीं हुई। आज गेंहू नहीं है। आज अनाज नहीं है, आज कपड़ा नहीं है, घर नहीं है ईमान नहीं है, नहीं है, नहीं है, नहीं है···।

'पापी बनैं ना ? करें तो करैं का ?
घर भी डुबायौ ? बचाकर करै का ?
जानी डुबोदी ? थामैं थमे क्या ?
जनी पूत रोए, सुनें कौ ? कबै लौं ?

तब हे रघुवीर ! मनुष्य जिए तो किस लिए, किसके लिए, किस भरोसे।

और किसके आधार पर। ऐसी दशा में मनुष्य अनाचारी हो भी गया तो उसे क्या दोष दें !

वैरागी की आंखें बन्द थीं। झर-झर करुणा वह रही थी। क्षण-भर के लिए वैरागी के मुख पर कुछ निश्चय-सा उभरा—लगा कि यह कुबड़ी तूंबा फेंक दें, अपना यह शरीर भी फेंक दें, यह कैसा राम ! यह कैसा करुणा सागर ! !

पर वैरागी की आंखें खुलीं तो पूरब की ओर सूर्य उदय हो रहा था। सारा आकाश स्वच्छ निर्मल था, अंधेरा था ही नहीं।

आसपास पंछी फुदक रहे थे, चहक रहे थे।

वैरागी को जैसे साक्षात्कार हुआ। करुणासागर, रघुकुल-दीपक राम का वनवास नहीं हुआ, समर्थ को भी भोग भोगना पड़ा। इन पामरों का क्या ? उदय तो होगा ही। पर उसके पहले घनी रात भी तो होगी ही, होती ही है और हुई भी है। उदय भी होगा। निश्चय भी होगा।

पांच

रायरेश्वर का ऊंचा-सा मन्दिर। आसपास जंगलों के घर। वैरागी उठा। उन घरों से सूखी भिक्षा मांगकर लौटा। मंदिर की एक भीत के पास उसका सामान रखा था। सामान क्या था ! एक कूबड़ी, एक तूम्बी एक कौपीन, एक छड़ी और एक सफेद-सी कमली, बस। इतना ही तो था। मंदिर की ओर लौटते हुए वैरागी ने ढाक के कुछ पत्ते तोड़ लिए थे। उनमें से एक पत्ते पर नमक-मिरची निकालकर रख दी। पास की झाड़ियों की कुछ टहनियां तोड़कर झाड़ू बना ली और उसीसे मंदिर के आस-पास की जगह साफ कर ली। वहां पानी छिड़का। रसोई के लिए चौका बनाया। वहां जंगमों के चौपाये घूमते। उनका सूखा गोबर बीन लिया। एक अच्छासा झगरा बनाया। चकमक निकालकर उसे रगड़कर थोड़ी-सी कपास जलाई; उसे हिलाकर चेताया और फिर उस झगरे से ढांप दिया।

शिवालय के सभामण्डप में कुछ लोग आकर बैठे थे। उकडूं बैठे, दोनों हाथ जोड़े, टकटकी लगाए वैरागी का काम देख रहे थे। वैरागी का एक-एक काम चुस्त, व्यवस्थित एवं शांत चित्त से हो रहा था। वे अचरज से उसे देख रहे थे।

झगरे से अब धुआं निकलने लगा था। उसकी छतरी-सी बंधती ऊपर उठ रही थी।

गोसाईं की मुद्रा प्रसन्न थी। ओस से नहाई धूप में उसका मुख और ही चमक रहा था। साधारण से, भटकते और गुसाइयों-सी ओंग, आलस या संसार से बेखबर वृत्ति का यहां नामों-निशान नहीं था। बड़ी-बड़ी आंखें तीखी थीं। सामने आए मनुष्य को चीन्हतीं। गोबरियों के धुएं से अब उनसे पानी झर रहा था। गोसाईं ने मुंह अच्छी तरह पोंछ लिया और ढाक की बनायी पत्तल पर आटा गूंथने लगा। आटा मांडने में भी एक चुस्ती थी। तरीका था। आटा जरा भी नहीं उड़ रहा था। इधर-उधर नहीं फैल रहा था। इस काम के साथ ही मुख से अयोध्यापति राम के नाम का स्मरण चल रहा था। क्षण-भर चित्तवृत्ति राम में रम जाती, दूसरे ही क्षण वृत्ति लौटकर काम में भी रमती। अजब लीला चल रही थी। पास ही के बरगद पर कुछ कौए बैठे कांव-कांव कर रहे थे। बीच-बीच में वैरागी गोसाईं जी के पास उतरते। उनकी कांव-कांव में याचना थी। गोसाईं जी हँसे और आटे में से थोड़ासा निकालकर उनके सामने परस दिया। बोले—"कच्चा खाओगे तो हजम नहीं होगा। थोड़ा-सा सबर करते। खैर लो, लो, भाई लो। यह तुम्हारा हिस्सा।"

लड़ते-झगड़ते कौवों ने वह गीला-ढीला आटा गपागप कर चटकर लिया और उड़कर पेड़ पर जा बैठे। फिर कर नीचे नहीं आए। अपना हिस्सा पाकर वे सन्तुष्ट थे। गोसाईं एक-एक टिक्कर ठोक-ठोककर झगरे में रखता, एक-एककर सेंकता, सिक जाने पर ठोक-ठोककर उसकी राख झाड़ता। टिक्-टिक्कर उंगलियों से बजाता, ठीक आवाज आने पर सिर हिलाकर एक ओर रख लेता। इसप्रकार टिक्कर सिक जाने पर एक ओर रखे घी से चुपड़ लिए। झगरे की राख समेटकर एक ओर कर दी। चौके

को पानी छिड़ककर साफ किया। यह सब हो जाने पर गोसाईं उठा। एक टिक्कर हाथ में लिए। शिवालय के बाहर अहाते में पहुंचा। वहां जंगमों की गाएं बैठी थीं। उनमें से एक को गो-ग्रास दिया, उसको प्यार से थपथपाया, और लौट आया।

अपने चौके में बैठकर पहले कैवल्येश्वर को भोग चढ़ाकर, अन्न ब्रह्म की जय बोलकर भोजन करने लगा। मुख पर परम सन्तोष था। मानो पंच पक्कान्ना खा रहा है। भोजन समाप्त हो जाने पर वैरागी ने पानी से चौके की जगह को लीपकर साफ किया। बाहर आकर बरगद के तने के नीचे हाथ का तकिया बनाकर पड़ा रहा। दृष्टि वहां आये बैठे व्यक्ति पर, आने-जाने वाले पर पड़ रही थी। एक-एक को देखता, परखता, मन में संजोता जा रहा था।

मनौती पूरी कराने आए श्रद्धालुओं में से एक महतारा वैरागी के हर काम को देख परख रहा था। वह समझ गया कि यह वैरागी गोसाईं कुछ और ही है। ऐरे-गैरे अलखमात्र जगाने वाले अधकच्चे वैरागी, गोसाईं जैसा नहीं है।

उसने वैरागी को आराम से पड़ा देखा तो उठकर वैरागी के पास जाकर बैठा। दण्डौत किया। वैरागी उसे पास आया देखकर पालथी मारकर बैठ गया और रामनाम का स्मरण कर बोला, "कौनसी मनौती पूरी करने आए थे, महतारा चकित हो गया। बात तो सही थी। वह मनौती पूरी करने ही तो आया था।"

उसका पूत किसी झगड़े में जख्मी हो गया था। बचने की आस जाती रही थी। तब उसने मन में कहा था, "पूत बचे, ठीक हो, तो कैवल्येश्वर के मंदिर की दण्डौत की परिक्रमा करूंगा। पांच जंगमों का भोजन कराऊंगा।" उसका पूत बच गया। आज उसी मनौती को पूरा करने वह आया था। साथ में गांव के लोग भी थे। महतारे ने अपने लोगों को बुलाया और कहा, "आओ जी, महाराज को दण्डौत करो।"

एक-एककर सारे ही लोग गोसाईं बाबा के पास आए। पाय लागूं कहकर बैठने लगे। वैरागी एक-एककर सबकी पूछताछ करने लगे। मानो कोई बड़ा-बूढ़ा गोदी में लेकर पीठ पर हाथ फेर रहा हो। सभी अपना-

अपना दुखड़ा कह रहे थे। मन के दुःख-दर्द खोल रहे थे। वैरागी सभी को सान्त्वना दे रहा था, धीरज दे रहा था। अभय दे रहा था। उसका कहना था—

"रात कभी बोरिया-बिस्तर लेकर हमेशा-हमेशा के लिए नहीं आती। कभी-न-कभी उसे भी बीत जाना है। कभी-न-कभी फिर से दिन उगना है। अपने लिए नहीं तो अपने पूतों के लिए किसी-न-किसी को दुःख भोगना ही पड़ता है। तभी किसी-न-किसी को सुख मिलता है। अपने अकेले का कब तक सोचोगे ? सभी के लिए सोचो।"

इतने में शिवालय के सभामण्डप के सामने कोई धूप से गिर पड़ा। सभी हड़बड़ा कर उठे और उधर भागे। देखा तो कोई भले घर का आदमी बेहोश गिरा है। भागदौड़ मच गयी। कोई प्याज लाया, कोई अंजन लाया, कोई पानी लाया। यों उपाय करने पर बाजीराव होश में आया। उसने देखा, कोई वैरागी गोद में उसका सिर लिए बैठा है। प्याज की गंध फैली है। आंखों में सोंठ का अंजन चुरचूरा रहा है। बाजीराव के पेट में पिछले चार दिन से अन्न का दाना नहीं गया था। वैरागी यह समझ गया। बैठे लोगों में से ही एक ने जंगमों के घरों में से थोड़ा-थोड़ा दूध इकट्ठा किया। तब बाजीराव को पिलाया। दूध के दो-चार घूंट पेट में गए। तब बाजीराव में कुछ चेतना-सी जगी। अब वह उठ बैठने के लिए हलचल करने लगा।

वैरागी जरा रौब से ही बोले—

"उठ बैठने की जरूरत नहीं है जी। जरा पड़े रहो। कल देखी सुनी जाएगी। आज आराम करो। आस-पास बैठे हम लोग घर के ही हैं। जरा भरोसा भी करो। और चुपकर पड़े रहो।"

वैरागी का दिलासे का स्वर सुना तो बाजीराव ने भी सोचा गोसाईं जी के मुंह से कैवल्येश्वर ही बोल रहा है। जो हो सो हो। भगवान की शरण जो आए हैं। भगवान की आज्ञा ही सही। इसे कैसे न माने। आंखों पर हाथ की आड़ कर, बाजीराव वहीं सो गया। वैरागी की योजना थी दूसरे दिन पौ फटते ही रायरेश्वर से विदा लेने की। अब योजना में थोड़ा बदल हो गया। उसने सोचा, 'हम वैरागी हमारा क्या ? कहीं कोई मुहूरत

तो टल नहीं रहा। न ही कहीं पहुंचने की खबर दी है। यह जो काम आ पड़ा है, वह भी मामूली नहीं है। आदमी भले घर का है। दुःख भी गहरा है। भगवान की शरण आया है। दुखी का दुःख दूर करना सम्भव नहीं हुआ तो इतने बड़े शरीर का क्या लाभ ! आज यहां रहा जाए, यही ठीक है।

धूनी जल रही थी। आग का मुंह भरभराकर जल रहा था। उसकी हिलती लौ में वैरागी और बाजीराव के शरीर रह-रहकर चमक उठते थे।

बाजीराव क्षुब्ध था। जल रहा था। उसकी छाती में बाण-सा चुभा था। वह भी विष बुझा दुःख गहरा था। दाह भी खूब हो रहा था। उसके मन की यह स्थिति उसके शब्दों में बाहर निकल रही थी। वे शब्द क्या थे, हृदय के दाहक की चिन्गारियां थीं।

वैरागी शांत था। मेरु पर्वत के समान अचल, स्थिर। कभी-कभी विषाद की, खेद की, रेखा-सी मुख पर उठ रही थी। बाकी कहीं भी कुछ नहीं दिख रहा था। वैरागी ने बाजीराव को उसीप्रकार बोलने देना ही ठीक समझा। सारा क्षोभ एक बार बाहर निकलने दिया। दुःख का वह बांध बहुत दिनों का ठहरा था। उसका यों बाहर निकलना ही ठीक था। वस्तुतः यह दुःख अकेले बाजीराव का नहीं था। उस सारे प्रदेश का था। सारा देश यही भोग रहा था। सभी ओर यही व्यथा थी। यही पीड़ा थी।

बाजीराव का क्षोभ कम हुआ-सा देखकर वैरागी बोलने लगा। वह कभी शांत होता, कभी तिरस्कार के साथ बोलता, कभी आवाज बढ़ाकर बोलता, कभी बरसात की-सी झड़ी लग जाती, तो कभी रुक-रुककर शब्द निकल रहे थे। बीच में ही रुक जाता, लम्बी उसांस लेता, छाती की धौंकनी पूरी भर लेता और फिर उसके मुख से आग की चिन्गारियां फूटने लगतीं,

वैरागी ने कहा,

'ननावरे देशमुख जी ! बहुत खूब। आपका तो विभूति रमाकर वैरागी बनने का निर्णय हो गया। वाह भई वाह, आपके इस यश की क्या तुलना !

अब जीवन में सुख का यही एक उपाय रहा है !

आपके पीछे-पीछे, आपके जीवन के साथ अपने जीवन का पल्लू बांधकर आयी पत्नी का कुछ भी हो। हुं! क्या परवाह है ! उसकी चिन्ता क्या ! अरे ! सुख के दिन थे तब उसके साथ ऐश कीये, आज जब दुश्मन ने घर को आग लगा दी तो आज आपके मुंह से परमार्थ के, वेदान्त के बोल निकल रहे हैं ! वाह वा ! बाजीराव जी !! क्या कहने हैं आपके ! भई, यही तो सबसे बढ़िया मौका है प्रपंच छोड़ने का ! संन्यास लेने का।

आपके विभूति रमाने भर की देर है, तत्काल रिद्धि-सिद्धि दासी बनकर हाथ जोड़े आपके पास हाजिर होंगी। आप जिस ओर इशारा करेंगे, उस ओर, बस उसी ओर दिन उगेगा। जिस ओर से आप आंख फेरेंगे, वह दिशा उदास होगी। सारा संसार आपके पीछे दौड़ने लगेगा। कहेगा—यह तो ईश्वर का अवतार है, हमारा उद्धार करने आया है। इसे हमारी करुणा है, नहीं तो इन्हें क्या ! यहां रमते ! अभी तक तो कहीं अदृश्य हो जाते। और सबसे उत्तम निर्णय तो आपका आत्मघात का है। आपकी उमर जो बहुत हो चुकी है। दांत सब गए। नाक बह रही है। टिकुरा सब झड़ गया। कमर झुक गयी। आंखों की लौ क्या, अब बुझी तब बुझी। अब भी प्राणत्याग नहीं करोगे ! परलोक में कदम रखते ही रम्भा, मेनका, उर्वशी अप्सराएं आरती लेकर, हार लेकर दौड़ी-दौड़ी आगे आएंगी। वे तो बाट जोह रही हैं। उन्हें कब तक इन्तजार करवाओगे ? उठो, भाई उठो ! यही मौका है। अभी पौ फूटी नहीं है। सूर्योदय हुआ नहीं है। तभी तक यह पुण्य कार्य कर लो। सूर्योदय हुआ नहीं कि फिर जनी-छोरे महतारे; हँसेंगे थूकेंगे। उठो, बाजीराव जी उठो, उठो !!

बाजीराव वैरागी की बातें चकित होकर सुन रहा था। वैरागी की वाणी के बहते प्रवाह में उसके टूटे शब्द कहीं-के-कहीं बह गये। अब वह अवाक् सुन रहा था। वह हार गया। नीचे सिर किये बैठा था। पौ फट रही थी। ठंडी-ठंडी हवा बहने लगी। उसका शरीर सिहर-सिहर उठ रहा था। तब भी तापने के लिए उसके हाथ धूनी की ओर बढ़ नहीं रहे थे।

कुछ रुककर वैरागी बाजीराव को समझाते हुए बोला, "देशमुख जी ! आप यह क्या कर रहे हैं ! आपका क्या नुकसान हुआ है ! आपकी हवेली

राख हो गई। बस ! जिस शरीर के लिए यह सब था, वह तो सही-सलामत है। ज रा अपने आसपास तो देखो !"

अजी, आप कम-से-कम स्वतन्त्र तो हो। उन अधर्मियों की जेल में कितने बन्द हैं ! उनकी गाड़ियों में गए ? कितनों के नाक-कान काट लिए गए ! कितनों की गठरी बंधी ! कितने कुओं-बावड़ियों में फिंकवा दिए गए। दोनों हाथ बांधकर कितनों को घोड़ों के पीछे सरपट खिंचवाया ! कितने भूखे मार दिये गये। हरे-भरे खेत उजाड़ दिये गये। कितनों का सारा खलिहान लूटा गया। आज लाज ढांपने तक का कपड़ा कितनों के पास है ! अपना सिर ढकने के लिए कितनों के सिर पर छप्पर है ?

और एकाएक वैरागी के मुंह से शब्द निकले—

कितैकौं भगे दूर ठौरो न भेटे,
कितैकौं दुखी, दुखी हो नसैले ।
फिर कर जु आए घर राख भेट्यो ।
कछू ना उपायो, रहे कसमसा कै ।।

वैरागी की वाणी सुनकर इधर-उधर पड़े मावले लोग एक-एक कर उठे। अपनी गूदड़ी ओढ़-ओढ़कर चुपचाप आकर धूनी के आसपास बैठने लगे। वैरागी अपने में मग्न घन-गंभीर स्वर से कहने लगा—

देशउ नसेला, उठे जो, कुटे वो,
खलिहान की क्या ! खेतऊ लुटैलै ।
सांसऊ बचावे, कबीले बिखेरे,
छोरे, बहू क्या जनी जन वगरगै ।।

वैरागी का चेहरा लाल हो रहा था। छाती में आया आवेग वैरागी बड़े प्रयत्न से रोक पाया था। उसने कहा—"अजी अवसरी के देशमुख ! बाप-दादों ने तलवार के जोर पर नाम कमाए। तुम तो एक ही आघात में ढेर हो गए ! अरे, तुम जैसे किलेदार ढह गये तो ये गरीब बिचारे किसकी आस करें। किसके सहारे खड़े रहें ? और वे तो कभी के निराश हो चुके हैं।

'हाथऊं मलै के, पछतैं बहुत से,
लोहा पड़ा घर, उठाया न तब जो।

बहुतौं हुमसलैं कसमसै माटि माहीं।
खाली पड़े हाथ, कुछ भी न सूझै।
जलाए ये चिन्ता, भली वो चिता भी।
करैं का ? करैं का ? सुनै को ? पड़े हैं !

'देशमुख ! मेरु पर्वत के सामने अडिग होकर खड़े रहो। अनेक के आश्रय बनो, आधार बनो। धीर धरो, देशमुख ! समय देखो, उसे परखो, छाती से भय निकाल फेंको।

'निरन्तर रहो रे सावधान ! सावधान !!
करो रे करो रे जतन का सुसन्धान।
आंधी उठी, क्या ? प्रलय क्यों न आए।
अडिग हो धरो धीर, विजय बस यही है ॥

"अजी, देशमुख, कुछ पराक्रम करो। कुछ अजब करके दिखाओ। यह शरीर ! यह तो जाना ही है। इसकी इतनी चिन्ता ! उसीका त्याग करने के लिए इतने बेताब ! समर्थ राम सहायता के लिए खड़े हैं। वे कृपालु हैं। वे भी परीक्षा लेते हैं। और फिर कोदण्ड लेकर पीछे खड़े रहते हैं। किस बात की चिन्ता कर रहे हो। उठो ! उठो !! भई उठो !!"

वैरागी इसी प्रकार बोलता रहा। कौंधी बिजली के समान बाजीराव का मुख नीचे से ऊपर उठा। मुख की आभा दमक उठी। ओढ़ी गुदड़ी से कमर कस ली, उसकी गांठ बांधकर झटके से वैरागी के पास गया और पैरों को हाथ लगाकर बोला, "आज्ञा दीजिए महाराज ! अब कुछ करतब किए बिना मुंह नहीं दिखाऊंगा।"

"मगर आप मिलेंगे कहां ?"

हाथ उठाकर वैरागी बोला, "हमारा घर कहीं बना हुआ है ! आज यहां तो कल वहां तो परसों न जाने कहां। फिर भी जरूरत पड़े तो हृदय से पुकारो, हम हाजिर होंगे। चिन्ता मत करो।"

"आपको किस नाम से पुकारूं।"

"अरे ! राम के दास को किसी और नाम की क्या आवश्यकता ? उसका नाम एक, बस एक ही, रामदास, समर्थराम के दास।"

अवसरी के जंगल में बाजीराव उतरा और उसका मन उत्साह से भर

गया।

लौटते हुए उसने कितनी बातें सोची थीं। कितनी ही बड़ी-बड़ी पहाड़-सी करामतें करने का विचार किया था। गांव में पहुंचते ही सबसे पहले जानकी की खोज खबर लेनी है। कैसे निसंग हो गया था मैं भी। वह छाती से लिपट-लिपटकर रो रही थी। आक्रोश कर रही थी तो कभी मर्यादा से हुमस कर चुपचाप रो रही थी। पर मैंने उसका हाथ गले में से एक ओर कर दिया था। उसकी पीठ पर हाथ तक नहीं फेरा। उससे बात तक नहीं की, न उसे दिलासा दिया। वह बेसुधी में उतराती रही। पर मैं उसे उसी हालत में अम्बाविका के औसारे पर छोड़कर अपनी राख हो रही हवेली की ओर भागा था। क्या था वहां! ढेर-ढेर राख! मैं उसके चारों ओर घूमता रहा। फिर सहसा, भाई-बन्धों की, घरबार की, जानकी तक की भी माया-ममता छोड़कर, तोड़कर रायेरेश्वर की ओर चल पड़ा था बेहोश धुत्त।

अब सबसे पहले, जानकी की आंखें पोंछनी हैं। उसे दिलासा देना है। अपनी प्रतिज्ञा उसे सुनानी है। समर्थ रामदास ने कैसा अंजन डाला, उसकी कथा कहनी है। हवेली को फिर से उठाना है। सभी भाई सभी ओर से दौड़ कर आएंगे। हजार-हजार हाथ मददगार बनेंगे। इस प्रकार सभी बातों को एक-एक कर जोड़ना है।

किले सुभान मंगल पहुंचना है। मुजरा कर, रूमाल से हाथ बांधकर सारी-सारी वाकयात बतानी है। मुतालिक रहम दिल है। दो-चार साल की वसूली मुआफ कर देंगे। फिर से उसी राख से सब उठाना है, खड़ा करना है। खड़ा जो रहना है।

ऐसे हवाई किले बनाता, विचार करता बाजीराव अवसरी की डांग में घुसा तो सामने ही दो-चार ऊंट बबूल की ऊंची-ऊंची टहनियां चाटते दिखे, सात-आठ घोड़े चरते देखे।

सहमकर बाजीराव ने ऊंट के पीछे घूमते अरब से पूछा। उसने बताया—

"हरामजादे, देशमुख ने सारा भरपाई की नहीं। खुद ही हवेली को आग लगाकर भाग गया है। उसीको पकड़ने हम दीवान के यहां से आए हैं।"

यह सुनते ही बाजीराव की छाती में भय भर गया। धक्-धक् रुकती-सी लगी। सोचा—'लौट चलें। फिर से डांग में जा छिपे। किसने यह चुगली की? कौन है यह दुश्मन? जानकी कहां होगी? उसका कहां क्या हुआ?

'अब भागना क्या! समर्थ रामदास बाबा ने क्या कहा था। डरो नहीं, भागो नहीं। अब जो होगा, उसका डटकर सामना करना है। उसे सहना है। होनहार का सामना जो करना है।' बस, यही मन में गांठ बांधकर बाजीराव ने अरब को ललकारा और गांव की ओर बढ़ चला। अब उसके कदम-कदम में जोश था और सांस-सांस में विश्वास।

छः

क्षेत्र पूना। दो-चार हजार की बस्ती। किसी समय का बड़ा ही सुन्दर गांव। घनी हरी झाड़ियों में पला, संजोया, स्वच्छन्द! इसके पश्चिम-मोत्तर के कोने में भावुड़ी की डांग। उसमें मुठा नदी का गंगा-सा निर्मल प्रवाह। उसके दूसरे पार सहय की चट्टान काटकर आसन लगाकर हजार-दो-हजार वर्षों से पातालेश्वर बैठा हुआ।

इस गांव की अच्छी किलेबंदी थी। तीन ओर तीन दरवाजे थे। तीनों के अलग-अलग नाम थे। पश्चिम की ओर पश्चिम दरवाजा, उत्तर की ओर कुम्हार-दरवाजा, तीसरा था केदार-दरवाजा। इसकी किलेबंदी के भीतर परकोटे से सटकर झांबरे-पाटील की हवेली थी। वही शितोले देशुमखों और होनप देशपाण्डों की हवेली थी, राजर्षि की और ठाकर की भी थी। कुछ देवालय थे। नारायणेश्वर थे, पुणेश्वर थे और थे नागेश्वर और जोगेश्वर। गणपति भी थे। तटबंदी के बाहर बस्तियां थी। तटबंदी के भीतर बनिये थे। उद्योगी, व्यापारी थे। कुछ कारीगर थे। तो कुछ मजदूर भी थे। मतलब यह कि एक आबाद गांव के लिये जो कुछ आवश्यक था, इस पूना में, वह सब कुछ था और व्यवस्थित था।

इसका कारण भी था।

मालोजीराव भोंसले की जागीर का यह गांव था। भोंसलों के हुजूर में रमा हुआ सानन्द !. यहां विवाह-कारज होते, जेवनार होती, पंगते होतीं, देवताओं के उत्सव होते, भण्डारे होते, दो-दो, चार-चार मन भात बनता। एक दो तीन···ऐसी पंगतें उठतीं। बड़ी-बड़ी कढ़ाइयां, परातें इधर से उधर होतीं। देवताओं के उत्सवों में नाटक होते, लीलाएं होतीं, स्वांग होते।

चार मुखों के ब्रह्मा जी कमलासन पर विराजते। सरस्वती मोर पर शोभा देती, बड़ी तोंद वाले गणेश जी बड़े से चूहे पर बैठे दिखते। दस मुखों का रावण गरजता-चिल्लाता निकलता। मशालों के उजालों में रात-रात भर यह उत्सव चलता रहता।

किन्तु एक दिन ये मशालें बुझ गयीं। दिये लातों से उड़ा दिए गये। समइयां लुढका दी गयीं। ठणा ठण···ठण···। पूना के पुण्य की सारी की सारी झांकी, माटी में मिला दी गयी। और इस प्रकार राजे शहाजी भोंसले का स्वराज्य का स्वप्न गर्भ में ही बिखर गया।

आदिलशाही का सरदार, रायाराव, राजाशहाजी के उठाव को तोड़ने के लिये दौड़ा आया था—धूल उड़ाते, दोनों ओर की बस्तियों को उजाड़ते, बेहाल करते। भरी-पूरी जुआरी की कनगियों को तोड़कर साफ करते। अपनी प्रचण्ड सेना के पीछे विनाश की लीला के चिह्न छोड़ते हुए रायाराव पूना पर उतरा था। उसे हजरत का हुकुम जो आया था—बदतमीज शहाजी की बगावत को उखाड़कर फेंक दो !

कभी बहुत पहले जीजाऊ ने अपने मन में लाख मनौतियां मानकर संजोया 'स्वतंत्र मराठा राज्य' का स्वप्न अभी पूना की उस उपजाऊ मिट्टी में कुछ-कुछ जम ही रहा था। शहाजी राजा ने छत्तीसौ गांवों के देशमुखों, देशपाण्डों को बुलावा भेजा था। महारों, कुम्हारों कारीगरों को भी पुकारा था। बनियों, व्यापारियों को बुलाया था। मुकाम पूना में खासों की हवेली के बाहर के मैदान में चांदनी रात में यह सारा समाज इकट्ठा हुआ था। उन्हीं में बैठकर राजा शहाजी ने अपने मन का संकल्प उन लोगों के सामने खुलकर रखा था, उन्हें समझाया था।

सारे-के-सारे उस स्वप्निल सुखद विचारों से रोमांचित हो उठे थे। राजा ने स्वयं देवी का फूल उठाकर प्रतिज्ञाएं की थीं—अब यहां से आगे कोई भी आदिलशाही के अमीनों को नहीं मानेगा। उगाही पट्टेदारी का हिसाब आदिलशाही को कचहरी में, सुभान मंगल के दरबार में नहीं पहुंचेगा। इन छत्तीसों गांवों से आदिलशाही को घास का तिनका भी नहीं पहुंचेगा। बेगार के लिए काली कुतिया तक आदिलशाही के अमल-हुमल में नहीं जाएगी। सभी अपने-अपने हथियार पानी चढ़ाकर, साफकर तैयार रखेंगे। टूटी जीन को चमारों से ठीक करवाएंगे। लड़ाई का सारा सामान संजोया जाएगा। शहाजी राजा के हुजूर में रहेंगे, उनकी आज्ञा को जोहते रहेंगे और संकेत मिलते ही आदिलशाही की एक-एक निशानी उखाड़-उखाड़कर फेंक दी जाएगी। अरबी-फारसी के सिक्के रद्द कर दिये जाएंगे, गला दिये जाएंगे। आदिलशाही के फर्मान फाड़-फाड़कर उसके टुकड़ों को हवा में उड़ा दिया जाएगा। अब आज इन छत्तीसों गांवों और खेड़ा में मराठों का अमल शुरू हुआ, ऐसी घोषणा कर दी जाएगी।

यह सब कुछ विचार कर लेने पर, आगे के मनसूबों और कामों के लिए राजा शहाजी मसलतों के लिए कूच कर गये थे। और इधर यह खबर, स्वराज्य के मनसूबों की ये गुप्त बातें, दो से चार मुखों तक होती हुई फूट पड़ीं, और बीजापुर पहुंच गईं। अब बीजापुर के दरबार में अंगारे भड़क उठे। चिनगारियां फूट पड़ीं। आला हजरत ने नाराज होकर रायाराव का नाम पुकारा। उसके आगे पान थाल पहुंचा। रायाराव ने बड़े ही अंदाज और अदब से बीड़ा उठाया और अपनी पगड़ी में खोंच लिया। राजाराव ने अपनी सेना को पूना की ओर कूच करने की आज्ञा दी। उसके घुड़दौड़ से जो बंवडर उठा, उसने पूना में भोंसलों की हवेली के चिरागदान बुझा दिए। सारा आकाश आदिलशाही के घुड़सवारों की चिल्लाहटों, आवाजों से भर गया। 'या अलि या खुदा', की गर्जना चारों ओर से उठने लगी। डरे हुए भोले-भाले लोग अनेक रास्तों से पहाड़ियों, टेकड़ियों की ओर भागने लगे। हड़बड़ी में टकराते, गिरते-उठते वे भागे जा रहे थे। कितने ही घोड़ों के पैरों तले रौंदे गए। जो निष्ठावान लठैत थे, वे लड़ते-लड़ते कट-कटकर गिर गए। उनकी लाशों से पूना की गलियां

और रास्ते पट गये। गलियों की फरसियों पर रक्त वह रहा था। कितनी ही बहू-बेटियों की चूड़ियां टूटीं, कितनों के कुकुंम वह गए। भोंसलों की बड़ी हवेली के दरवाजे पर, बड़ी-बड़ी बल्लियों पर कुल्हाड़ियों, फरसों के घाव पड़ने लगे। कड़ुए तेल में डुबोई चिधियां धू-धूकर जलने लगीं। देखते-देखते हवेली से लपटें उठने लगीं। ऊंची-ऊंची, और ऊंची। केदार-दरवाजा फोड़ दिया गया। कुम्हार-दरवाजे की भी वही दुर्गत की गई। पश्चिम-दरवाजा भी राख हो गया।

सांभरे पाटील तथा शितोले देशमुखों की हवेलियों की सफेद चौड़ी दीवारें धाड़-धाड़कर गिरने लगीं। धूल की धुंध ऐसी छा गयी कि लोग अपना पराया भी नहीं पहचान पा रहे थे। देवालयों के कलश माटी में मिल गए। देवमूर्तियां तोड़ दी गयीं, शिवलिंग लुढ़का दिए गए।

उस गांव की दुर्गति कर देने पर रायाराव ने एक हल जुतवाया। कहीं से दो गधे हांककर लाए गए। हल जोता गया। और उस पूना की पवित्र माटी में वह असगुनी हल चलाया गया। फिर गांव की कचहरी के सामने एक तख्ती ठोक दी गयी। उसकी ठूंठ पर टूटी पन्हैया और एक कानी कौड़ी टांग दी गयी। और डुग्गी फिरवाई गयी—

"जो भी कोई शाहीतख्त के साथ बगावत का झण्डा उठाएगा उसके घर-बार की इससे भी बदतर दुर्गत कर दी जाएगी।"

तब से पूना उदास हो गया, उजाड़ हो गया। इतनी बड़ी हवेली के खण्डहरों में अब सियार और जरख रहने लगे। देवालयों के सामने के जिन पीपल-वृक्षों को पूतोंवाली, पतियोंवाली परिक्रमाएं कर दीया धरतीं, वहां आज अंधेरा था, और उन वृक्षों पर उल्लू बोल रहे थे। वहां आज दिन में भी पैर रखने का कोई साहस नहीं करता था। साल-दो-साल तक पूना गांव की वह जमीन बांझ पड़ी रही।

कुछ दिनों बाद इक्का-दुक्का कबीला डरते-डरते इस ओर आता। चोरी-छिपे कहीं ओसारा छाकर रहने भर की जगह बनाता, रहने लगता। कहीं-कहीं मुट्ठी-मुट्ठी बोया जाने लगा। झिलमिल बहते पानी को रोक-कर छोटी कछवाड़ियां होने लगी। पर कहीं धूल का बवण्डर उठता तो सभी चौकन्ने होकर जंगल की ओर भागते। थोड़ी देर बाद कोई धीरे-से

बाहर निकलता तो पता लगता वह तो आंधी थी। केवल धूल-बवण्डर था। कोई किसीका धावा नहीं था। तब कहीं उसांसते-उसांसते लोग गांव में उतरते।

ऐसे ही एक दिन कुछ दादियां, बूढ़ियां मुठा नदी पर कपड़े धो रही थीं। तभी उन्हें धीमें-धीमें कुछ आवाज सुनाई दी और वे यह कहते हुए भागीं कि "धावा आया रे, आया, रे लुटेरे आए रे, आए···।"

मुठा नदी की ढलान उतरकर बैलों का एक बढ़िया-सा रथ रुका। आगे के घुड़सवारों के घोड़ों ने अपनी बांकी गरदनें झुकाईं और मीठा-मीठा पानी पीने लगे। रथ के पीछे नालखिया, घोड़े, ऊंट, मुठा नदी के इस तीर पर रुके।

रथ के रुकते ही सुन्दर घोड़े पर बैठे राणोजी ने अपना घोड़ा रथ के पास किया। तभी बुढ़ापे की केवल सफेदी सिर पर लिए मजबूत माटी के दादोजी रथ के पीछे की नालखी से उतरे। जल्दी-जल्दी रथ के पास पहुंचे। रथ के पीछे किनखाणी चिक एक ओर सरकाकर एक दासी नीचे उतरी। उतरते ही उसने जूतियां नीचे जमाईं। उसीके पीछे रेशमी साड़ी को अदब से, मर्यादा से, साधते हुए जीजाउ मां धीरे-से नीचे उतरी। दासी हाथ का सहारा दे ही रही थी कि जीजाउ मां बोली, "गरज नहीं, मैं तो उतर भी गयी।" जूतियों में पैर बढ़ाकर वह रथ की ओर मुड़ीं। तभी छह बरस के एक सुन्दर सलोने रूप ने रथ के पीछे से धप् से कूद लगायी। मां के आगे-आगे वह बढ़ा, नदी के प्रवाह में उतरा। मुट्ठियां कमर पर टिकीं, और आंखें चारों ओर एक बार घूम गयीं। तभी राणोजी घोड़े से उतरकर उसके पास आकर खड़ा हो गया। बोला—

"मुजरा, धनी।"

"यह हमारा मावल ?"

"पसंद आया धनी ?"

इस सवाल को हवा में ही छोड़कर इस छोटे धनी ने भर-भर, एक, दो, तीन कितने ही सवाल पूछ लिए।

"हमने अभी पार की वह नदी ?"

"वह मुठा नदी जी। इसे 'मुठा' कहते हैं।"

"ये दोनों मिलती भी हैं ?"

"हां जी। यहां से एक आवाज की दूरी पर इनका संगम है।"

"यह बहती आ रही है ?"

"हां, यह मुलशी घाटी में होकर आती है। उस ऊपर के भाग में उसे 'पौना' नदी मिलती है।"

"और यह मुठा···?"

यह बातचीत चल ही रही थी कि पके गुलमुच्छों वाला लम्बा-चौड़ा, तगड़ा, बूढ़ा, पन्हैया करकराता हुआ वहीं आ पहुंचा। बोला, "जुहर है हुजुर में, मुजरा है हुजुर।"

धनी, यह मुठा आती है रोहिड़ की घाटी से, ऊपर के घाटों से होकर। वह दूर किला कोण्डाणा दिख रहा है। उसके पास ही घाटी है। उस घाटी की तलहटी से यह नदी उतरती है, उस पूरी घाटी का सारा-का-सारा पानी इसी में बहता आता है।

उस बीते युग के पुरुष ने बताया कोण्डाणा में ही वह छोटा सलोना शैशव खो गया। उसकी दीठी एकटक उसी किले को देख रही थी। अब तक जीजाउ नदी के प्रवाह तक पहुंची थी। जूतियां एक ओर रखकर उन्होंने लक्ष्मी के पैरों जैसे दोनों गोरे-गोरे सलोने पैर उस पानी में रख दिये। महाराष्ट्र की लक्ष्मी ने इस दिन वहां बहुत दिनों बाद प्रथम बार पाद्यं अर्घ्य का सत्कार पाया था।

आंचल से मुखड़ा धीरे-धीरे टीपते उसांसते वह दादोजी की ओर मुड़कर बोली—

"कैसा सुन्दर स्थान है, दादोजी ! अंगूठी के नग जैसा पर इसकी यह कैसी दुर्दशा ?"

एक हाथ छाती पर बांधकर, दूसरा पूना की ओर उठाकर दादोजी ने कहा—

"यह स्थान आपके मन को पसन्द आया, यह सुनकर बहुत ही समाधान हुआ। आऊ साहिबा ! चिन्ता का कोई कारण नहीं। आप तो साक्षात् लक्ष्मी हैं। जहां आपका चरण-स्पर्श होगा, वहां ऋद्धि-सिद्धि हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी। इस स्थान की आज यह दुर्दशा है। पर कल यही आबाद होगा,

गुलजार होगा। छोटे धनी भी इसके आंचल में खो गए दिखते हैं।"

आऊ साहिबा बोली,

"इतने दिनों से जल बिन मीन-सा वह छटपटा रहा था। अब उसे उसका पानी मिल गया है। इसका जन्म किले पर हुआ। साल-दो-साल शिवनेरी पर रहा। फिर माहुली के किले पर रहा, ऐसे ही वे दिन बीत गये। फिर मैदानों को पार करते-करते उसका मन कसमसा रहा था। पहाड़ों, दर्रों का वह पंछी फिर से अपने नीड़ में मानो आ गया है।"

दादोजी का मुख कौतुक से भरा था।

"हां, रानी साहिबा, सही बात है।"

कोण्डाणा के किले का नामजद सूबेदार बनाकर, बादशाह ने हमें यह कामगिरी दी है। आऊ साहिबा! वह किला तो आपका घर ही है। अब मेरी भी यह इच्छा है कि यह पहाड़ों, दर्रों का पक्षी, इन्हीं में पले बढ़े। इसके गरुड़ जैसे पंख हों, हमें इसी में संतोष है।

"क्यों कान्होजी नाईक ठीक है न?"

गलमुच्छों से भरा रौबदार मुंह खुला, बोला, "ठीक, बिलकुल ठीक। हमारे छोटे धनी को किले चाहिएं? हमारे इस इलाके में किले-ही-किले हैं। जिधर आंख उठाइए उधर पहाड़ों, घाटियों के सिर पर किला टिका है। वह देखो, इस ओर खड़ा है वह पुरन्दर, वह सामने होडिडा, डूबती की ओर तोरना, वह जरा ऊपर कोण्डाणा, सारा मुल्क ही किलों से भरा है। यह पहाड़ों-घाटियों की दमदार हवा, इन झरनों का यह झर-झर बहता निर्मल पानी, जंगल की इन झाड़ियों के करौंदे हमारे इस जंगल के पंछी के। पंसद आए, ऐसा ही तो है यह सारा-का-सारा।"

इतने में बावर्डी की ओर से चार-छः घुड़सवार धूल उड़ाते वहां आ पहुंचे। आते ही सभी सवार टप्-टप् घोड़ों से कूद पड़े। सभी ने झुक-झुक कर मुजरे किए।

दादोजी ने कुछ अनमने से ही उनके मुजरों का जबाव दिया और डपटते हुए बोले—

"क्या है यह पाटील? क्या आपको कुछ खबर नहीं थी? आऊ साहिबा का रथ पूना की सीमा में आ पहुंचा। उनकी तजबीज करने, उनकी

व्यवस्था करने आपको इससे भी पहले आ जाना चाहिए था। आप तो अब आए हैं। ऐसे ही काम होते रहे तो आऊ साहिबा की नौकरी आपसे हो चुकी।"

डरे हुए पाटील रूमाल से हाथ बांधकर बोले, "गुनाह हुआ, बस इससे बढ़कर हमारे पास कोई जवाब नहीं है।"

"ठीक है, रहने दो पाटील। यह पहला ही गुनाह है समझकर मां साहिबा इसे मुआफ कर रही हैं।"

"इनके डेरे की क्या व्यवस्था की गयी है ?"

आंबरे ने गरदन झुका दी, बोला,

"आदेश जरूर पहुंचा था···पर···"

अधीर हो उठे दादोजी। डांटते हुए बोले, "और अब पर···क्या है ?"

"···गांव की चावड़ी के सामने आदिलशाही के सरदार ने खन्ती ठोक रखी है, उस पर टूटी पन्हइयां···।"

"चिन्ता करने की बात नहीं है पाटील, ये असगुन किसके लिए ? हमारे लिए ? हट्, छोड़ो ये बातें हमारी आऊ साहिबा प्रत्यक्ष गिरिजा हैं, जगदम्बा हैं, लक्ष्मी हैं। उनकी दृष्टि पड़ते ही सब कुशल-क्षेम होगा।"

"हम सब कुछ समझ चुके हैं। तुमने कुछ भी व्यवस्था नहीं की है। केदारेश्वर का मन्दिर ?"

"वह तो है ?"

"बस चलो, उसीके अहाते में छबीने ठोकिए। आऊ साहिबा वहीं ठहरेंगी। तब तक आपकी हवेली की जो कुछ टूट-फूट हुई है, उसे ठीक करो। अब चलिए। देर मत करो।"

"मुझ गरीब की झोपड़ी में आऊ साहिबा रहेंगी, इससे बढ़कर मुझे क्या आनन्द ! यह तो सबसे बढ़कर उत्सव है···।'

सात

उस उजड़े इलाके में आऊ साहिबा का आना क्या हुआ, सारा-का-सारा प्रदेश हड़बड़ाकर जाग उठा। आदिलशाही के अनेक सरदारों द्वारा ध्वस्त किए उन छत्तीसों गांवों की जागीर में एक नवीन चेतना अंगड़ाई लेती उठी। चारों ओर नव चैतन्य नाचने लगा।

अब किसी तीसमार खां की परवाह करने की जरूरत नहीं। अब स्वयं आऊ साहिबा भोस-सी हमारे बीच रहने आयी हैं। इससे बढ़कर हमें क्या चाहिए? यही तो दुःख था। यही मन में घर करता था। जिसके आसरे से इतने ऊंच-नीच सहे, जिसके सहारे सुख-दुःख भोगे, ऐसा कोई रौबदार, आबवाला भरोसे का व्यक्तित्व ही तो नजर नहीं आता था। सारे-के-सारे वतनदार, देशमुख-पाटील, देशपाण्डे, भाई-बन्धों की छाती पर अपने करतब दिखाने में मगन थे। यह दावेदार जो निसन्तान हो, यह निपूता हो, यही एकमात्र मंगलमय कामना! और उसे पूरा करने आदिलशाही के सरदारों की जूतियां, पन्हैया उठाते। वे कहते थे, ये करते थे। भाई-बन्धों का नाश हो, उसकी जागीर, उसका वतन हमें मिले, यही एकमात्र आशा चार हाथ का जमीन का टुकड़ा मिले, मान-सम्मान के पान हाथ पर पड़ा करें, यही एकमात्र इच्छा! यही एकमात्र आकांक्षा! इससे परे, इससे भी बढ़कर, कुछ जीवन होता है, उस ओर घना अन्धकार! अपने स्वार्थ, तुच्छ स्वार्थ के परे, कुछ दिखलाई ही नहीं देता था। उन्होंने इन टुकड़ों पर से जाति, गौत, धर्म, परम्परा, सम्बन्ध, यहां तक कि मनुष्यता तक सभी को उतारकर चौराहे पर रख दिया था। ऐसे घर डुबाने वाले वतन गरीबों से कौन आस करें? तब बिचारी गरीब जनता ने नदियों और जंगलों का आश्रय लिया। बाप-दादों ने बसाई बस्तियां, खेड़ा, गांव ओस पड़ने लगे। वे सारे-के-सारे कबीले, कुटुम्ब सहयात्री की गोद में उसीके सहारे छुपकर रहने लगे। इसे भरी आंखों से किन्हीं उन्मत्त हाथों से अपने ही घरों की दुर्दशा होती चुपचाप देख रहे थे। उनके गरम उसांसों से कड़ाके की सर्दी में भी गरमी महसूस होती। उनके आंसुओं के झरने

बनते, नाले बनते, नदियां बनतीं और वह सारा-का-सारा प्रवाह समुद्र में मिलता। यों ही वह सारा समुद्र खारा नहीं हुआ है !

ऐसे उस उजाड़ में, ममतामयी जीजाऊ आयी, यह वार्ता चारों ओर फैलते ही, जंगलों, बीहड़ों में घूमते पशुओं के कंकालों में भी चेतना उत्पन्न हुई। मनुष्यों की क्या कहें ? पूना के आसपास के गांव, खेड़ा, अचरज भरी आंखों से देखने लगे। एक-दूसरे को पुकारने लगे। कहते—"अजी, उठो। प्रत्यक्ष लक्ष्मी हमारे इस उजाड़ में रहने आयी है।" पौड़ खोंडा जाग उठा, आंवजली गांव बोलने लगा। घोड़वाडी में चहल-पहल होने लगी। रहाट-बाड़ी भी हड़बड़ाकर जग उठी, मालखेड़ा, अंग झाड़कर उठ बैठा। कुरन गांव गुदढ ले कर उठा। कर्यात प्रदेश, मुठा घाटी, मुसाघाटी, रोहिड़खेड, पौन प्रदेश, आदुर मावल, गुंजन मावल ऐसे एक क्या, बारहों पठारों ने और अठारह घाटियों ने आंखें खोलीं तो देखा कि सभी ओर लोग जग उठें हैं। सारी टेकरडियों, पहाड़ों के शिखरों पर उस सुदिन की प्रतीक्षा में आसन लगाए बैठे, भैरव और रघू उठ बैठे हैं। भुजाओं की फट-फट आवाज हो रही है। शंख फूके जा रहे हैं। भीमा शंकर, चिन्तामणि, कोढणपुर वासिनी, बल्लूवेश्वर सिद्धेश्वर जांवाई, सारे के सारे देवताओं ने अपनी समाधियों का त्याग किया है। उनके नेत्र-कमल खिल उठे हैं। कृपा की दृष्टि से वे सभी दिशाओं को निहार रहे हैं। सभी ओर उनका जयकारा घूम रहा है, गूंज रहा है।

भीमा और भामा, इन्द्रायणी और पवना, कानंदी और गुंजन, मूला और मुठा, नीरा और करहा, सारी-की-सारी सह्याद्री की ये लाडली बेटियां इतने दिनों उदास वहीं जा रही थीं। डकैतों लुटेरों ने काटकर, छांटकर फेंके मावलों के शवों मुर्दों को ढो-ढोकर ले जाने का काम कल तक उनको करना पड़ा था। स्थान-स्थान पर लुटती आबरू बचाने के लिए कूदी बहू-बेटियों को उन्हें अपने पानी में आसरा देना पड़ा था। उन उजाड़ बीहड़ों में कभी-कभी उठता दिखता मृगजल क्या था ? उन नदियों की वे उसांसे थीं।

पर आऊ साहिबा आई और सह्याद्री की ये सारी बेटियां हरख उठी, कल-कल कर उत्साह से बहने लगी। सारी-की-सारी उस दिन से अमृत-

वाहिनी बन गयी।

पूना की ओर आते रास्ते, पहाड़ी पगडंडियां उफन-उफनकर बहने लगीं। लोगों का महापुरुष आया। दुखी उजड़े, उजाड़े गए अपनी फरियाद ले-लेकर उस ओर बढ़ें। नया रक्त, नयी आकांक्षाएं लेकर उस ओर बढ़ा था। बड़े बूढ़े लोग अपने अनुभवों की पूंजी लुटाने की हवस से बढ़ चले थे। आफतों के मारे, आसरे के लिए उत्सुक थे। झांबरे पाटील के अहाते में ऐसे लोगों की भीड़ खड़ी थी।

पूना तक की दौड़ से थके मांदे मावलों को विशाल वटवृक्ष छाया कर रहा था। उसकी लटकी जटाएं धीरज दे रही थी। कोंपलें हवा से रह-रहकर हिलतीं तो मावलों की सलोनी आशाओं पर चंवर-से डुलते।

दादोजी की तरुणाई मानो लौट आयी थी। उन्हें क्षण भर का आराम नहीं मिलता था। अदम्य उत्साह भरा था। अथक काम चल रहा था। विशाल योजना थी। और ठीक भी तो था। उनके पीछे-पीछे आज सप्तशृंगी की अम्बादेवी, प्रत्यक्ष भाऊ साहिबा खड़ी थी, राजेशहाजी की कुलवन्त रानी! जीजा मां साहिबा!

कारिन्दो के? कुर-कुर करने लगे। दवातों की स्याही साफ होने लगी।

"नाम फलां-फलां, देशमुख! मुआम धामनी, मौजा कोण्डाना, प्रान्त का पूना!! को लिखी? नामजद सूबेदार कोंडदेव की राम राम—ऊपर लिखी कि अब तक तुमको मालूम ही है कि इन दिनों खुद वज्रचूड़े मण्डित, रानी साहिबा, जीजाऊ, छोटे धनी के साथ। मु.॥ पूना में रहने आयी हैं। तुम्हारी भेंट हो, ऐसी मालिक की इच्छा है। ऐसी स्थिति में फरमाना लिखा कि चिट्ठी मिलते ही इधर आने की तजवीज करो। मन में किसी प्रकार का डर या खटका न रखो। और क्या लिखें। समझकर काम करो। इति।"

फरमान की थैलियां ले-लेकर हरकारे चल पड़े। नदियां-नाले पार करने लगे। घाटियां चढ़ने लगे। दरिया-घाटियां उतरने लगे। थैलियां पहुंचाने लगे। भले-भले घर के लोग आगे बढ़कर थैलियां सिरमाथे कर लेने लगे। किसी पढ़े-लिखे से कागज पढ़वाने लगे। अभी तक लोगों ने

सुना भर तक था। किन्तु आज तो दादोजी के हाथ का लिखा पत्र उन्हें मिला था। हरकारे को देखते ही इकट्ठा हुए लोग वहीं आंगन में, अहाते में, ओसारे पर बैठ जाते। हरकारे के लौट जाने पर घर-घर में, गांव-गांव में, चर्चाएं होतीं। बक्-बक्, झक्-झक् होती। आज तक इतना मधुर शब्द उन्होंने सुना तक नहीं था। अनेक बार जल चुके थे। सूबे की ओर से बुलावा आता, जवाब में इधर से गया आदमी उधर-का-उधर ही रह जाता। उसकी माटी की जो कुछ दुर्गति होती वह सब उधर की उधर। इसीसे उनके मन ऊसर, उजाड़ से हो गए थे। उन शीतल, अमृत सदृश अक्षरों का, शब्दों का, स्वाद भी वे फूक-फूंककर ही लेना चाहते थे। पढ़े-लिखों से बार-बार पत्र पढ़वाते। कुछ भयंकर, कुछ बुरे-भले, तर्कों, विचारों को एक और रखकर, पत्र के कुछ अंशों को, वाक्यों को मन में गुनते-विचारते।

"अब खुद वज्र-चूड़े-मण्डित सकत-सौभाग्य मण्डित जीजाऊ, छोटे धनी के साथ मु० पूना में रहने आयी हैं। तुम्हारी भेंट हो ऐसी इच्छा है।"

इन वाक्यों को कुछ समझकर भले, कुलीन लोगों के मन गौरव से भर जाते। "खुद जीजाऊ भोंसली, उसकी थैली, उसका पत्र, वे खुद जागीर में रहने आयी हैं, उनकी खुद भेंट करने की अच्छा है, यह सब सोचकर वे बोल उठते, "अब तक तो जरूर ही चलना चाहिए।" फिर भी बड़े-बूढ़ों को, दादी-नानियों को तो पूछो।

पर उन दिनों इन बड़े बूढ़ों के मन मर चुके थे उनमें विचार करने और बताने की चेतना कहां थी ?

आग बरसाती आफतों से उनके मन जलकर राख बन चुके थे। कोड़ों की फटकारें, भालों की खरोंचे खा-खाकर, बैलों की जून पड़ी चमड़ी के-से उनके मन मर चुके थे। भट्टी में तपी मिट्टी के समान ऊपर हो गए थे। वहां उन वाक्यों, शब्दों की माधुरी की वर्षा से कोंपलें फूटती !

उनके मनों में इन बातों से क्या नवीन विचार उठते ?

जाकर उन्हें उन थैलियों, पत्रों की बातें कहते तो उनकी निराश हुई दृष्टि दो-चार बार खुलती-मिटती। लगता अब जगी, तब जगी। पर सब व्यर्थ ! उकड़ूं बैठे के बैठे। वे अपनी बैठक तक नहीं बदलते। रूखे जठर

बने हाथों से टकुरों पर बंधी फटी पुरानी पगड़ी की चिंधियों को इधर-उधर करते। थोड़ासा सिर खुजाते लगता कि अब बोले, तब बोले। हुंकार भरते और खंकारकर चुपकर जाते मानो सभी चिन्ताएं, वासनाएं उन्होंने थूक दी हों।

उनके शरीर की माटी में उस अमृतवर्षा से जरा भी कहीं सौंधी लहर नहीं उठी।

भोंसले की ओर से बुलावा आया। "क्या हुआ ? क्या खेतों में मनों उपज उपजी ? कि गाय और भैंसों के व्यापारी आये ? दूध-घी की नदियां बहने लगीं ? कि बादशाही के पकड़ने आने वाले लोग सदा-सदा के लिए लौट गए ? या डाकुओं और पिंडारियों द्वारा भगाई बहू-बेटियां सही-सलामत, आबरू और मर्यादा को बचाकर बेदाग हँसते-हँसते लौट आयीं ? या दो-चार बरस पीछे पड़े अकाल में मरे लोग हँसते-हँसते जी उठे ? या खेत जोतते कहीं गढ़ा धन मिल गया। क्या हुआ ?"

और इन सबका ऐसा सोचना बेबुनियाद भी नहीं था। उन्हें आज तक के अनुभवों से मालूम था कि पूना और उसके आसपास के छत्तीसों गांवों की जागीर भोंसलों की है। वह बहुत दिनों से है पर उस जागीर का सुख उस भोंसले ने कभी चखा नहीं। भोंसले का घोड़ा उस ओर कभी मुड़ा नहीं, आया नहीं। जागीर नाम मात्र की भोंसलों की। पर ठकुराई चलती थी बादशाह के ठाकुरों की। वही बेठविगार, वे ही वसूली के अत्याचार, वे ही कोड़े। आत्मघात करते बनता नहीं, इसलिए जी रहे थे। नहीं तो उसे जीने में भी क्या कुछ रस था ?

इसलिए महतारों को उस बुलावे का कौतुक नहीं था। पर जिनके मन अभी इनके निढाल नहीं हुए थे, उनके मन में आशा की कोंपलें फूट पड़ीं। जागीर की कचहरी से इसप्रकार का बुलावा पहली बार आया था। उन्होंने तय किया कि इस बुलावे को सादर स्वीकार करेंगे। खुद जीजाऊ साहिबा की ओर से बुलावा आया है। उस मां के पास जाएंगे। इस काली माटी के दुखड़े मां को सुनाएंगे। हृदय की व्यथा उसके सामने कहेंगे। बड़ी रानी है, उसकी ममता भरी फूंक से इन सारे दुःखों का नामोनिशान नहीं रहेगा।

बस तय हुआ तो सभी नौजवान उठे, खूंटियों पर टंगी जीन उतारी गयी, जंगलों, डांगों में चरते घोड़ों को पकड़कर लाया गया। उनकी पीठ पर खरारे के चार हाथ फेरे गये। उनकी कंकाल-सी पीठ पर जीनें कसी गयीं। उनके मुंह में लगाम दी गयी। जवानों ने भी पीठों पर ढाल बांध ली। कमर में पल्लेदार ने तलवार बांधी, सिर पर पट्टियां साधकर पगड़ी की चिंधिया बांधी, कमर में पुराने ही दुपट्टे कस लिए और फिर घोड़ों पर सवार होकर ये जवान अपने-अपने गांवों से निकले। सारा गांव विदा करने आ पहुंचा। धीरे-धीरे आठ-आठ, दस-दस का जमाव दौड़ता-भागता घोड़ों पर चिल्लाता पूना की ओर बढ़ चला। सभी में नयी उमंग थी, नयी उम्मीदें थीं।

आठ

पूना गांव का पश्चिमी छोर। पश्चिमोत्तर दिशा में एक बड़ा सा मैदान। उत्तर की छोर पर मुठा नदी का सम्पन्न प्रवाह। गांव की मुख्य बस्ती से कुछ दूर।

यहां खासों का महल बनने की योजना थी, विशाल तथा व्यवस्थित काम का या महल के कारोबार का, गांव की बस्ती पर जरा भी भार न पड़े। जरा भी आतंक न लगे। इसलिए दूरदृष्टि योजक स्थान को चुना था। चतुर, अनुभवी दादोजी !

एक शुभ मुहूर्त पर महल की नींव रखी गई। इस इलाके में इतना बड़ा काम बहुत दिनों बाद खड़ा हो रहा था। जनता में अपार उत्साह था। पंछियों जैसे कारीगर, राजगीर, मजदूर, भिस्ती आ-आकर जुटने लगे। दादोजी ने यत्न से दूर-दूर के चतुर, गुणी कारीगर एकत्रित करना प्रारम्भ किया। लकड़ी तराशी का काम करने वाले गुजराती बढ़ई आए। हाथी-दांत का जड़ाऊ काम करने वाले राजस्थानी गुणी आए। कुशल चित्रकार आए। पत्थर फोड़ने वाले पथरोट आए। कुशल कुम्हार आए।

भट्ठी वाले आए। भट्ठे के भट्ठे रचे जाने लगे। सारा-का-सारा कस्बा काम करनेवालों से भर गया।

शाहाजी राजे के साथ दादोजी बहुत घूमे थे। उन्होंने बीजापुर जसे अनेक राजमहल देखे थे। महाराष्ट्र की राजलक्ष्मी को उन महलों जैसी ऐय्याशी की हवस थी नहीं। न ही आवश्यकता थी महाराष्ट्र के राजा को। इन अनगढ़, सरल भोले-भाले देशवासियों को ऐसे घर की आवश्यकता थी जो उचित हो, मजबूत हो, जनता के लिए भार न हो।

सुरक्षा की दृष्टि से फौलादी, दिखने में सुघढ़। भीतर पैर रखते ही रौब का, अस्मिता का प्रभाव पड़े। मन प्रसन्न भी हो। विशाल हो, काम में शोभा हो और कारीगरी हो। वह महल छोटे राजे शिवाजी के लिये बन रहा था। वहां आज महाराष्ट्र की लक्ष्मी, मां जीजाऊ, रहने वाली थीं।

इसी दृष्टि से दादोजी ने लकड़ी का अच्छा खासा माल ढूंढ़कर इकट्ठा किया था। उसपर नक्काशी की गयी थी। सीधा-सा खम्भा, ऊपर से नीचे तक चिकनी गोलाई। ऊपर की ओर चौखटी बैठक। उतरती गोलाई पर मोर, मैना, तोता जैसे पंछी तराशे गए थे। लकड़ी की बनी छतों के नीचे खम्भों के पास पूरे अंग पर चतुराई से हाथी-दांत का काम किया गया था।

औंध, पाषाण, भावुर्डा जैसे स्थानों का व्यवस्थित दौराकर देख-भालकर पत्थरों की खदानें खोदी गयी थीं। वहां से फौलाद जैसे काले-काले पाषाण प्रस्तर लाए गए थे। उनको तराशकर करीने से एक-एक खण्डा तैयार किया गया था। धीरे-धीरे महाद्वार की कमान रची जाने लगी। उसके बीचों-बीच गणरायजी की छवि बनाई गई थी। उनके दोनों ओर सुन्दर कमल खिल उठे। सारे ही कारीगरों की छेनियां ऐसे चलतीं मानो वे अपनी ही छाती पर उंगलियां फेर रहे हों मुलामियत से, खबरदारी से, साधकर ऐसे कि गढ़कर पत्थर सजीव हो उठता था।

काम की बड़ी खबरदारी से चौकसी हो रही थी। और वह ठीक भी था। इस महल की मजबूती किले जैसी अपेक्षित थी। कब कैसा मौका आ पड़े। यह न भी हो तो महल सौ-चार-सौ वर्ष तक अडिग खड़ा रहे। यह

सब दादोजी की दूरदृष्टि थी। रात-दिन चूने को तैयार करने का काम चलता था। पिसते चूने में हर्र पीसी जा रही थी, गुड़ मिलाया जा रहा था। जंगल से इकट्ठा किया, गोंद मिलाया जा रहा था। उत्तम चूना इन मसालों की मदद से फौलाद का काम कर रहा था।

भरे शरीर के, भरे गालों वाले, भरी गदरी गलमुच्छों वाले कारीगर इस मसाले को खण्डों पर थापते हुए खुश होते और कहते, "ऐसा चूना, ऐसा मसाला, कभी हाथ को मिला ही नहीं।"

गधों पर ईंटों को लादकर कुम्हार ईंट इधर की उधर कर रहे थे। ईंटों के अम्बार से लगते। कुम्हारों और कारीगरों में होड़-सी लगती। एक अम्बार लगाता, दूसरा अम्बार को करीने से लगाकर भीत उठाता। लगता ईंटें खत्म हुईं कि ईंटों का अम्बार उठने लगता। उनके इस भागते काम को देखकर कभी कोई चौकसी करता कारिन्दा चिल्लाता, "सबूर, भई सबूर, क्या भाग रहे हो? कोई शेर पीछे पड़ा है या चीता। ईंटों पर मसाले को जमने भी तो दो।" कारीगर कहता—"यह चूना है? यह तो यों लगा और वह जमा। गजब का मसाला है।"

"अच्छा?"

"देखना है? परखना है?"

कारीगर ने वहीं किसी फैले पत्थर पर चूना चुपड़ दिया। एक सवार को बुलाया, उसके घोड़े का एक सुम उस चुपड़े चूने पर रखवाया और लगा उस घुड़सवार से बतियाने। थोड़ी देर बाद वह घोड़ा वहीं-का-वहीं। उसका पैर चूने से हटने का नाम न ले रहा था। घोड़ा हारकर थक गया। तब जाकर नालदार को बुलवाया, काट-छांटकर चूना खरोंच-खरोंचकर, घोड़े का सुम छुटाया गया।

इस काम को देखने दादोजी नित्य आते। कभी-कभी उनके साथ घोड़ों को दौड़ाते लोग आते। जीजाऊ साहिबा बड़ी आत्मीयता से काम को, काम करने वालों को देखतीं। साथ में छोटे सरकार भी होते। छोटे सरकार के साथ उनकी छाया को पकड़े राणोजी जरूर ही रहता।

राजे काम देखने खड़े होते। राजा की नजर। बड़ी चौकस। बड़ी जिज्ञासा। सभी ओर घूमती। नजर एक-एक को परखती। राजे पूछते,

"यह क्यों ? यह किसलिये ?" दादोजी छोटी कचहरी में बैठते तो राजे दादोजी से पूछते—

"पन्त चाचा, हम काम देखने जाएं ?"

"जो मर्जी। पर ईंट-पत्थर उठाने खुद मत दौड़ना।" और राजे ठीक वही करते। राजे, छोटे सरकार खुद काम देख रहें हैं, ऐसा देखकर सभी को जोश आता। सभी दौड़-दौड़कर काम करने लगते। बड़ी-बड़ी शिलाएं बातों-बातों में उठा लाते, चढ़ाते ! इधर उनके शरीर से झरने बहने लगते। बाजुओं के लट्टू फूलते, जांघों की मछलियां थिरकती, शरीर की एक-एक नस तन-सी जाती, छाती धौंकने लगती। कारीगर चूने की परत एक-सी करता कि उसपर शिला पड़ी नजर आती। अनायास भीत कुछ ऊपर उठ रही-सी लगती।

कभी-कभी विरली शिला बहुत ही भारी पड़ती। चढ़ती नहीं। बन्धानी उठाते-उठाते हार जाते। उनके मुंह से आवाजें उठतीं।

"होऽ, होऽ, इं·····हूं" उठाओ शाब्बाश, उठाओ, हूं···हूं। और सब बेकार। शिला वहीं-की-वहीं। कौंधती बिजली की तरह राजे वहां पहुंचते, हाथ लगाते। और क्या आश्चर्य ! शिला तर जाती। और ऐसा क्यों न हो ? खुद धनी हाथ लगाने जा पहुंचे। उसे देखते ही सभी मजदूरों के मन प्रसन्न होते। छाती की ताकत विशाल होती। और वह शिला फूल-सी उठती और उचित स्थान पर पहुंच जाती।"

कभी-कभार कोई डोकरा कुछ अचरज का काम कर जाता। राजा का वह छोटा रूप गौरव से कौतुक से उसे निहारता। वह डोकर उस नीकी-नीकी दिठी पर निहाल हो जाता। उससे रहा नहीं जाता, वह भागकर राजा के पास जाता, क्या हो रहा है यह समझने के पहले ही, वह माटी से भरे हाथों से राजा के गाल छूकर चूम लेता। राणोजी फुर्ती से आगे बढ़कर उसे ललकारता कि राजे हँसते, कहते, "छोड़ो राणोजी, छोड़ो। दद्दा ने हमें प्यार किया है। छोड़ो उसे।" राजा का यह वाक्य क्या निकलता, उन लोगों के लिए अमृत का काम कर डालता है। सारे मजदूरों के मन फूल-फूल उठते। सारे-के-सारे उठते, राजा के पाय लागूं कहते। ठाकुर चिल्ला उठते—"अरे—रे, काम यहां है, भई यहां। वहां

नहीं।"

आसपास के गांवों के लोग इस काम को देखते, घंटों खड़े रहते। बड़े ही अचरज से देखते। कौतुक करते। इतना बड़ा काम उस भाग में सालों बाद उठ रहा था। उन्हें ऐसे कामों से वास्ता नहीं पड़ा था। ऐसी भी बात नहीं थी। किले, कोट, गढ़ियों, ईदगाह, दुर्ग, मस्जिदें, ऐसे अनेक काम उन्होंने उठते-बनते देखे थे। अनेक कामों में उनमें से अनेक ने बिगार भी की थी। खून-पसीना एक किया था। पर आज-सा धनी मजदूरों का-सा स्नेह-युक्त व्यवहार-मिलाप अनदेखा था। उन्हें आदत थी। हंटरों की, फटकारों की, गरूर भरी लताड़ों की, लातों की, बेमतलब गालियों की और थी भूखे पेट इस सारे अपमान और दुर्दशा को मूकभाव से हजम करने की। इसलिए यहां का काम उन्हें स्वप्न-सा लगता था। अद्भुत-सा लगता था। बड़ी.बूढ़ी दादियों द्वारा तुलसी के बिरवे के पास बैठकर कही पुरातन कहानियां ही—मानो नया जन्म लेकर उतरी हों, ऐसा अचरज उन्हें लगता।

और उन भावलों की वह भीड़ धीरे-धीरे छोटे राजा के आसपास सिमटती जाती। छोटे-छोटे मुंह उठा-उठाकर उन्हें निहारते। राणोजी और दूसरे सवार उन्हें दूर हटाते-हटाते हार जाते।

राजा किसी छोरे के कंधे पर हाथ रखता। उसका नाम, गांव पूछते तो सारे ही खुश होते। बड़े बूढ़े भी हरख उठते। यह अनुभव उन्हें स्वर्ग-सुख-सा दुर्लभ था।

बड़े परकोटे के भीतर अनेक प्रकार के काम हो रहे थे। खूब लम्बी फैली-फैली जगह थी। वहां एक ओर गौशाला बन रही थी। मुख्य बाड़े में कचहरी बन रही थी। खासों के महल बन रहे थे। कोठियां उठ रहीं थीं। दफ्तर के लिए जगह बन रही थी। औषधिशाला बन रही थी। एक ओर शास्त्रागार बन रहा था। पिछवाड़े में सुन्दर-सा तुलसी का बिरवा गाड़ा जा रहा था। वहीं पास दीवानखास था। इस दीवान की भीतों पर पलस्तर हो रहा था। मजदूर टिपरियों से मसाला आड़े, तिरछे, ऊपर, नीचे जमा रहे थे। बड़ी-बड़ी नांदों में मसाला बन रहा था, बड़े-बड़े खालों में चूना खला जा रहा था। उसमें सीपें पीसी जा रहीं थीं। साथ ही

अबरक, अलसी का तेल भी डाला जा रहा था। मजदूर बड़े-बड़े पत्थरों से बड़े-बड़े खालों में वह मसाला घोट रहे थे।

राजे मित्रों के साथ वहां पहुंचते। रुकते। उन्हें देखते ही मजदूर उठ-उठकर मुजरे करते। और फिर से काम में जुट जाते। राजे मसाले को पीटती किसी मजदूरिनी के पास पहुंचते, कहते—

"टिपरियां हमें दोगी ?"

वह संकोच से कहती— "नहीं जी"

"दे भी दो।"

"नहीं, यह आपका काम नहीं है। आपको जमेगा नहीं।"

छोटे राजे हटकर उसके हाथ से टिपरियां ले ही लेते। और लगते मसाला फटकारने। इतने में जीजाऊ मां साहिबा पीछे आकर खड़ी होतीं। राजा का वह कौतुक भरा काम देखतीं। राजा को कहां खबर ! वे तो अपने काम में मगन। मां साहिबा प्यार से कहतीं—

"काम ठीक हो, राजे, नहीं तो रोजी नहीं मिलेगी।"

राजे हँसते। काम छोड़कर उठते। उत्साह से पूछते, "हमें काम आता है न ?"

"आता क्यों नहीं। मन लगाकर करने पर तो हर काम सरल होता है। चलो, अब बहुत काम हो गया।"

दीवान के किसी दूसरी तरफ चिकनी सफेदी पर चित्रकार तरह-तरह के चित्र बनाते। चित्रों की योजना मां साहिबा की होती। हनुमान का समुद्रलंघन। राम का सेतुबंधन। कपटधन में बैठा क्रुद्ध भीम। उसकी वह भयंकर प्रतीज्ञा। गीता के उपदेश का भव्य, दिव्य दृश्य। ऐसे उदात्त विषयों के चित्र थे। चित्रकार राजस्थानी थे। उनकी गिलहरी के बालों की सुन्दर और बारीक कलमें थीं। गेरू, काजल, मैनशील, सीप का घुटा चूना। ऐसे नाना प्रकार के रंग थे। कुछ चित्र आबाशाई के भी थे। चित्रकारों की कलमों से सारे-के-सारे प्रसंग सजीव होकर उतर रहे थे। चित्रों के सीमा-प्रान्त पर सुन्दर रेखाएं थीं। उन मोटे चौड़े रेखाप्रान्त में भी छोटे-छोटे सुन्दर चित्र थे। सारा-का-सारा दीवानखास, उन चित्रों से भव्य, दिव्य, और उदास-सा प्रतीत हो रहा था।

छोटे राजे वे चित्र देखते तो चकित रह जाते। छोटी-सी हनु पर उंगली रखकर अचरज भरी दृष्टि से वे उन चित्रों को निहारते। जीजाऊ साहिबा से वे रोज ही रामायण-महाभारत के अद्भुत, भव्य, दिव्य, चरित्रों की कहानियां सुनते थे। उन कथाओं के चित्र उनके मन में बनते, कल्पना के अनेक रंग भरते। सोचते, विशाल समुद्र लांघते हनुमत कैसे लगते होंगे। कितने छोटे लगते होंगे। आकाश में उड़ते हुए उनका रूप कैसा आवेश भरा हुआ होगा! एक दो···अनेक चित्र, अनेक रूप। वे ही कल्पनाएं, वे ही मनःकल्पित चित्र आज सजीव रूप में साकार होते देखकर राजा का मन उनमें रम जाता था, समाधि-सी लग जाती थी।

नौ

गणेशजी का दिव्य मंदिर। उसका भव्य गोपुर। उसपर सांय-कालीन चौखड़े की टिपरियों और सुन्दरी के मधुर बोल उठ रहे थे। सारा वातावरण उदात्त और प्रसन्न था।

मां साहिबा और बालराजे शिवाजी मंदिर के गोपुर से निकल रहे थे। उनके पीछे अदब से विनायक भट्ट ठाकर चल रहे थे। मां साहिबा ने पूछा—

"शास्त्रीजी, नदी यहां से पास ही है, नहीं?"

"हां, रानी साहिबा! यहां से दाहिनी ओर, करीब पचास कदम पर टूटे पुराने घाट हैं। संध्या-वंदन के लिए कुछ स्थान···।"

रानी साहिबा नदी की ओर बढ़ जाती है। चल-चलकर कुछ हशम आगे बढ़ चलें। चलते रास्ते में ही एक ओर कुछ गांव वालियां, डोकरियां टोकरियों में मक्की के भुट्टे लिए बैठी बतिया रही थीं। आस थी, कोई भला खरीदार मिले। पास ही कुछ लकड़हारे लकड़ियों के बोझ सामने रख-कर बैठे थे। उन हशमों ने उन्हें इधर-उधरकर भगा दिया। बिचारी वे डोकरियां! उस धकाधकी में उठीं और पास की गली में घुस गयीं। भागती एक औरत की टोकरी से कुछ भुट्टे गिरे। बिचारी झुककर उन्हें

बटोर रही थी कि पूरी टोकरी ही गिरी और उसके भुट्टे चारों ओर बिखर गए।

हशमों के इस ऊधम को मां साहिबा ने देखा तो इशारे से ही उन्हें रोक दिया। आगे बढ़कर उन औरतों को पास बुलाया। वे डर गयीं। कुछ पीछे हटकर छिपीं। कुछ रुआंसी होकर बुदबुदाने लगीं। उनमें से एक महतारी अपने गालों पर थप्पड़ मारकर बोली—

"जले यह पेट! इसीके लिए आना पड़ता है। हम तो कभी भी न आएं। पर करें क्या कां? इस पेट में आग जो पड़ी है। तो कभी-कभार आना ही पड़ता है ये बोझ लेकर।"

मां साहिबा वहीं आकर ठिठकीं। उन्होंने सभी कुछ देख लिया था, सुन लिया था। उन्होंने बड़े ही स्नेह से उन गांव वालियों को पास बुलाया। उनमें से एक-एक पास आती, पाय लागूं कहकर, पैर छू-छूकर एक ओर हटकर खड़ी होती गयीं। मां साहिबा ने उन्हें दिलासा दिया। वे चुप खड़ी थीं।

"शास्त्रीजी! यहां शाक-भाजी बिकने का कोई ठौर-ठिकाना भी है?"

"रानी साहिबा! ठिकाना तो कहीं है नहीं। हाट की पुरानी जगह तो गांव के बीचों-बीच थी। खासों के महल का काम चल पड़ा तो कारीगर जुटे, बस्ती बढ़ी। अब तो दिन ढले—जहां भी जगह मिलती है लोग लकड़ी, भाजी, अनाज बेचने बैठ जाते हैं। अलाव और मशालों में उपलों की लौ के उजाले में इनका कारोबार चलता है।"

"यहीं यदि अच्छा ठिकाना बना दिया जाए तो!"

"बहुत ही खूब। इससे बढ़कर क्या सुख होगा मां साहिबा?"

मजदूरनियां, गांव वालियां अचरज भरी आंखों से देख रही थीं। सुन रही थीं। मां साहिबा आगे कब बढ़ीं, पता ही नहीं। वे जगीं तो गणेशजी के मंदिर से जय गणराय···और घंटों की आवाज हो रही थी।

भव्य मंदिर का विशाल दालान, बीचोंबीच व्यासपीठ उसके एक ओर खासें बैठे थे। शास्त्रीजी गंभीर स्वर में पुराण की कथा का प्रवचन कर रहे थे···।

कथा महाभारत की थी।

शास्त्रीजी कह रहे थे—पाण्डवों का युद्ध न करने का विचार था, पर दुर्योधन की ओर से सुई की नोक की बातों को सुना तो कुन्ती ने अपने पुत्रों से कहा—

"सूच्यग्रंनैव', कहने वाले दुर्योधन को, ठीक उत्तर दे सको तो मेरा मातृत्व सफल है···"

—कुन्ती के इन वाक्यों को सुनकर जीजाऊ का मुख ललक उठा···

शास्त्रीजी ने अध्याय की पुष्पिका का वाचन किया, सरस्वती की प्रार्थना की, अपराध क्षमापन किया। 'श्री राम, जय राम, जय जय राम' के घोष के साथ, उन्होंने उस दिन की कथा के प्रवचन का समापन किया।

आज की कथा समाप्त हुई। शास्त्रीजी धीरे से उठे, आसन छोड़कर बाहर दालान में चले गए। दासियों ने प्रवेश किया और चिरागों की बत्तियों को ठीक किया।

मां साहिबा ने आराम से बैठते हुए उसांस ली। बोलीं—

"देखा पन्त ! कैसा होता है ? कितने कष्ट ! कितनी यातनाएं भोगीं—पाण्डवों ने ! जन्म से वनवास भोगे। एक, दो, और तीसरा तो तेरह वर्षों का। पर इतने पर भी कुन्ती के मन की आग बुझी नहीं थी। उसने अपने पुत्रों को कहला भेजा—

"लड़कर अपमान का बदला चुका सको तो मेरे पूत हो, अन्यथा मेरा मातृत्व व्यर्थ रहा।

बालराजे तकिये को टिकाकर बैठे थे। सीधे होकर बोले, "बीच में बोल रहा हूं, मां साहेब ! माफ कीजिए, पर मैं समझता हूं—कुन्ती का कहना ठीक ही तो था।"

मां के मन की आग बुझा न सके—"ऐसे अनेक पूतों से क्या ?"

पन्त खुश होकर बोले—

"बहुत खूब, राजे ! बहुत खूब !! कितना ठीक कहा आपने, सुभाषित तो हैं—

'एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपति निर्भयम्।'

मां साहिबा की दृष्टि राजा को एकटक निहार रही थी।

एक कारिन्दा भीतर आया। पन्त ने सतर्कता से पूछा—

"कौन ?"

"हुजूरजी मैं हूं, अन्याजी, आपका बुलावा आया था।"

"रुको जरा," ऐसा कहकर दादोजी पन्त मां साहिबा की ओर देखकर धीमे से बोले—

"दो दिन पूर्व विचार किया था। उन सभी देशमुखों, देशपाण्डों को मुकाम पूना में बुलाने की आज्ञा हो तो···।"

मां साहिबा नन्हेकर की ओर देखकर बोलीं, "बाबूजी का क्या विचार है !"

"हमारा विचार आपसे अलग नहीं है, रानी साहिबा !"

"इस देश की रानी इस देश में आयी है, एक बार सभी को मालूम होना ही चाहिए।"

मां साहिबा क्षणभर विचारों में डूब गयी। धीरे से बोलीं, "यह काम जिसका है वही यदि इसे करले तो आनन्द-ही-आनन्द होता। फिर भी ठीक है। जो भी हो। स्वामी के पुत्र उनके स्थान पर हैं ही, सभी को यथायोग्य निमंत्रण जाने दीजिए।"

दादोजी ने कारिन्दे से कहा—

"मुठा और मुसा की घाटी, गुंजन मावल। कर्थात मावल, आसपास के गांव, खेड़ा, सभी मौजों की फेहरिस्त, कल हाजिर करो। कल ही पत्रों की थैलियां रवाना होनी चाहिएं।"

"जी, ऐसा ही होगा, कहकर और मुजराकर अन्याजी चला गया।"

मां साहिबा ने कहा—

"पन्त, मुकाम पूना में अच्छा-सा मजबूत बाजार बसाया जाए। क्या विचार है आपका ?"

"जो, आज्ञा मां साहिबा !"

"किसी नेक और साववाले महाजन को देख-परखकर, उसपर यह काम सौंप देता हूं।"

वह ही योजनापूर्वक व्यापारियों को बुलाएगा। और बहुत ही जल्दी एक अच्छा-सा बाजार···।

बालराजे एकाएक बोल उठे—

"मां साहिबा ! व्यापारी हमारे शब्दों का विश्वास नहीं करेंगे ?"

गंभीर होकर पन्त ने कहा—

"राजे ! आपका शब्द कौन नहीं मानेगा ? पर आपका शब्द बड़ी अमूल्य चीज है। यदि गगरी से काम हो तो उसके लिए गंगा उतारने की आवश्यकता नहीं होती।

"दूसरी बात यह है कि लोग अपनी जात-बिरादरीवालों का विश्वास अधिक करते हैं। और इससे बाजार अधिक उत्साह से बसेगा। जुन्नर, बीजापुर, बंगलौर के बाजार तो आपने देखे हैं। वहां हीरे, मोती गोभेद, प्रवाल से रत्नों से लेकर मोटे सूत की गुदड़ी तक सभी कुछ मिलता है।

"व्यापारियों को अभय और विश्वास मिलने पर वे सारी चीजें आपके पूना में भी बिकने लगेंगी। राजे ! उद्यमियों के मनों में विश्वास जगना चाहिए कि उनके पीछे राजसत्ता का अभय खड़ा है। यहां हमारे बाल तक को आंच नहीं आनी है। हमारी ओर देखनेवालों की आंखें बाहर निकालने की सामर्थ्य यहां के शासन में है, यह भरोसा जगने दो। फिर बंगलौर और बीजापुर की सल्तनत को गरूर करने की आवश्यकता नहीं। यहां हमारे राज्य में व्यापारी आएंगे, उद्यमी आएंगे, परिश्रमी आएंगे, मजदूर आएंगे, कारखाने वाले आएंगे, सूत आएगा, कपड़ा आएगा···!!!"

मां साहिबा बीच में ही बोलीं—

"पर शिवबा ! यह सब होने पर भी यदि राज्य का नैतिक अधिष्ठान न हो तो क्या करना है। यह सारा राज्य और उसका यह रत्नों का वैभव मुर्दों की झांकी ?···?···"

चकित होकर बालराजा ने मां साहिबा से पूछा, "तब राज्य की पूर्णता किससे होती है, मां साहिबा ?" जीजाऊ मां का मन भर गया, मुख तेज से उजला हो उठा। वे बोलीं—

"मां-बहनों को अभय का, सुरक्षितता का भरोसा मिलना चाहिए कि हम स्वच्छदंता से सावन-भादों में झूला डाल सकती हैं। ऊंची-ऊंची पेंग ले सकती हैं। देवताओं के मेलों में, उत्सवों में, गोल घेरे धरकर नाच सकती हैं, खेल सकती हैं। किलों के भर-भर हँसती हुई बाबड़ी पर आ-जा

सकती हैं। किलोलें भर हँसती-खेलती लौट सकती हैं। बड़े बूढ़े सामने आने पर, लाज-मर्यादा से अवगुण्ठन कर नम्रता से निश्चित चल सकती हैं। निर्भय होकर घूम सकती हैं। किसीकी हिम्मत नहीं कि उनकी ओर टेढ़ी आंख भी उठा सके।

"इसे राज्य की पूर्णता कहते हैं, राजे!"

"परिपूर्ण राज्य उसे कहते हैं—शिववा! जहां तीर्थक्षेत्र श्रद्धालुओं के लिए सदा खुले हों। जहां दास-दासियों को भी उतना ही प्रेम और स्नेह मिलता हो जितना स्वजनों को। जहां दुखी रोगी को भी अभय हो। एक को एक तो दूसरे को कुछ और ही, ऐसा भेदभाव का व्यवहार जहां नाममात्र को भी नहीं होता। जहां जंगल में रहने वाले जंगम और बीहड़ों में रहने वाला बेरड भी यह सोचता हो कि यह राज्य मेरा है, यह राष्ट्र मेरा है। 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ,' यह वैभव सम्पन्न हो। इस कार्य के लिए अपने प्राणों की बाजी भी लगानी पड़े तो अपनी तत्परता है। यह भाव मन में न जगे। और यदि प्रजा यह सोचे---कि जो निजामशाही, जो आदिलशाही है, वही यह भोंसले शाही। आपुमान्त फरक नहीं है, तो···

"तो राजे! हमारा मातृत्व व्यर्थ हो जाएगा। राजे, प्रवाह पतितों का महापुर बहा जा रहा है। उसमें एक यह भी। इससे अधिक क्या?" मां साहिबा का कंठ रुंध गया, आंखें तरल हो गयीं, सुनने वाले मंत्र-मुग्ध थे।

बालराजे का मुख तेज से उजला हुआ था। उनका मन कुछ गुन रहा था। सभी शान्त थे। चिरागदान की बाती तड़-तड़ जल रही थी। किसी-को उस ओर ध्यान देने का साहस नहीं हो रहा था।

आज राजमहल में विशेष चहल-पहल थी। महल के बाहर बड़ा आहाता विशेष रूप से साफ किया गया था। गणेश मंदिर के गोपुर के चौघड़े की सुन्दरी की धुन बज उठी। धीरे-धीरे सांझ उतरने लगी।

राजमहल की ओर लोग आने लगे। कोई घोड़े पर, कोई रथ में, कोई बैलगाड़ी में, कोई पैदल ही। रथ के घोड़े, बैलगाड़ी के बैलों के गलों के घुघरू बजते तो वातावरण में मधुरता भर जाती।

मशालें जल चुकी थीं। उनके झिलझिलाते प्रकाश में पुराने परिचय

उजले हो रहे थे, नवीन हो रहे थे। राम-राम और मुजरों की लेन-देन हो रही थी। गदराई गरदनों पर मजबूत बाजू पड़ते, परिचय हँसता-खेलता उठता। छाती-से-छाती भिड़ती, कन्धों-से-कन्धे भिड़ रहे थे।

कितने ही दिनों बाद, बरसों बाद, इतनी स्वच्छन्दता से मिलना-बोलना हो रहा था। सुख-दुःखों की बातें हो रही थीं। जो मारे गये उनके लिये दिल भर-भर उठता, आंखें भरती, उसांसे निकलतीं, जो पकड़े गये, उनके लिये हृदय के प्राण बोल रहे थे।

इतने में एक हुजरे ने पुकारा किया। धीरे-धीरे सभी लोग अपनी अंगिया, पगड़ियां सम्हालते, ठीक करते भीतर जाने लगे।

यह दीवानखास था। चारों ओर चिरागदान थे। भीतों के पास कुछ-कुछ दूरी पर मशालची खड़े थे। उनके दूसरे हाथ में चमड़े की तेल भरी टोटियों वाली बुधलियां थीं। उनमें से बीच-बीच में वे मशाल पर तेल डाल रहे थे। बीच में ही कोई मशालची बाहर जाता और लड़के से लोहे के चिमटे से मशाल की काजली उतारता था।

दीवान के एक ओर कमानदार दरवाजों की कतार थी। उसपर सुन्दर चिक डाले थे। सारे दीवान में गोल तकिये लगे थे। एक गद्दे पर बाजीराव पासलकर बैठे थे, पास ही चौड़े फल की तलवार थी, उनपर रौबीली चार तारों वाली मजबूत ढाल रखी थी। उनके सामने कान्होजी जेधे बैठे थे। चेहरे पर माटी की चुनटें पड़ी थी। पर माटी कहीं ढीली नहीं पड़ी थी। दोनों ही—धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। बीच में ही गड़गड़ाहट के साथ उनका हँसना दीवान में यहां-वहां तक फैल जाता था।

कान्होजी के पास बापूजी जेधे बैठे थे। पुरानी पीढ़ी की बातों में कभी चिंता, कभी हलकी फुहारें तो कभी हँसी की गड़गड़ाहटें होती, नई पीढ़ी उसमें हँसकर मिल जाती थी।

धीरे-धीरे सारा दीवान लोगों से भर गया। बाहर की स्वच्छन्दता ने भीतर आते ही रौब और अदब ओढ़ लिया था, धीरे-धीरे, मान-सम्मान का, मर्यादा का कायदा शुरू हुआ। लोगों को प्रतीक्षा न करनी पड़ी। कुछ ही देर में दीवान के दाहिनी ओर के दरवाजे से दादोजी पन्त ने दीवान में

प्रवेश किया।

सीधी काठी, ढली आयु, पके बाल, तीखी आंखें, प्रसन्नमुद्रा, बोलते ओंठ, परखती दृष्टि। उनके पीछे राणोजी और दो रिश्तेदारों के साथ बालराजे शिवाजी ने बड़ी ही तत्परता से प्रवेश किया। उनके आते ही सारा दीवान उठकर खड़ा हो गया। सभी के शरीर झुके, हाथ उठे, मुजरों की झड़ी लगी। मुजरों को हँसते मुख से स्वीकार करते हुए बालराजे उनके लिए लगी, गादी पर जाकर खड़े हो गये। दादोजी के आने तक शिवाजी खड़े ही थे। दादोजी गादी के पास पहुंचने पर कौतुक से और आदर से बोले, "आप बैठिये राजे !"

"आपके पहले ?"

"ठीक-ठीक। ठीक भी है। मित्रों सभी बैठिये। बाजी देशमुख बैठिये, बैठिये नाईक जी, बैठिये गुंजनमावलकर। कर्जत मावलकर आप भी बैठिये। भई सभी बैठो।"

"अरे वे कौन खड़े हैं अभी भी ?"

"वे कानन्द घाटी के हैं।"

"बैठे क्यों नहीं जी।"

एक भरे-पूरे मावला ने कहा—

"मालिक बैठे इसलिये नहीं, कि आपने हमारा नाम नहीं पुकारा और बालराजे हमें अभी पहचानते नहीं। तब पुकारे बिना ही हम बैठते तो राजे समझते कि कानन्द घाटी के लोग आए ही नहीं, बड़े खट हैं।"

बालराजे उनके इस भोलेपन पर हँसे।

बोले—"कानन्द घाटी के लोग। बैठिये, तोरणगढ़ के सपूतो बैठो। बैठो मर्दो बैठो, बैठो।"

खुद राजा, ऐसा कह रहा था ? एक अनुभूत आत्मीयता से कानन्द घाटी के लोग खुश हो गए। आनन्द के साथ मुजरे करते हुए वे लोग क्रमशः बैठ गये। बड़े बूढ़े देशमुखों के मन भी बालराजा के इस स्नेहपूर्ण व्यवहार से फूल उठे।

"वाह जी वाह ! धनी हो तो, ऐसा हो। एक ही वाक्य में सभा को जीत लिया।"

अब तक सभी बैठ चुके थे। सभी के मन बालराजा के उस छोटे सलोने रूप को देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे। उसी उत्सुकता में सभी की भरी-भरी गरदनों की ऊंचाईयां बट रही थीं।

कण्ठ में मोती का गजरा। एक-एक मोती छोटे बेर जैसा। पानी चमकता था, छबि दमकती थी। जामुनी रंग की अंगी पर वे मोती विशेष खिल रहे थे। मोतिया रंग की पगड़ी, उसपर जरी का काम, चिरागदानों के प्रकाश में झिलमिल हो रहा था। कमर से सुन्दर सा रेशमी शेला कसा था। उसके झूलते छोर, पैरों में पहने पजामा की चूड़ियों पर खूब फब रहे थे। देश व्यवस्थित था। शरीर में ठीक बैठा था।

उनका रूप भी एकदम चुस्त, सतेज दिख रहा था।

इससे भी अधिक—सुन्दर थी राज मुद्रा।

लगता किसी सलोने स्निग्ध पाषण में से तराशी कोई देवविग्रह (मूर्ति) हो। लावण्य की छाया चारों ओर फैल रही थी। बांकी कमानी-दार भवें, फिर उसके ऊपर विस्तीर्ण फैला ललाट। उसमें से निकलती—सुन्दर नाक। किंचित-सी आगे झुकी, कुछ उभरे, बोलते लाल-लाल होंठ। लगता सारे शरीर में कान हो और उन मधुर होठों से निकलती मधुरिमा को सुनते रहे।

बालराजा ने चारों ओर देखा और वे वीरासन लगाकर बैठ गये। लोंड के पास ही किन्तु कुछ मर्यादा से एक ओर।

राजा होठों पर रेशमी शेले का छोर रखकर धीरे से दादोजी बोले—

"पन्त काका, बाजी जेधे नहीं आए ?"

पन्त कान्होजी की ओर मुड़कर बोले—

"बाजी ?"

कान्होजी ने तत्परता से जवाब दिया।

"आया है जी, वह पीछे कैसे रह सकता है ? उसे चैन कहां ? उसका तन-मन, सदा ही पूना की ओर यहां···"

कहकर कान्होजी ने बाजी को आवाज दी, "बाजी ! बाजी रे ! बाजीराव जी !"

यह कहते हुए उस वृद्ध ने पासलकरजी की ओर देखकर कहा।

"अजी, बाजी, कहना ठीक नहीं। बाजीराव, अपमान होता है। बाजीराव साहेब कहना पड़ता है।" इतने में भीड़ को चीरता हुआ तगड़ा, युवक मावला बाजी, आगे बढ़ आया। कमर में बंधी तलवार को एक हाथ से साधकर मुजरा किया। उतनी ही तत्परता से बालराजा ने उसके हाथों को थामकर, उसे अपने पास बिठा लिया।

बाजी राजा की गद्दी के पास बड़ी ही अदब से बैठा था। दोनों ही में अदब से बातें चल रही थीं।

क्षण भर, चुप और शान्त बैठी सभा, अब बातों में रम गयी। कहीं हाथों पर हाथ पड़ते, बड़े बूढ़ों के स्वर चढ़ते-उतरते। छोटों के स्वर में मन्दता थी। दादोजी के कान चिक की ओर लगे थे। उस ओर कंकण बाजते ही, वे उठकर खड़े हो गए। उन्हें देखते ही सारी सभा ने खड़ी ताजीभ न दी। बालराजे ने भी। सभी ने चिक की ओर मुड़कर, झुककर मुजरे किए। राजे गद्दी पर वीरासन लगाकर बैठे तो सारी सभा भी वीरासन लगाकर बैठ गयी। सारी सभा अब शान्त थी। चिरागदान और मशालों की तड़-तड़ ही सुनाई दे रही थी। चिक जरासी हिली। दादोजी अदब से उठकर, चिक के पास जाकर खड़े हो गए। उस ओर की बातें सुनकर, सिर हिलाकर वे मुड़े, और बिछे रूजामे की ओर खड़े होकर, गम्भीर स्वर में बोले—

"चौंसठों गांवों के देशमुखो, देशपाण्डो, पटेलो गांवों के मजदूरो! परगना पूना और सूबा वाराभावल के खानखानी जागीरदारो! महाराज शहाजी, राजे भोंसले, सरकार की ओर से, सकल सौभाग्य मण्डित, वज्र-चूड़े-मण्डित, जीजाऊं मां साहिबा के निमंत्रण को मानकर, आज आप सभी दीवान के हुजूर में आए हैं। मैं रानी साहिबा की खुशी आप तक पहुंचाने की इजाजत चाहता हूं।

"प्रायः सभी जानते हैं कि चार-आठ माह से महारानी साहिबा, जागीर के गांव में आकर रही हैं। इमारतें बन रही हैं। काम चल रहे हैं। साथ में छोटे राजे शिवाजी भी हैं।

"इसका अर्थ इतना ही है कि दौलत के स्वामी, आज यहां हाजिर हैं। उन्हें अर्जानी मोकासा हुआ है।"

आनन्द से सभी चिल्ला उठे। अपनी आवाज जरा चढ़ाकर दादोजी बोले—

"और अब से आगे, यहीं रहने वाले हैं।"

एक बार फिर से, आनन्द की लहर यहां से वहां तक फैल गयी।

"तुम चौसठों गांवों के मावलों में···

तुम्हीं में से एक बनकर।"

सभी के तन-मन, रोमांचित हो उठे।

दादोजी का यह वाक्य सुनकर सारे की मावले आनन्द से, उत्साह से गरज उठे।

'हर हर महादेव', 'अम्बा बाई की उदो उदो' राजा की मुख-मुद्रा भी आनन्द से दमक उठी। वे जरा आराम से बैठ गये। दादोजी खंकारकर बोले—"रानी साहिबा को यह मालूम है कि इन चौसठों गांवों की, मावलों की बहुत दुर्दशा हुई है। इस ओर किसीने देखा तक नहीं। सौतेली मां-सा व्यवहार इसके साथ हुआ है। सेनाएं आईं, धूल उठी और हल्ले में गांव-के-गांव और खेड़े डूब गए। कितने ही गांवों में दिये नहीं रहे। कितने ही गांवों के तट टूट गए। मन्दिरों के शिखर ढह गए। घर, कुनबे उठ गए। रैयत इधर-उधर, फूटकर बिखर गई, बिगर गई। कारीगर, मजदूर निराश्रित हो गए। भरे बाजार जले हैं। बड़ी-बड़ी हवेलियां खोद-खोदकर लूट ली गयीं। उनकी माटी, माटी कर दी गयी, बिखरा दी गयी।

" हृदय में जो चुभा है, जो रक्त बहा है, वह वैसे ही बहकर निकल जाएगा। यह सम्भव नहीं है, किन्तु जो कुछ हुआ है, उसीको विचारते रहने से, बोलते रहने का कोई अर्थ नहीं है। ये सब भावनाएं हैं, विचार हैं, विकार हैं। इसको छोड़कर यदि हम हिम्मत बांधकर खड़े हों तो ठीक हो जायेगा।

" रानी साहिबा को मालूम है कि बीते कितने ही दिनों से सारा मावल का मण्डल गैरों के लश्कर के दबाव में दबा रहा है।"

एक बूढ़ा बोला, "पन्त ! आदिलशाही के लश्कर से कहो। इधर-उधर क्यों बोल रहे हो?" अपना संतुलन बरकरार रखते हुए पन्त बोले—"हमारे शब्दों का अर्थ सभी समझ रहे हैं। उसका और तर्जुमा करने की अभी और

आवश्यकता नहीं है देशमुख ?

" इस दवाब के कारण सारा मावल मण्डल बुरी तरह उजड़ा है। धनी के हाथ उधर अनेक राजनीति की गांठों की उलझनों में बंधे हुए थे। उनको सुलझाने में अटके थे। इस सुलतानी बेबसी को आप सभी जानते हैं। इसीकारण इतने दिनों तक आपकी ओर ध्यान देना उनके लिए सम्भव नहीं हो सका। दौलत का यह खून-खराबा देखकर, धनी ने तय किया और स्वयं महारानी और छोटे राजे शिवाजी को इधर भेज दिया है।

" आज आप सारे ही देशमुख, देशपाण्डे, वतनदार दौलत में हाजिर हैं। यह देखकर रानी साहिबा को परम संतोष हुआ है। इसलिए अब आप सभी को देशमुख, पटेलों, देशपाण्ड़ों, वतनदारों, सिपाहियों और सारे ही खलक की रैयत को, खुद रानी साहिबा, आज अभय दे रहीं है।

" छोटे राजे खुद दौलत में घूमेंगे, आपकी खबर लेंगे। गुण्डों, लुटेरों का अब भय खाने की आवश्यकता नहीं। उजड़े गांवों को बसाओ, टूटे परकोटों को, तटों को बनाओ, देवालयों की मरम्मत करो, उनमें देवों की प्रतिष्ठा करो।

" बाजारों को बसाओ, रास्ते टूटे हैं, उन्हें बनाओ, नदियों के पुल टूटे हैं, उन्हें बनाओ, नदी तट की नावों को ठीक करो, उनका रावता बैठाओ। पानी के स्थान, जगह बनाओ, बढ़ाओ।

" रानी साहिबा को यह भी मालूम है कि बेबंद मुल्क को चोरों और डकैतों का भय है। इसकी चिन्ता मत करो। स्थान-स्थान पर चौकियां-पहरेदार रहेंगे। वहां के घुड़सवार, चारों ओर घूम-घूमकर खबरदारी रखेंगे। इतना बंदोबस्त होने पर भी कहीं किसी पर अन्याय हुआ तो इस दौलत के धनी का सदर का दरवाजा सभी के लिए खुला है। प्रत्यक्ष जगदम्बा मां न्याय करने के लिए हाजिर हैं। यह सब मानकर खबरदारी के साथ रहना है। इससे अधिक और आपको कहने के लिए कुछ नहीं है।"

दादोजी की बातें रुकीं। वे अदब से एक बार खंकारकर अपनी गद्दी की ओर बढ़े। उनके इशारे पर, अत्तरपान के थाल छोटे राजे के पास आये। राजा ने उन्हें स्पर्श किया और सभी को अत्तरपान दिया गया।

यह एक नवीन अनुभव था। अपनत्व का, सम्मान का, इसी को गांठ में बांधकर सभी ही सदर से उठे।

दस

उस दिन की बैठक क्या हुई, उन वीर मावलों में नवीन प्राण भर गये। सारा आसमन्त जी उठा। बच्चों के खेलों में भी मिट्टी के बैल घोड़े चारों दिशाओं में भागने-दौड़ने लगे। जंगलों-बीहड़ों में आड़ बनाकर छप्पर डालकर, डरी-डरी सी आंखों से जैसे-तैसे दिन बिताने वाले, प्राण मुट्ठी में लिए कुनबे-कबीले फिर से अब अपने बाप-दादों की खपरैलों में आकर बसने लगे। एकबार फिर से बहुत दिनों बाद नंग-धंड़ग बच्चे गांव की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में लकड़ी के दण्डों पर सवार हो घुड़दौड़ करने लगे। गुल्ली-डंडे के लिए गांव के चौपाल के अहातों में गुल्लें खोदी जाने लगीं। बच्चे दण्डा ठोक-ठोककर बजाते। गिल्ली ऐसे उड़ती कि वो गई वो गई···।

पानी के ठिकाने पर चूड़ियां खनकने लगीं। किलकारियां उठने लगीं। हँसी की फुस-फुस, बातों की खुसर-फुसर होने लगी। बावड़ी-कुओं पर रहटों की चूं-चूं बोलने लगीं।

बच्चे-बच्चियां ढोरों के साथ जंगल जाने लगे, निर्भय होकर ढोरों को घेरने लगे। सारा उदास, सोया जंगल फिर से जाग उठा। गिलहरियां अचरज से यह सब देख रही थीं। पिछले दोनों पैरों पर बैठकर आगे के हाथों से मुख का कौर खातीं, पूंछ हिलातीं आनन्द से खेलने लगीं।

इतने दिनों तक पड़त पड़ी, झांड़-झंखांड़ों से भरी जमीन पर खेतों में फिर से हल जुतने लगे। एक-बार फिर से पट्टे बैलों की पीठ पर हंटर बजने लगे। हल की रेखा जमीन पर रेखने लगी, उनके साथ बगुले पांत बनाकर कीड़े-मकोड़ों को खाते घूमने लगे। एकबार फिर से खेतों की कुइयों का सौभाग्य जाग उठा। मांग की उनकी छोटी-छोटी नालियों में कल-कल पानी खेलने लगा। छोटे-छोटे खेतों तक वह पानी पहुंचकर पालक, मेथी, मूली के खेतों को हरा और तर करने लगा। चारों ओर

स्वच्छन्द बढ़े ऐन और अंजनी के पेड़ों को किसान छांटने लगे।

पेट के गड्ढे और हड्डियों के ढांचे ढोते हुए घोड़े फिर से चरने लगे। सड़े-गले पत्ते इकट्ठा कर धान के खेतों में पसराये जाने लगे।

ढहीरों, झोपड़ियों, उचटे खपरैलों को ठीक करने के लिए कुम्हारों के घरों से खपंरा, ईंटें, माटी, घरों के आसपास इकट्ठी होने लगी। धीरे-धीरे गांव के परकोटे, घरों की भीतें और छप्पर ठीक-ठाक होने लगे। चारों ओर से उधड़ा-नंगा गांव, घर की बहू-सा अब कुछ सुघड़ बन गया था। उसका रंग-रूप संवारा गया था। खानदानी आब उस गांव पर दिखने लगी थी।

तख्तों के लिए जंगलों से बड़े-बड़े वृक्षों को काटा जाने लगा। आरे-कसों की खस-खस दिनभर होती रहती थी। पथरोटे पत्थर गढ़ने लगे। उनकी छेनियों से पत्थर सुडौल बनता। गांव के परकोटे के बुरुज बनने लगे। उनके बनने पर काली चिधियों की पुतलियां उन पर टंगने लगीं। गांव के देवताओं की पूजा होने लगी, उनको मुर्गे, बकरों की बलि दी जाने लगी। उनकी प्रसादी बड़ी-बड़ी हांडियों में पकने लगीं। देवताओं की समाधी के आगे पत्तलों पर लोग प्रसाद पाकर घर-घर लौटने लगे।

घोड़ों पर बैठे हथियारबन्द सिपाही लुहारों के घर उतरते और अपनी तलवारों को पवाने डालते।

लुहार एक-एक नग लेता, उस पर तेल की चिन्धी घुमाता। तलवार का फल देखकर खुश होता। किसी बढ़िया फलदार तलवार को देखकर प्यार से उसपर हाथ फेरकर उसके मालिक को कौतुक से देखता। लुहार कभी-कभी उस सिपाही को धोंकनी पर बिठाता। खैर के कोयलों पर तलवार का चौड़ा पत्ता लाल-लाल होता। उसे एक, दो, तीन भरे पूरे ताव देता। आग आग होने पर पानी में डुबोता, चर्र से पानी घोलता, भपकरे से भाप उठती।

पोतदारों की दुकानों में इन सिपाहियों की खूब भीड़ होती। पीपल की लाख कढ़ाहियों में पिघलती, तपती, उबलती। तलवारों के खांचों में वह लाख डाली जाती। फिर बड़े ही करीने से, कुशलता से तलवार उसमें खौंसी जाती। तलवार का सारा नूर इस समय की खबरदारी पर उसका

सारा नोक-झोंक सधा तो तलवार लाख की; नहीं तो कसाई के लोहे और उसमें क्या फरक ?

ठठेरे भालों के फल बनाने लगे। भातों पर उनकी घरवालियां बैठी होतीं। आंचल के नीचे दुधमुंहे का मुंह चुरु-चुरु चलता। मां का भाले पर हाथ उसी लय में चलता। भाले पर से हाथ हटा तो लगी बालों की लीखों को टीपने। ठोस और मोटे दण्डों की कीमत फिर से आने लगी। भालों के लिये, धनु के लिए ऐसे दण्डों को लोग जतन से घर में रखने लगे।

सेठों-ऊधमियों को चिट्ठी लिखी जाने लगी—

"तिमन्ना बल्द ओमन्ना, तुक सेठी, मु० कोठ्ढणपुर की राम राम, आगे लिखी कि पिछले आपाधापी के दिनों में गांव छोड़कर जाना पड़ता था। अब कस्बे पूना में पूना के नामजद सूबेदार दादोजी कोण्डदेव, खबरदारी से यहां सरकार का व्यौहार चला रहे हैं। उन्होंने खबरदारी का दावा किया है। सारा बंदोबस्त किया है। अब पहले जैसी आपाधापी या दंगों का कोई अंदेशा नहीं है। व्यौहार खूब चल उठेगा। आगे विनती कि फेरकी आकर, बसने पर सारा पट्टी का हासिल दो साल तक के लिए मुआफ फर्माया है। साक्ष मां जगदम्बा का दिया है जै गोपाल।"

और इस निमंत्रण के साथ गांव के बाजार फिर से बसने लगे। बनियों की दुकानें खुलने लगीं। उनके गोदामों और दुकानों की रखवाली के लिये पठ्ठे रातों में जागने लगे।

गांव भरने लगे तो गांव की आससे रहने वाले गुनी उद्यमी मजदूर भी गांव में आने लगे। घोड़ों-टट्टुओं की लगामें बनने लगीं। घोड़ों के तोबरे, उनकी जीनें, उनके पट्टे चमारों के घर ठीक होने लगे, नये बनने आने लगे। वे लोग वादे करते। वादे चूकते तो दांत निपोरकर काम करने लगते।

बढ़िया मुलायम, बिना रेशे की बारीक, मजबूत तख्तियां लेकर और बकरे की चमड़ी लेकर घूमते म्यानवाले गांव-गांव घूमने लगे। गांव के बाहर टिकते, तलवारों की नाप लेते, भर-भर तख्तियां नापकर काटते, म्यान बनाते। उसपर बढ़िया कमायी चमड़ी चढ़ाते। म्यान तैयार।

कोई शौकीन उस म्यान पर मखमल चढ़ाता, उस पर जरी का काम करवाता।

कहीं किसी रिश्तेदार के घर, किसी तीर्थक्षेत्र में, दुबके बैठे गांव के पुरोहित-पंडित फिर से अपने-अपने गांव में आकर बसने लगे। किसी सुरक्षित जगह रखे प्रायश्चित्त मयूख, धर्म निर्णयचंद्रिका जैसे ग्रंथ, निकालने लगे। उनके पृष्ठ ठीक-ठाक देखकर खुश होने लगे। फिर से गांव के मंदिरों में अर्चनाएं, कथाएं और हवन होने लगे।

नाई इधर-उधर घूमते। अब वे फिर गांव में आने लगे। अनगिनत औषधियां दवाएं अपनी-अपनी चमड़े की पेटी में सम्हालकर रखने लगे। हड्डी को बिठाने का काम करने वाले गुनी अपने औजार इकट्ठा करने लगे।

गांव के वैद्य फिर से आकर बसने लगे। उनके घर में औषधियों के और काठों के काम चलने लगे। मजदूर दिनभर खलों में दवाएं खलाते, भट्टियों में दवाएं बनने लगीं। रसायन बनने लगे, कल्प, काढ़े, अरिष्ट, अवलेह चमड़े की कुप्पियों में, बुधलों में भर-भरकर रखे जाने लगे।

कुम्हार, मिट्टी रौंधने लगे। उनके चक्के फिर से चलने लगे। उन पर घड़े, सकोरे आकार लेने लगे। गुरव, भगत, भजनी, घर-घर घूमकर लोगों के धर्म-कृत्यों में साथ देने लगे। तबले, मृदंग की कौड़ी बजने लगी। भजनियों के भजनों में मृदंग बजाने वालों की उंगलियों का काम मन में भरने लगा। रात-रात देवालयों में भजनियों, गायकों की संगत होने लगी।

फिर से बारातें सजने लगीं। फिर से ढोलकों पर घर की जनियों के गाने गूंजने लगे।

शगुन देखने वाले बहु-बेटियों के लक्षण देखते। कहते अब से आगे का साल शुभ-ही-शुभ होगा। तेरा घरवाला सरदार बनेगा। एक या दो अनेक आशीष, अनेक आशाएं, अनेक आकांक्षाएं जगाने लगीं।

सारा गांव, सारा प्रदेश जीवन्त हो उठा।

इस जीवन में माया जगी, अपनत्व बढ़ा, अपनों पर, खुद पर, विश्वास बैठा, एक की पीर दूसरे की आंखों में आंसू बरसाने लगी। जन-जन में,

घर-घर में ही नहीं तो पास के गांवों में भी यह सुख-दुःख का लगाव लगा, पनपा।

खैड़े बारी में रांझा गांव के कुछ ऊपर घोड़खेड़ा भोंसलों की जागीर में नहीं था। वह आदिलशाही में था। इधर जरा हटकर रहा खेड़ गांव, भोंसलों की जागीर में था। दोनों के बीच में एक पहाड़ी नाला वहता था। दूरी इतनी थी कि इस घर से आवाज दो तो उधर से आदमी उत्तर देता।

दोनों गांवों में रिश्ते-सम्बंध थे। किसी एक गांव में गमी होती तो दोनों ही गांवों के घर-घर में लोग दुखी होते। किसीके घर खुशी होती, पूत जनमता तो दोनों ही में घर सूतक मानते, खुशी मनाते, ज्योतिषी से नक्षत्र और शगुन पुछवाते। ऐसी दोनों की आत्मीयता कि एक की पीठ पर वार पड़ता तो उसके निशान दूसरे की पीठ पर उतरते।

फरक केवल इतना कि रहाटखेड़ा गांव का महसूल भोंसलों के दीवान में जमा होता था तो घोड़खेड़ा का महसूल देने के लिए उस गांव के पटेल को नीरा नदी का उतार उतरकर सुभान मंगल के किले में आदिलशाही की कचहरी में पहुंचाना पड़ता। इतने पर भी कभी-कभी आदिलशाही झटका उनपर आ ही पड़ता। पर उन सूवेदारों को भोंसलों के रहाटखेड़ा गांव की ओर नजर उठाने की हिम्मत नहीं होती थी। आते-जाते पिंडारियों के धावे घोड़खेड़ा पर पड़ते। पर रहाटखेड़ा की ओर उनकी नजर न उठती।

धीरे-धीरे दूसरे आदिलशाही गांव की जो दुर्गत थी, वही घोखड़ गांव की दुर्गत होने लगी। महसूल पूरा नहीं होता तो दीवान से तगादे आते। आखिर चिढ़कर एक दिन थानेदार ने घोड़वाड़ी गांव के पटेल को पकड़कर लाने के लिये हथियार बंद सवार भेज दिए। उनके साथ अपने साले मुस्तफाखान को भी भेज दिया था। उसने पटेल को हाजिर करने का हुकम ताक पर रखकर अपनी मर्जी से उसे गांव के बाहर इमली के पेड़ पर रस्सी के फंदे पर लटकाया और लगा धमकाने—महसूल रख वरना यह रस्सी ऊपर उठी कि तुम गये। घोड़वाड़ी गांव के लोग घबड़ा उठे। महसूल दें तो कहां से दें। डकैतों से कुछ बचा हो तो दें। इधर रहाटखेड़ा

गांव के लोग आंखों में आंसू लिए यह सब देख रहे थे। हाथ की मुट्ठियां कसने लगीं। दांत-होंठ खाने लगे। पर इधर के पटेल ने चतुराई से काम लिया। उसने जल्दी से कुछ घुड़सवार पूना की ओर भेज दिए और थोड़ी ही देर में पूना की कचहरी में इस वारदात की खबर पहुंच गई।

छोटे राजे धनी शिउवा इस खबर से लाल हो उठे। खुद घोड़ी पर सवार होकर निकलने लगे। पर पन्त ने समझाया, रोका, और बाजी जेधे के साथ दस घुड़सवार देकर उसे उस ओर भेज दिया। पन्त काका ने जेधे को समझाया कि कुछ ज्यादा हाथ न उठाओ, आदिलशाही के आदमियों को रौब देकर डरा धमका दे, बस!

चार घड़ी बीती और जेधे मुस्तफा खां को बांधकर लौटा। जेधे घोड़े से उतरा और मुजराकर बोला, "हुजूर, गुनहगार हाजिर है।" आखिर पन्त को मुस्तफा खां को सुभान मंगल तक खुद जाकर पहुंचाना पड़ा।

पर सुभान मंगल का थानेदार सब कुछ समझ गया।

केवल इतना ही कह सका—

"पन्त, यह वाकिया बहुत बुरा है।"

ग्यारह

छोटे राजा शिऊवा घोड़ी पर सवार थे। आबदार घोड़ी थी। मझोले कद का इकहरा शरीर, चुस्त। बिजली-सी लग रही थी। उसकी शान क्या थी कि देखते ही जानवर आंखों में भर-भर जाता था। पूंछ भरी पूरी, सुमों तक लम्बी, दोनों पुट्ठे भरे हुए। गरदन का अयाल कोमल और इतना कि दोनों ओर उसकी सुन्दर-सी वेणी गूंथी गयी थी। भव्य ललाट, रंग काला, दोनों कान सीधे खड़े। आंखें सजग। दोनों आंखों के बीचों-बीच सुन्दर-सा दूज का चांद। जानवर क्या था, नग था। हजारों में एक। उसकी समझ-

बूझ भी तारीफ के काबिल थी।

यह घोड़ा इस प्रदेश का था भी नहीं। राजे शहाजी भोंसले ने शाही अंदाज एवं रौब के काबिल दो जानवर खरीदे थे। एक गंगा जाति का तगड़ा ऊंचा घोड़ा था और कुमाउत घोड़ी, बंगलौर के बड़े बाजार में ही खरीदी गई थी वह। वहां से पूना आते हुए अनेक चौकियों पर उन दोनों नगों को हथियाने की नियत से अनेक ने उनकी ओर आंखें और हाथ उठाए थे। किन्तु खुद राजे शहाजी का खत देखकर दाढ़ी पर हाथ फेरते, तरसते हुए कहते, "ये, ये बात है ? खुद राजे शहाजी भोंसले के नग हैं तो पहले क्यों नहीं बताया ? खैर ! किसी चीज की जरूरत हो, तकलीफ हो तो हम हाजिर हैं। समझे ?"

उन दोनों में से घोड़ा जीजाऊ मां ने खुद के लिये रख लिया था और घोड़ी छोटे राजा शिऊबा को दी थी। और कहा था—

"शिऊबा ! घोड़ा प्रेम चाहता है। नौकरों के भरोसे घोड़े का नूर नहीं बनता। इसकी सेवा, चाकरी खुद करनी होगी। उसका खरारा दाना मसाला, दवा, दारू, सब खुद देखना है।"

बड़े ही स्नेह से घोड़ी के पुट्ठे पर हाथ फेरते शिऊबा बोले थे—"मां साहिबा ! निश्चित रहिए। नौकरों की क्या जरूरत ! इसकी—सेवा-चाकरी हम खुद करेंगे।"

और छोटे सरकार ने अपनी बात रखी थी। घोड़ी उन्हें बहुत पसन्द थी। सुबह होते ही शिऊबा घोड़ी के पास हाजिर होते। तब तक सईस हाथ में खरारा लिए घोड़ी की मशागत कर रहा होता। घोड़ी दूर से शिऊबा को आता देखती तो खुश हो उठती। पिछले बंधे पैरों को उठा-उठाकर पटकती, खुशी-खुशी पूंछ की चंवरी-सी डोलती, गरदन ऊपर नीचे करती, मुंह से खुशी जाहिर करती थी। शिऊबा बड़े ही स्नेह से उसकी गरदन थपथपाते तो घोड़ी उनकी पीठ पर मुंह लगती मानो कहती कि राजे कितनी देर कर दी !

सईस मोतदात लाख मना करते पर फिर भी छोटे धनी अपनी घोड़ी का खरारा करते। आठ साल का कोमल छोटा-सा वह शरीर, उसके हाथ कितने ? और घोड़ी कितनी ? पर फिर भी कौतुक। छोटे धनी का जहां

तक हाथ पहुंचता, चार हाथ खरारा करते। अपने सामने उसका मसाला तैयार करवाते तब अपने हाथों तोबरा उसके मुंह में देखकर ही वहां से हटते थे। इसप्रकार माया ममता से अपनी-सी बनायी घोड़ी पर छोटे धनी आज सवार थे।

शिऊबा आज कोण्डणपुर की यात्रा पर जा रहे थे। लालमहल में देवी की घर-स्थापना हो जाने पर शिऊबा ने खुद जीजाऊ मां साहिबा से इस यात्रा की मंजूरी खुशी-खुशी ले रखी थी। इधर दादोजी पन्त ने बत्तीसों गांव के पटेलों को खेतों का हिसाब, मालगुजारी का हिसाब और जमीन का बन्दोबस्त विचारने, तय करने के लिए बुलाया था। आज सभी गांव की आसामी एक-एककर आ रहे थे। पन्त काम के फैलावे में बंधे थे। खूब सोचकर आखिर उन्होंने भी शिऊबा को यात्रा पर जाने की अनुमति दे दी। पर बाजी जेधे और राणोजी शैलार दोनों को एक ओर बुलाकर चौकसी की अनगिनत सूचनाएं दी थीं और राजा को सुरक्षित घर तक लाने की जिम्मेदारी उन्हींको सौंपी थी।

निकलते समय दादोजी खुद दरवाजे तक आये और घोड़ी की रेशमी गांठ पकड़कर शिऊबा से बोले—

"छोटे धनी ! बेबसी है कि मैं आपके साथ नहीं जा रहा हूं। पर एक बात का ध्यान रखिए इस बूढ़े शरीर के प्राण आपके साथ जा रहे हैं।"

हँसते हुए छोटे धनी बोले—

"पन्त काका, मैं जानता हूं, और यह भी जानता हूं कि आकाश में उड़ती चीलों के समान आपके इस छोटे से बच्चे पर चौकसी करने की आपकी भरपूर क्षमता और उतनी ही ममता है।"

इस उत्तर पर दादोजी की आंखें भर आयीं बोले, "शिऊबा ! घोड़ी धीरे-धीरे चलाओ, थकाओ नहीं। नदी-नालों को खबरदारी से पार करो। ये दिन घाम के नहीं हैं, फिर भी दोपहरी किसी आम की राई में बिताओ। जरा घाम उतरे तब···।"

"राणो समझे ? तुम्हारी लक्ष्मी साथ है ही।"

"सुना तुमने ? राजाई ?·····"

बच्चों ने घोड़ों को कभी का इशारा कर दिया था। घोड़ों की टप-टप

में दादोजी के शब्द खो गए।

घोड़े आगे न बढ़ते तो दादोजी की सूचनाओं का सिलसिला बढ़ता ही रहता।

अनेक पहाड़ों, ढलानों में से होकर गुजरने वाला वह पुराना रास्ता था। बीते दसियों-बीसियों वर्षों में उस ओर किसीने ध्यान नहीं दिया था। कहीं-कहीं घुटनों गड्ढे हो गए थे तो कहीं-कहीं कमर तक उंचे टीले उठे थे। कभी-कभार कोई बैलगाड़ी उस रास्ते से गुजरती तो एक पहिया आकाश में उठता, दूसरा पाताल में धंसता। राम-राम कर गाड़ी चलती। कभी-कभी किसीकी सेना उस ओर से गुजरती तब जंगल तोड़ने वाले उतने भर के लिये रास्ते पर आड़े-तिरछे आए पेड़ों को छांटते गड्ढे और टीलें कुछ कुछ एक से होते। बड़ी तोपें, गाड़ियां वहां से गुजरतीं। एक बार यह सब हो जाने पर फिर कोई भी सुलतान उस रास्ते की ओर नजर नहीं उठाता। इसी रास्ते में कहीं-कहीं धूल इतनी भर जाती कि घोड़ों के, बैलों के पैर धंस जाते।

जेठ की घाम तपती तब उस धूल में पैर रखना दूभर हो जाता। उस धूल में से होकर कोई आता तो धूल से सनकर भूत-सा बन जाता।

कहीं कोई ऊपर उठा पत्थर पसीजता तो उसपर गाड़ियों के पहियों की नालियां-सी बनतीं। कभी कोई फौलाद-सा इतना निठुर होता कि गाड़ियां, तोपों के गाड एक नहीं हजारों गुजर जाते, पर वह जहां का तहां एक खरौंच तक उस पर नहीं उठती।

रास्ते में बड़े-बड़े नाले पड़ते। वहां रास्ते की दुर्दशा क्या कहें? एक ओर से उतरना, फिर चढ़ना। उतरते और चढ़ते हुए दो-दो, चार-चार पठ्ठों को गाड़ी को सम्हालना पड़ता कि कदम-कदम पर हाथ देना पड़ता था। चढ़ती गाड़ियों के ये हाल होते। लगता कि ऊपर की गाड़ी के बैल नीचे की गाड़ी के बैलों के सिर पर पैर रखे चढ़े जा रहे हैं। गाड़ी का जुआ बोलता तो लगता अब टूटा तब टूटा। बैलों की गरदनों की लाग के फन्दे से बन जाते।

नाले के ऐन बीचों-बीच आने पर जो फजीहत होती वह तो और ही थी। ऊपर से बहकर आए गोल चिकने पत्थर-ही-पत्थर। उनपर उचट-

उचटकर गाड़ी को निकालना पड़ता। हर पग पर गाड़ी चर-चर बोलती, कभी जुआ टूटता कभी आरा। सेना की तोपें यहां इस नाले से होकर गुजरतीं तो एक छोटा-सा युद्ध का-सा दृश्य दिखता। तोपों के पहियों को रस्सियों से बांधकर हौले-हौले उतारते। बीच में ही किसी पत्थर के उचक जाने पर सारी रस्सियां झटके-से टूटतीं और गाड़ी लुढ़कती तो फिर से पानी में आकर रुकती। प्रवाह के पत्थरों में तोपों के फौलादी गोलों की ओर भरती हो जाती।

उस लम्बे रास्ते में कहीं कभी राइयां दिखतीं, हर्र की या बेहेड़ों की, कहीं आम की तो कहीं सागौन की। जो गत रास्तों की वहीं गत इन राइयों की थी। किसीने उन राइयों को स्नेह से देखा नहीं, संवारा नहीं। कहीं-कहीं जंगल की आग से कुछ राइयां झुलस गई थीं। कहीं कुछ राइयों के पेड़ों को पिंडारियों ने काट-काटकर ठूंठकर दिया था। कुछ राइयों में झाड़-झंखाड़ इतने बढ़ गए थे कि वह कांटों से भरा बाड़ा-सा लगता। कोई भीतर घुसने की हिम्मत नहीं करता। ऐसी जगहों में सई-गुहेरों के जंगली नेवलों के अनगिनत बिल होते। जरख और भेड़ियों के रहने के ठिकाने भी होते। वहीं उन जंगली पशुओं द्वारा तोड़े-खाये पशुओं के शरीरों की चिथियां सड़ी-फैली पड़ी होती थीं। उनकी बदबू इतनी होती कि इस ओर बढ़नेवाले का सिर भन्ना-सा जाता था।

यह दुःखद कहानी इसी रास्ते की नहीं थी। उस प्रदेश के सभी रास्तों की यही दुर्दशा थी। यही कहानी थी, यादवों के समय जिन रास्तों ने सोना और चांदी से सजे हाथियों की गरदनों की घंटियों की रुनझुन सुनी थी, उन्हीं रास्तों और मार्गों की आंतड़ियां आज यों इधर-उधर पसरी थीं। सात वाहन काल में ही क्यों उनके भी पहले जिन मार्गों से बौद्ध भिक्षुओं के संघ, संघ-गीत गाते हुए सभी को अमर ज्ञान देते गुजरे थे, उन्हीं रास्तों और मार्गों में आज श्मशान का श्रृंगार हो रहा था। शूर्पारक तथा प्रतिष्ठानक के बंदरगाहों पर उतरा बहुमूल्य सामान हजारों बैलों पर लाद-लादकर व्यापारी जंगल की मधुरिमा से भरी सुगन्ध को लूटते करहाटक और करवीर जैसे समृद्ध नगरों को जाते। उन्हीं मार्गों पर आज भरे दिन में पैर रखने के लिए कोई विरला ही साहस जुटा

पाता। आज इन रास्तों का सुख-सौभाग्य और आनन्द लूट चुका था। आज वहां श्मशान जगाने वालों का पालिकाओं का-सा रौद्र रूप आने-जाने वाले को डरा रहा था।

खुद जीजाउ मां बसने आयीं। उनके लक्ष्मी जैसे पैर इस भूमि की माटी पर उतरे और प्रदेश का सौभाग्य ही लौट आया। पुरानी केंचुली को छोड़कर दमकती बिजली जैसी नागिन के समान सारा प्रदेश चैतन्यमय हो गया था। वे ही सारे मार्ग अब अगंड़ाई लेकर सजग हो उठे। उनके अवगढ़ रूप सवंरे जाने लगे। वर्षाकाल बीता और दादोजी के हुकुम से पथरोंटों, बेलदारों का रावता इन रास्तों पर बढ़ता गया। सुरंग उड़ते, बड़ी-बड़ी शिलाएं टूटतीं। ठूंठ-सी उठी शिलाओं पर खन्तियां तड़ातड़ पड़तीं और वे एकसी बनती अनगढ़ शिलाओं पर बेलदारों की पैनी छेनियां ठन-ठन कर गढ़कर ठिकाने बिठातीं।

जंगलों से जाते रास्तों पर तो टंटों-बखेड़ों का सवाल नहीं था, किन्तु दो पहाड़ियों के बीच की वादियों में से किसी पहाड़ी के ढलान के पास के खेतों के पास से गुजरे रास्तों के काम के समय कहीं-कहीं छोटे से झगड़े हो जाते थे।

ऐसे ही एक दिन, सूरज ने ऊपर उठकर आखें खोलीं, और बेलदारों ने अपना काम शुरू किया, उनकी गौं-गे करती, बोलियों में गाली-गलौच चलती, मजाक होता छोटा ठेकेदार चिल्ला उठता—

"तेरी मां का—स्सालों, मूं चला रहे हो तब से। जरा काम पर हाथ चलाओगे तो क्या पहाड़ टूट पड़ेगा तुम पर।"

सभी मजदूर कह कहाकर हँस पड़े। होठों को दबाकर तम्बाकू की पीक थूककर कुछ बुदबुदाते जल्दी-जल्दी हाथ चलाने लगे। बेलदारनियां गधों पर मिट्टी लाद-लादकर रास्ते पर डाल रही थीं।

तभी दूर घुड़सवारों की टोली आती दिखी। हवलदार ने आंखों पर आड़ा हाथ पसारकर देखा। कुछ पहचान मिली तो झटपट हाथ "झाड़कर चिल्ला उटा—ठीक-ठीक काम करो, खुद छोटे-छोटे सरकार आ रहे हैं।"

इस एक आवाज से मजदूरों की कल-कल एकदम शांत हो गयी।

काम की गति बढ़ चली। बेलदारों की छेनियां ठन-ठन पत्थरों को तोड़ने लगी। बेलदारों का एक बनेल झुंड उठा और कटाई से साफ किए धान के खेत में उतरकर, वहीं की मिट्टी खोदने लगा। खेत का मालिक खेत की मेंड़ पर बैठा यह सब देख रहा था। वह दौड़ा-दौड़ा आया और लगा चिल्लाने, डांटनें। पर उन बेलदारों ने उसकी एक नहीं सुनी और देखते-देखते उन्होंने उसके सोने जैसे खेत में घुटनों गहरा गड्ढा खोदकर वहां से मिट्टी निकालना शुरू कर दी, इधर वह किसान अपना सिर पीटने लगा, उस गड्ढे में कूदने लगा। तब एक तगड़ा बेलदार उठा और उसने उसे छोटी गठड़ी जैसे उठाया, और पास के ही पानी के बांध पर खड़े बमूर के पेड़ के खोखले ढोली में बिठा दिया। बिचारा किसान डरकर वहां बैठा था। मजदूरनियां उसकी बेबसी पर दांत निकाल रही थीं।

शिव्वा राजे, चौकसी से जंगल को देखते, काम को देखते, मित्रों से बातें करते, इसी ओर आ रहे थे। घोड़ी ठैके की चाल चल रही थी। राजा के एक और जेधे और दूसरी ओर राणोजी चल रहे थे। धनी को देखकर मजदूरनियों ने हाथ-हाथ भर घूंघट निकाल लिया और पंजों से उसे फैलाकर राजा के उस सलोने जप को देखने लगीं। छोटे ठेकेदार ने आगे बढ़कर झुककर मुजरा किया। राजा ने घोड़ी को झट रोका। गौर से देखा और पूछा, "क्यों जी, तुम प्रीताजी ही हो ना? तुम पूना के गणेश जी के मंदिर पर काम पर थे?"

छोटे धनी को स्मरण रखने की तथा स्नेह से पूछताछ करने के खानदानी अदब से वह छोटा मजदूर उन पर निहाल हो गया। बड़े ही आदर से झुककर उसने कहा—

"जी महाराज, मैं वही प्रीताजी हूं।"

तभी बमूर की ढोली में बिठाया बिचारा किसान वहीं से कूद पड़ा और मुंह में मिट्टी भरता, रोता, चिल्लाता, राजा की ओर भागा। बेलदारों ने उसे रोका। राजा की नजर उसपर गयी। घुटने के नीचे हाथ-पैर झाड़ता वह जवान कह रहा था—

"साल्लो, तुमने मेरी जमीन का सत्यानाश कर दिया, अब मुझे ही उस में गाड़ दो और ऊपर से मुट्ठी-मुठ्ठी भर मिट्टी डाल दो। तब

जाकर तुम्हारी छाती ठंडी होगी।"

रुआंसा-सा वह राजा की घोड़ी के पास आकर बोला—

"अरे, छोटे राजा किसी बड़े खानदान का दिख रहा है। पर यह सब तुम्हारी खानदानी शान के मुताबिक ही हुआ है क्या?"

प्रीताजी उसे एक ओर करते हुए बोला—

"अरे गधे, खुद छोटे सरकार हैं। इस मावल का राजा! "हो कोई भी। राजा हो या रंक। कोई मेरे खेत तो नही सुधारेगा।"

छोटे सरकार की नजर कठोर हो गयी। उन्होंने घोड़ी खेत की ओर मोड़ दी। राणोजी को कहा—"आदमी दुखी है। पहले इसकी बात मालूम करो।"

राणोजी घोड़े से उतरा, बेलदारों से बातें की। रास्ते पर फैलाने के लिए उसके खेत में गड्डा खोदकर मिट्टी निकाल ली गयी, यह राजा ने सुना। तब उनकी आंखें लाल हो उठीं, बोले—

"प्रीताजी बहुत खूब! काम यदि ऐसे ही करने हैं तो तुम्हारी क्या जरूरत। वह तो कोई भी कर लेगा। बिचारे ने जान लगाकर खेत तैयार किया होगा। वह तुम लोगों ने सब खराब कर दिया। क्या यह सब जरूरी था? जंगल में कहीं मिट्टी रही ही नहीं? वह क्या सोचेगा? इससे तो आदिलशाही ठीक थी। काम इसी वक्त बन्द हो। उसके खेत की मिट्टी वहीं डालो। उसका खेत ठीक करो। रास्ते के लिए मिट्टी पहाड़ों से निकालो। आधे पहर में उसका खेत ठीक होना चाहिये।

नीचे गर्दन किए बेलदार रास्ते पर फैली खेत की मिट्टी को चुपचाप उठाने लगे। उसके खेत का गड्ढा भरने लगे। राजा ने एकबार उस ओर नजर डाली और उसी तेजी से घोड़ी को आगे बढ़ाया। बिचारा किसान कुछ समझे कि राजा आगे बढ़ गया था। वह पीछे भागता, चिल्लाता गया।—"क्षण भर रुको मेरे छोटे सरकार! मैंने तुझे पहचाना ही नहीं। मैं क्या बक गया।"

ये घुड़सवार बढ़ चले। एक स्थान पर चारों तरफ खूब फैला वट-वृक्ष था। वहीं ये लोग रुके। छोटे सरकार और उनके दोस्त नानाजी, नारो, देशपाण्डे, चिमणं जी, ठवाजी जेधे सूर्याजी काकड़े, अंबक सोमदेव डबीर।

कोई मुकाम पूना का था, कोई मुसा घाटी का था तो कोई बहाड़ का एक-एक चुनिंदा नग था। नजर जीजाऊ की थी। दादोजी पारखी थे। मालिक छोटे सरकार। एक-एक प्यादा मजबूत था। राजा से आयु में बड़ा, पर राजा पर जी-जान से कुर्बान।

पत्थर, झाड़-झंखाड़ साफ कर एक जगह गांसिया बिछाया गया था। उस पर छोटे सरकार बैठे थे। घोड़े, बड़ की लटकती जटाओं से बांध दिए थे। बड़ की आड़ में जीन के नीचे की गूदड़ी बिछाकर उसपर राजाई, राणोजी की घरवाली बैठी थी, राणोजी ने उसे धीरे से कहा, "राजाई जरा आराम भी कर लो।'

वह बुदबुदाई, "मैं ठीक ही बैठी हूं। आप जरा छोटे सरकार की ओर ध्यान देना ?"

इतने में बाजी जेधे बोले, "क्यों रे देशपाण्डे, कुछ रोटी-टुकड़ा होगा क्या ?" चिमणाजी ने कहा, "क्यों नहीं, क्यों नहीं। यदि हमारे छोटे सरकार की भी थाली तैयार हो तो हम भी तैयार हैं।"

छोटे सरकार बोले, "हां जी, होने भी दो पर घबराओ नहीं, अभी फिर से आगे बढ़ना है। तीसरा पहर होते-होते कोण्ढणपुर पहुंचना है।"

घोड़ों की पीठ पर बंधी झोली में से रोटियों की छोटी-छोटी गठरियां निकलने लगीं। राजाई ने केले के पत्ते पर छोटे सरकार के लिए मोटी ज्वारी की रोटी पर थोड़ा घी और चटनी परस दी और राणोजी के हाथ में दी। राणोजी शिऊबा के पास आया और उनके आगे गशिए पर रख एक ओर हो गया। राजा ने देखा तो बोले, "भाई राणोजी, हम अकेले को घी परोसा है। सभी को मिलना चाहिए।"

रोटी का टुकड़ा और लाल मिरची की चटनी का बड़ा-सा कौर मुंह में ठूंसता हुआ बाजी बोला, "हमें परोसने के बजाय, इन बामनों को परोसें। हमारी मिरची की चटनी का मजा इनके इस घी-गुड़ में कहां ? क्यों देशपाण्डे ठीक है ना ?"

चिमणा जी देशपाण्डे बोला, "हम एक वक्त एक काम करते हैं। भोजन कर रहे हैं। तब बोलना बन्द।"

इस पर बाजी बोला, "बिलकुल ठीक। हांडी भर भात खाकर एक

श्लोक गाया कि इनका पेट फिर से खाली। खाया-पिया एकदम भस्म। छोटे सरकार! इन ब्राह्मणों के पास यह एक जबरी विद्या है।"

शिऊबा चिमणाजी की ओर देखकर बोले, "सच चिमणाजी! तो फिर हो जाने दो एक श्लोक।" बाजी जेधे मुंह का कौर जैसे-तैसे निगल कर बोला।

"राजे, हरगिज नहीं। राजे हमारी विनती है कि इसे श्लोक कहने को मत कहो।"

"क्यों भाई?"

"यह इसलिए कि अभी जितना खाया है वह सब भस्म हो जाएगा और कुछ खाने को है नहीं। रास्ते भर यह मेरा सर खाता रहेगा।"

सारे ही ठहाकों के साथ हँसने लगे। राजा ने फिर से आग्रह किया। चिमणाजी ने श्लोक कहा—

अगस्तयं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम्।
आहार प्रति-पाकार्थं स्मरामि च वृकोदरम्॥
आतापी भक्षितौ येन बातापीच महाबलः।
अगस्तस्य प्रसादेन भोजनं मम जीर्यताम्॥

अगस्ति कुम्भकर्ण, शनि और वडवानल को।
खायो अन्न पचावै को स्मरूं मैं वल्कोदर को॥
आतापी खायो जिसने और पचायौ वातापी को।
उस अगस्त्य की कृपा सो मेरो खायो अन्न पच जायौ॥

चिमणाजी ने अर्थ बताया तो बाजी बोला, "यह और भी अच्छा हुआ सरकार कि भोजन हो जाने पर यह श्लोक कहा गया।"

सूर्याजी बोले, "इसमें क्या?"

"भई, जरा सोचो तो भोजन के पहले यह अगस्ती, यह कुम्भकरन शनी महाराज और कौन-कौन थे! वे जब ये सारे थाली पर आ खड़े होते तो तुमको कौर भी बचता!"

राजा शिऊबा इस पर हँस कर बोले—
"वाह भई बाजी! तुम तो खूब बोलते हो।"

बारह

तीसरा पहर उतरते-उतरते ये सारे घुड़सवार कोण्ढणपुर की सीमा में घुसे। रास्ते पर इक्का-दुक्का चलता हुआ यात्री घोड़ों को देखकर, रास्ता छोड़कर एक ओर हटकर चलता।

गांव पास आया तो राजा ने घोड़ी को धीमा कर दिया। तभी सभी घुड़सवारों ने अपने-अपने घोड़ों की लगाम खींच ली। इन घोड़ों के पीछे ही जरा हटकर राणोजी की घरवाली राजाई का घोड़ा चल रहा था। उसने भी अपनी चाल में ढिलाई कर दी।

उस गांव के अधिकांश लोगों ने शिवाऊ को सुना भर था, देखने वाले तो कुछ ही थे। यात्रा में आए थे उनकी भी यही स्थिति भी। इसी कारण घुड़सवारों को देखते ही प्रायः सभी समझे कि सुभान मंगल के सूबेदार की ओर से दीवान घुड़सवार आए हैं, अब क्या यात्रा! सभी दीवानी घुड़-सवारों को जानते थे। सूबेदार का हाथ भी पहचानते थे। अब क्या होता है, इसी डर से सभी की छाती में धक्-धक् होने लगी। और देखते-देखते माता के देवालय के सामने की भीड़ फट गई, सारा अहाता खाली हो गया। जिसे जहां आसरा मिला, जा खड़ा हुआ। हरएक छाती पर हाथ धरे देख रहा था कि अब क्या होता है?

छोटे सरकार शिऊबा माता के मंदिर के सामने आए।

छोटे राजा शिऊबा ने यह सब देखा। आंखों में अचरज था। उन्होंने अपने साथियों की ओर देखा। सभी यह समझ गए थे कि क्या हुआ? झट से राणोजी आगे बढ़ा, बाजी और चिमणाजी साथ हो लिए, माता के मंदिर के पास पहुंचकर उन्होंने भरे-पूरे स्वर में माता की 'जय-जय' की।

बोले, "माता भवानी की जै हो, जै, जै, जै, जै, जै।" सभी सवारों ने साथ दिया। अब यात्रियों में भी जोश भर आया। सभी ने माता का जय-जयकार किया।

तभी गांव के देशमुख, जिन्होंने पूना में राजा को देखा था, दौड़े-दौड़े आए। मुजरे हुए। सभी के मुख पर आनन्द वह उठा। छुपे लोग अब कुछ उसांस भरकर अपनी-अपनी जगहों से हिले और आपस में बोलने लगे—"रे भई, यह है कौन ?"

तभी कोई बोला, "अरे मर्दो, पूना के जागीरदार, भोंसला, उनका पूत, छोटे सरकार कहते हैं इन्हें। मर्दो, आगे बढ़ो, मुजरा करो।"

यह आवाज क्या उठी, जादू-सा हो गया।

घर-घर में दादियां, चाचियां, नानियां बोलीं, "सुना था, भोंसली जीजाऊ पूना में आयी है। उसका पूत है ये ?" वह सुन्दर रूप निहारने घर-घर में से मां-बहनें, बहू-बेटियां बाहर आयीं। क्षण भर का सन्नाटा, अब विश्वास और आनन्द में जाने कहां छिप गया था। घर-घर में से लाल पगड़ियां बाहर आयीं। दादियां खड़े-खड़े उस सलोने रूप की ओर हाथ उठाकर कपोलों पर उंगलियां मोड़ रही थीं। कितनी ही पूतों वालियां उसके रूप को देखकर उसांस रही थीं। माता के मंदिर के पास पहुंचते ही शिऊबा घोड़ी से कूदकर उतरे। दूसरे सवार ने घोड़ी को पकड़ लिया। गांव की बड़ी आसामियां आगे बढ़ीं और उन्होंने राजा को अदब के साथ कहा, "इधर, इस ओर से आइए।"

गुरुव आगे बढ़ा। भगत ने मशाल के उजाले में राजा को देवी के गर्भ-गृह का रास्ता दिखाया। राजा देवी की मूर्ति के पास पहुंचे, राजाई ने शोला से ढका थाल आगे बढ़ाया, शिऊबा ने हाथ लगाया और गुरुव के पास भेज दिया। गुरुव ने शोला उठाया, थाल में जरी का महावस्त्र था, नारियल था। उसने राजा की शाखा का उच्चारण किया, बोला, "मां ! भवानी ! सुना तुमने ? राजे शहाजी का पूत, शिऊबा, तुम्हारे द्वार पर दर्शन करने आया है। इस पर कृपा करो, इसका भण्डार भरपूर हो, द्वार पर हाथी डोले, आंगन में तुलसी का बिरवा सजे, इसके घर के महाद्वार पर आम्र-पल्लव का तोरण शोभा दे, महक में दिया जलता रहे। घर में लक्ष्मी बिराजे, पूत खेलें।

"मां, भवानी, तू सुन रही है ! ये सब तेरा जैकारा कर रहे हैं, जरा सावधान होकर इन्हें सुन। इन पर कृपा कर मां ! मां !! मां भवानी की

जै, जै, जै।"

गुरुव मूर्ति के सामने खड़ा होकर, मां को हाथ जोड़कर खड़ा था। विनती कर रहा था। उधर शिऊबा हाथ जोड़े खड़े थे। आंखें मुंदी थीं, ध्यान मां में लीन था, मन अभी-अभी की घटना को गुन रहा था—

"ये बारहो मावल, आदिलशाही के अत्याचार में पड़े हैं। कितना आतंक! आज खुद देखा। केवल चार घुड़सवारों को देखकर लोगों का इतना बड़ा मेला, एकदम फट गया, उड़ गया। इतनी बड़े शान इतमाम रखने वाले मूठ-मूठ भर की मूंछों वाले बड़ी-बड़ी पगड़ी वाले। पर किसी में साहस नहीं? क्या है, क्या नहीं है, यह देखने-परखने तक के लिए छाती मजबूत नहीं? ये लोग कर भी क्या रहे हैं—मां भवानी का उत्सव। उसमें भी इतनी लाचारी! इतना भय!!"

इतने में गुरुव ने राजा के मस्तिष्क पर अंगारा टिकाया। राजा का मन स्थिर हुआ, आंखें खुलीं, एक बार फिर से मां भवानी के चरण स्पर्श कर राजा लौटे। साथ ही उनके पीछे गांव के मुखिया, देशमुख, पटेल भी चल रहे थे। राजा को देखने मंदिर के द्वार पर—भीड़ खड़ी थी, इतने में गांव का देशमुख बोला, "आज के दिन राजा का डेरा यहीं होगा?"

राजा का उदास मन अभी सम्भला नहीं था, उत्तर राणोजी ने दिया। बोला, "अभी कुछ तय नहीं हुआ है।"

"रात को मां भवानी की झांकी निकलती है, बड़ा उत्सव होता है, देखने लायक होता है सब।"

राजा शिऊबा, अब कुछ सम्भल गए थे। पूछा, "झांकी निकलती हैं?"

"जी, खूब उत्सव होता है, भजनी, भगती, कथावाचक सभी आते हैं। आगे-पीछे छबीना होता है।"

राजा ने जेधे से पूछा, "रहें क्या?"

"जैसी आपकी इच्छा।"

राजा के डेरे की व्यवस्था किसी पुरानी हवेली में की गई थी। सौ, दो सौ साल पुरानी किसी देशमुख की वह हवेली थी बड़ी। चार-चार चौक थे। भीतर बढ़िया खम्भे, आंगन बहुत ही बढ़िया था। किसी टंटे-बखेड़े में देशमुख का सारा कबीला कतल कर दिया गया था। तब से वह घर

निपूता, उदास था। हवेली भी कहीं-कहीं बैठ रही थी। कुछ ही दिन हुए उसी देशमुख के घर का कोई रिश्तेदार उस हवेली में आ बसा था। अब उसमें दिया जलने लगा था।

हवेली के बड़े आंगन में घोड़े बंधे थे। उनके पैरों की टप्-टप् बीच-बीच में सुनाई दे रही थी। घुड़सवार उनकी मशागत कर रहे थे।

चौड़े ओसारे में बिछायत बिछी थी, तकिया लगा था, कोने में कड़वे तेल से भरी दो समइयां जल रही थीं, दीवार से टिककर एक मशालची भी खड़ा था। राजे तकिये से टिककर बैठे थे। कुछ दूरी पर बाजी, चिमणाजी, नारोजी, सूर्याजी अदब से पैरों को ढांपकर बैठे थे। गांव वाले आते, मुजरे करते, वहीं दूर उकड़ू बैठते। कोई बड़ी आसामी होती तो बिछायत पर आगे बढ़कर बैठता। चर्चा चल रही थी। इधर राजाई और राणोजी राजा की थाली की व्यवस्था में लगे थे। राणोजी बिचारा, घर-भीतर, घर-बाहर कर रहा था। कान उसके चर्चा में, हाथ और मन खिंचता राज्य के काम में। गांव के बड़े बूढ़े कह रहे थे—

"राजे, मां का यह स्थान बहुत पुराना है। उधर दूर एक तुलजापुर में मां जगदम्बा का, दूसरा कोल्हापुर की मां भवानी का और यह तीसरा कोण्ढणपुर का। खूब दूर-दूर से लोग मनौती पूरी करने आते हैं, कोई दण्डौत डालते हुए, कोई छुआरे लुटाते हुए।"

राजा ने पूछा, "यह मंदिर बहुत पुराना है?"

"और क्या? एक बार निजामशाही और आदिलशाही की फौजों का इस कोण्डाना किले पर से बखेड़ा हुआ था। दोनों ओर के कई लोग काम आए थे। सारा जंगल मुर्दों से भर गया था।"

राजा ने चकित होकर पूछा, "फिर भी इस मंदिर को धक्का नहीं लगा?"

"राजे, भीड़ इधर भी बढ़ आयी थी।"

"तब?"

"भगत बहुत चतुर था। उसने गर्भगृह से मूर्ति उठाई और घर के बोखारों में छुपा दी और ऊपर से करब ढांप दी।"

राजे उदास हो उठे। गांव का बूढ़ा अपनी ही मस्ती में कहे जा रहा

था, "भीड़ ने देखा कि भीतर मूरत नहीं है, तब इधर-उधर मंदिर को ढहा दिया और आगे बढ़ गई। सभी लोगों के जाने पर, कुछ उसांस मिलने पर फिर से मूरत की प्रतिष्ठा की गई।"

इतने में एक ऊंचा, चौड़ा, भरी-उभरी माटी का जवान अपने छोटे भाई के साथ वहां हाजिर हुआ। उसने राजा को मुजरा किया। राजे अपने ही विचारों में उदासी में खोए थे। लोगों ने उसे कहा, "आओ जी बैठो, किस गांव के?" जवान वैसे ही खड़ा-का-खड़ा बोला।

"हमारा मुजरा राजा ने लिया नहीं, यों ही बैठ जाएं?" सुनते ही बाजी ने राजा को जरा सा छूकर कहा, "राजे, मुजरा लीजिए।"

राजे झट से सम्भले। मुजरा स्वीकार कर उस जवान की ओर एक-टक देख रहे थे। नजर एक हो रही थी। क्षण, दो क्षण। मावला नजर संकोच से नीचे झुकाते हुए बोला, "सुना कि छोटे सरकार खुद मां भवानी के दर्शन के लिए आए हैं, तब खुद ही देखने चला आया।"

बाजी उसके उस ठेठ साफ व्यवहार पर मुग्ध था। बोला, "जनाब का कौन-सा गांव?"

"उमरठा, नीचे कोंकन में है। यात्रा के लिए आया था।"

"अरे! यह बाजू पर जखम कैसे?"

"कहां? यह! घाट चढ़ते हुए रीछनी टूट पड़ी।"

"अरेऽरे तो गिराई या नहीं।"

"रीछनी को? हां, हां बाघ होता तो उसे छोड़ने की सोचता।"

इस विनोद पर वह खुद ही जोर से हँस पड़ा। राजा ने कुतूहल से पूछा, "उस रीछनी का क्या हुआ?" "क्या करता? एक-दो बार उसे कहा—मैं कुछ और आदमी हूं, जरा हट जा, जरा परे हो ले, बच जा, छोड़ दे। पर नहीं मानी। लगी घिघियाने। तब चारों पैर पकड़े, उठाया और पहाड़ी की टूटी कगार से नीचे जंगल में फेंक दिया।" राजे, चकित होकर देखने लगे। क्षण भर बाद बोले, "देखें, जखम तुम्हारे।"

बाजू को ढकते हुए जवान बोला, "कहां का जखम! यों ही थोड़ी-सी खरोंच है, ठीक हो जाएगी। दो-चार रोज में।"

"फिर भी जरा देखें तो!"

सभी जोर देने लगे। बोले, "खुद राजे कह रहे हैं, दिखा भी दो।" अनमने ही वह राजा के पास बैठा। बाजू खोलकर दिखा दी। मजबूत कपड़े की चिंधियों से बाजू की चमड़ी लटक रही थी। राजा की स्नेह भरी उंगलियां उस घाव पर फिर रही थीं। मन भर आता था—शूरों की कमी नहीं, पर आज तक इन्हें जोड़ने वाला नहीं मिला। राजे बार-बार उसकी ओर देखते। जवान नीचे मुख किए बैठा था। बोला, "कहां क्या है?" राजा ने अपनी आवाज जरा साफ कर दी।

"दौलत बंकी!!"

राणो आगे बढ़ा बोला, "जी सरकार!"

"नाई को बुलावा भेजो।"

आदमी गया है, नाई आता ही होगा।

ठोस और भरी-भरी दूसरी बाजू पर हाथ रखकर राजे बोले, "कुछ जोरा और हाथ करते हो क्या?"

"कहां? जरा कुछ दस-बीस जोर हो पाते हैं।" तभी नाई आया। देखते-देखते वह जखम को बांधकर उठ खड़ा हुआ। वह जवान अभी भी यही कहे जा रहा था—"इस सबकी जरूरत नहीं थी। दो-चार दिन में ठीक हो जाता।"

नाई उठा तो राजा ने राणोजी इशारा किया। राणोजी उसे अन्दर लिवा ले गया। उसे एक जून का सूखा सामान बांध दिया। ऊपर से दो सिक्के दिये। नाई मना कर रहा था। राणोजी ने बता दिया—'राजा का हुकुम है।' नाई सामान लेकर उठा। बाहर लोगों में आकर बैठ गया।

राजा ने मावल से कहा, "अभी तक हम आपका नाम पूछ ही नहीं पाए।"

"मुझे 'तानाजी मालसुरे' कहते हैं। वह जो वहां बैठा है, मुझसे छोटा है। उसे 'सूर्याजी' कहते हैं।"

"काम धन्धा?"

"धन्धा! कहां का धन्धा और उद्योग? घर की खेती है, मन में खूब आता है।"

"क्या-क्या आता है?"

"लगता है तलवार चलाएं, हाथ का पानी दिखाएं। शरीर उन्हीं नगों से भरे, फूले, उभरे।"

राजे खुश हो उठे। उसकी पीठ थपथपाकर बोले, "हमारी मां जीजाऊ का दर्शन करने चलोगे ? तुम्हें मिलकर बहुत खुशी होगी।"

तानाजी खुश और चकित होकर बोला, "पूना में ?"

"जी !"

"चलो, क्या हुआ !"

"पर आपके घर की खेती ?"

"हां, वह तो सूर्याजी सब देख लेगा। राजे ! शेर है वह शेर। एक अकेला दस के बराबर है।"

सूर्याजी वहीं खड़ा, राजा को मुजरा कर रहा था।

कर्यात मावल में खुद राजे आए हैं, यह खबर बातों-बातों में पूरी कर्यात-घाटी में फैल गयी। और राजा को देखने के कौतुक से वहां पूरे मावल की भीड़ इकट्ठा होने लगी। रात-रात तक मशालें ले-लेकर लोग कोण्ढणपुर की ओर आ रहे थे। कोण्ढणपुर गांव का रूप बदल गया। सारी भीड़ एक नवीन चेतना से भर गयी।

पहर बीते रात में मां भवानी का छबीना निकला। पालकी में माता का सुन्दर मुखौटा था, उसके दोनों ओर सुन्दर तकिये थे। आगे-आगे दो भालदार चोबदार चल रहे थे। भगत था, गुरुव था। धूपदानी में धूप जल रही थी। उसका सुगन्धित धुआं सारी भीड़ को अपने में लपेटे जा रहा था। इस सारी झांकी के आगे अखाड़े चल रहे थे। अखाड़ों के पहले लेझीम वाले झूम रहे थे। मां की जै, जै, जै, के साथ लेझीम ऊपर उठाकर जवान खेलता तो उसके साथ, अनेक लड़के हाथ की लेझीम झनझनाते झूमते। उनके पैरों की धम्-धम्, लेझीम की और नगाड़ों की लय के साथ बढ़ती। लगता धरती कांप-सी रही है। उस लय में नाचने वाले भगत ऐसे नाच रहे थे कि उनकी लंगोटिया खुलतीं तो उन्हें उनको खोंसने तक फुरसत नहीं। नगाड़े की, ढोल की लय क्या उनके लिए तब तक रुकती ? तो वे क्यों रुकें ? सूखे मेवे की, छुआरों की वर्षा हो रही थी। पर भीड़ में किसीको उस मेवे को उठाकर मुंह में डालने की फुरसत नहीं थी।

यह सारा उत्साह आगे बढ़ रहा था। राजा शिऊबा उसी हवेली के दर्शनी चबूतरे पर खड़े-खड़े उस आनन्द को देख रहे थे, विभोर होकर। हवेली के मालिक ने एकाधिक बार धीरे से राजा से कहा, "राजे ! आप बैठिये।" राजा ने हाथ से ही मना कर दिया। मां का उत्सव उसकी झांकी सामने हो, और उसका सपूत उसका दर्शन मसनद पर बैठकर देखे !

राजा सहेतुक हँसकर, उन्हीं जयकारों में तन-मन से खो गए। मां की पालकी मंद गति से आगे बढ़ रही थी। साथ के लोग राजा की ओर देखते। कोई मुजरा करता, राजा अदब से स्वीकार करते तो उस युवक की छाती और फैल जाती।

पालकी और आगे बढ़ी। एक अखाड़ा राजा के सामने आया। आगे ताशे तड़-तड़-तड़, तड़ाक् कर रहे थे। मशालों के उजाले में, जवान कमर को दुपट्टे से कसकर, खड़ग के पट्टे के हाथ घुमा रहे थे। लठैत लाठियों के हाथ दिखा रहे थे। ब्रिनेटी वाले—ब्रिनेटी ऐसे घुमाते थे कि देखने वाले दांतों तले उंगली दबाते थे। अचरज से देख रहे थे।

उन जवानों के मन में चीतों की चपलता और सियारों-सी चतुरता थी। उनके हाथ बिजली की-सी फुर्ती से काम रहे थे। हाथ चलता तो वह कब उठा, कब बैठा, कब उसने आवर्तन लिया, उसका उड्डीन कैसे उड़ा, स्थलांतर कब किया, यह ही देखते बनता। आंखें ठहर नहीं पातीं। खुद राजा देख रहा है, इस एक अनोखी भावना से हर युवक का काम खुद-ब-खुद साकार हो रहा था।

तानाजी मालसुरे राजा के पास खड़ा यह सब देख रहा था। उसके मुख पर अजीब आनन्द बह रहा था। किसी छोटे का काम पसंद आता तो वह वहीं से चिल्लाता—"वाह रे शेर ! बहुत खूब।"

राजे, तानाजी की इस समाधि को, उस उत्साह को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। हीरा पारखी की आंखों में जम रहा था। आखीर में केवल लंगोटी पहने दो लड़के लख-लख चमकती खड़ग हाथ में लिए आगे आए। राजा को सामने झुककर नमन किया। पैंतरे लेकर उनका खेल शुरू हुआ। खड़ग की केवल चमकती धाराएं प्रकाश में चमक रही थीं। एक-एक खिलाड़ी सफाई से वार निकालता कि लगता दूसरा अब गया, तब गया।

पर दूसरा खिलाड़ी मानो हवा का बना था। उस पर उन वारों का असर ही नहीं। लगता केवल हवा फट रही है। बाईं कनपटी, दाईं कनपटी, दाईं जनेऊ का, बाईं जांघ का। यह सफेदार गरदन का। हर वार सफाई का होता। उतनी ही सफाई से दूसरा उन वारों को खड़ग पर झेलकर, जवाब में वार करता। सारा खेल अद्भुत, अनोखा हो रहा था। और एकाएक दोनों ने राजा के सामने क्षण भर में खड़े होकर नमन किया।

आनन्द से राजे भर-भर गए। उसी उत्साह में उन्होंने दो अंगूठियां निकालकर उन दोनों नौजवानों को पहनाईं। तानाजी का आनन्द तो मानो तन-मन में समा नहीं रहा था। क्या दे! क्षण-भर में उसने एक के सिर पर अपनी पगड़ी बांध दी, दूसरे को अंगी उतारकर पहना दी। अब तानाजी वीर प्रतिमा-सा दिगम्बर खड़ा था, उसके शरीर पर एक था वीरोचित घाव और कमर में लपेटी गूदड़ी।

पालकी घूमकर देवालय में आयी। गांव के बड़े बूढ़े लोग राजा के पास आए। कहा, "राजे! मां के दर्शन को चलिए।"

राजा को देखने आई भीड़ पर अब नियंत्रण अपने आप हो रहा था। राजा की चुस्ती, उनकी नजर और उनके साथियों के कायदे के व्यवहार से सारी भीड़ अनायास ही नियंत्रित होती गई।

राजा के आगे बढ़ते ही भीड़ में राजा के लिए रास्ता अपने आप बन गया। अपने सारे-के-सारे ही रिश्तेदारों को लेकर राजा शिऊबा मां का दर्शन करने आगे बढ़े जा रहे थे। राजे मां के गर्भगृह में पहुंचे।

सामने मां का विग्रह, उस पर जरी का महावस्त्र शोभा दे रहा था। दोनों ओर तेल के नन्दादीप जल रहे थे। राजा मां के रूप को निहार रहे थे। वहीं पालकी में मां का मुखौटा रखा था। राजा का मस्तक झुका। दोनों हाथ पीठ पर पहुंचकर बंध गए। घुटने जमीन पर टिके थे। राजा दर्शन की समाधि में मग्न थे। सभी रिश्तेदारों ने मां का दर्शन किया। राजे दर्शनकर, वैसे ही दो कदम पीछे हटकर खड़े थे। गर्भगृह से बाहर आते उन्हें कुछ गड़बड़ सुनाई दी।

एक पुरुष भीड़ को चीरता हुआ कंधे पर नंगी तलवार धरे, निर्द्वन्द्व चला आ रहा था। उघाड़ा, काला मानो काले पाषाण की दीवार चली

आ रही हो। पैरों की पिंडलियों में फंसी तुमान थी। उस पर काली गूदड़ी कसकर बंधी थी। दूसरी कम्बली जनेउ-सी कन्धे पर से निकाल एक ओर कमर पर बंधी थी। बाईं कमर पर दसकी दशाएं झालर-सी लटक रही थीं। दाएं बाजू में एक बड़ा-सा तावीज टंगा था। भरी-भरी-सी गरदन में एक काला मोटा गंडा बंधा था।

वह सत्या बेरड था। आंखों के डोरे उभरे और लाली से लाल थे। मुख पर सभी के लिए तुच्छता। सत्या मंदिर के महाद्वार में से होकर सीधे गर्भगृह की ओर बढ़ा।

किसी समझदार ने उसे टोका और कहा, "सुनो, भीतर राजे हैं?"

उसी ओर बढ़ते हुए उसने कहा—

"हों, हों, कोई भी हो। बादशाह भी हो तो क्या!" उसकी आवाज क्या थी, दो शिलाएं टकराई थीं।

रोकने वाले ने अजीजी से कहा, "नहीं सत्या जी, पर राजे खुद शहाजी राजे के पूत हैं।"

"खूब देखे हैं रे ऐसे राजे! यह सत्या बेरड खुद इस पूरी मावल पट्टी का राजा है। वह और किसीको जानता नहीं।"

"फिर भी, जरा रुकते तो···।"

सत्या चिल्ला उठा—"चुप! सिर उतरवाने की इतनी जल्दी?"

रोकने वाले को एक ही हाथ से दूर हटाकर सत्या गर्भगृह के छोटे सभा-मण्डप की ओर बढ़ते हुए बोला—"मैं खुद ही देखता हूं कहां का और यह कौन-सा राजा है? कौन है इस सत्या बेरड को रोकने वाला?"

कन्धे पर रखी चौड़े फलवाली दमास्क-सी तलवार हाथ में पेलते हुए वह आगे बढ़ा। गर्भगृह की ओर उसके पैर मजबूती से बढ़ रहे थे।

राजा शिऊबा, यह सब नाटक स्थिर मन से और स्थिर दृष्टि से देख रहे थे। उनका एक पैर गर्भगृह की देहली पर था, दूसरा बाहर। दोनों हाथ कमर पर टिके थे, मुट्ठियां कसी थीं। अभी-अभी के सवाल जवाब उन्होंने सुने थे। राजा जैसे थे, उसी स्थिति में वहीं खड़े-के-खड़े रहे। उनकी नजर सत्या को चीर रही थी। भीतर शिलेदारों ने यह कोलाहल सुना तो वे सब राजा के अगल-बगल खड़े हो गए। सभी के हाथ कमर के

खड़ग की मुट्ठी पर कस गए। तानाजी उन सभी को एक हाथ से पीछे सरकाता हुआ राजा के ठीक पीठ पर खड़ा ताव खाते हुए राजा से बोला, "राजे, जरा एक ओर तो ही लीजिए।"

राजा ने एक नजर से पीछे देखा और फिर से स्थिर, गम्भीर-दृष्टि से सत्या को देखने लगे। वह पहाड़-सा, हाथ में खड़ग पेलता आगे बढ़ा चला आ रहा था। दोनों के बीच का अन्तर चार-पांच हाथ रहा, सत्या जरा रुका। वह राजा की उस दृष्टि पर मन में अचरज कर रहा था। नजर से नजर भिड़ गई।

सारी भीड़ सांस साधे चुप-चुप खड़ी थी। अब क्या होता है! किसी के मुंह से शब्द नहीं फूट रहा था, केवल मशालों की तड़-तड़ सुनाई दे रही थी।

सत्या बुदबुदाते हुए बोले—"ऐ, हो जा एक ओर!"

पर राजा जैसे थे वैसे ही खड़े थे—अविचल, निर्भय। उनकी पैनी तीखी दृष्टि सत्या की दृष्टि में घुसी जा रही थी। चार-पांच क्षण बीते। सत्या की नजर नीचे झुकी, उसीके साथ उसकी तेग की नोंक नीचे टिकी, हाथ की मूठ कुछ ढीली हुई।

राजे शिवाजी, आगे बढ़े। आत्मविश्वास के साथ उनके पैर आगे बढ़ रहे थे। सत्या के पास पहुंचकर कुछ हँसकर बोले—"मुझे शिऊबा कहते हैं। राजे शहाजी भोंसले का मैं पूत हूं। नाईक! आपको क्या कहते हैं?"

सत्या को यह एक अनोखा अनुभव था—रौब का, मालिकाने अन्दाज का, खानदानी अदब और उदारता का। सत्या हिल गया, जैसे-तैसे मुंह से दो-चार अक्षर निकले—"मुझे 'सत्या' कहते हैं।"

राजे बोले, "मां भवानी पर आपकी श्रद्धा देखकर हमें बहुत आनन्द हो रहा है, आप दर्शन करेंगे न? चलिए। यह रहीं मां, दर्शन कीजिए।" राजे स्वयं आगे बढ़े और उन्होंने सत्या को मां के गर्भगृह का मार्ग बताया।

सत्या आगे बढ़ा। राजे सत्या को और मां के विग्रह को स्थिर, एकाग्र दृष्टि से देख रहे थे।

तेरह

छोटे सरकार रात के उत्सव का आनन्द लेकर अपने डेरों पर आ पहुंचे। अपने बिस्तर पर आकर टिके तो राणोजी ने उनके हाथ में दूध से भरा सकोरा बढ़ाया बोला— "सरकार ! रात बहुत हो गयी है, आपको नींद आ रही होगी।"

राजा ने कुतूहल से पूछा, "क्यों रे, कुछ काम है ?"

"नहीं, ऐसा तो कोई काम नहीं था। पर···।"

"बोलोगे भी !"

"मेरा तो कुछ काम है नहीं, पर वे कह रही थीं···।"

"वे ? हां, हां। तुम्हारी घरवाली।"

"जी, कह रही थी, कि आपके लिए बैठी हैं।"

"कौन बैठी है, कौन है ? राणोजी ?"

"नाम क्या है, मैं याद नहीं रख सका, पर अवसरी के देशमुख की पत्नी है।"

"फिर भी किसलिए ?"

"क्या जानूं ? पर जरा थोड़ी देर के लिए भीतर···।"

राजा उठे। छोटे दरवाजे से होकर भीतर गए। वहां उनके लिए एक कमरी बिछा दी गई थी। उसी पर वे जाकर बैठ गए।

वहां की सारी-की-सारी स्त्रियां झटपट घूंघट नीचे खींचकर भीतर के मड़ैया में घुस गईं।

राणोजी बोला—"काम जरा जल्दी निपटाओ, राजा आए हैं।"

राजे थोड़ी देर रुके। उस ओर से कोई आवाज नहीं आ रही थी। तब मृदु-मीठे स्वर में बोले, "लाज क्यों ? हम आपके छोटे भाई हैं। संकोच न करो, जो कुछ कहना है कह दीजिए।" राजा का यह कहना था कि भीतर कोई एक स्त्री धड़ाम से गिरी। राणोजी उस ओर बढ़ा, पूछा, "क्या हुआ ?" राजाई ने उत्तर दिया, "स्त्री की सुध जाती रही है।"

राजे उठ खड़े हुए। बोले, "भाभी ! उन्हें सुध आने दो। उन्हें कह दीजिए उनकी फरियाद सुने बिना हम कोण्ढणपुर से नहीं जाएंगे।"

तभी सुध आई जानकी उठ बैठी। जैसे-तैसे मड़ैया से बाहर आयी और रोती हुई बोली—"नहीं रे, मेरे भाई, राजा ! खूब जतन किया फिर भी क्षण भर के लिए मैं सुध खो ही बैठी।"

"मेरे माय-बाप ! तुझे क्या कम काम है ? मैं मुझ अकेली के लिए तुझे कैसे रोकती ?"

राजे क्षण भर रुके और लौटकर उसी कमली पर बैठ गए और बोले, "ठीक है देशमुखी दीदी, हम हाजिर हैं।"

राजा के सामने दीवार की ओर जानकी हाथ पीठ की ओर लेकर टिककर खड़ी थी। राजाई उसे सहारा दे रही थी। अपना आंचल संवार-कर राजाई बोली—

"खुद धनी तुम्हारी फरियाद सुनने को तुम्हें मिला है। अब क्या आगा-पीछा सारा-का-सारा दुखड़ा कह डालो।" मुंह से निकलते हुए रुदन को रोककर चुपके से उसने साड़ी में खोंसा एक कागज राजा के सामने रख दिया। तब तक चिमणाजी देशपाण्डे भीतर आ गया था। राजा ने उस ओर देखा तो उसने कागज उठा लिया और समई के पास झुककर उसके अक्षर लगाने लगा।

राजा ने पूछा—"चिमणाजी क्या है ?"

"फर्मान है राजे ! किला सुभान मंगल के थानेदार की ओर से आया है। अवतारी···।"

"नहीं जी, अवसरी।"

"जी, राजे अवसरी। वहां के बाजी देशमुख के नाम से आया है। इबारत ठीक लग नहीं रही है।"

राजा ने कहा, "जरा यतन करो। ठीक अक्षर लगाकर पढ़ो।"

"सुनिए। यह ताकीद-पत्र है।"

"तुमने साल गुजस्त का महसूल भरा नहीं। इसका क्या मतलब ? इतनी गुस्ताखी करके खुद की हवेली को आग लगाकर गुल हो गए। यह हरामखोरी ? यह गुनाह मुआफ नहीं किया जाएगा। इसीलिए रू-ब रू

हाजिर होकर जो हो उसका जवाब दो। जान छिपाते घूमोगे तो तुम्हारी खैरियत नहीं। जहां भी रहोगे और जो भी तुम्हें आसरा देगा, उसे साफ कर दिया जाएगा। और धरती में गाड़ दिया जाएगा। किले सुभान मंगल की कोठरी में तुम्हें मौत आएगी। समझे ? खत देखते ही हाजिर हो। न होने पर तुम्हारी खैरियत नहीं, इसका यकीन रखो।"

एक उसांस लेकर चिमणाजी रुक गए और कहा, "नीचे थानेदार का सिक्का है। सन् पढ़ा नहीं जा रहा है, पर सुहुर होगा। कोई दो साल का पुराना पत्र है।

रोती जानकी बोली—"राजे ! यह सब झूठ है। रात के अंधेरे जैसा हमने महसूल भर दिया था। सारी देनदारी चुका दी थी। पर हमारे ही घर के दावेदारों ने हवेली को आग लगा दी और दीवानी में जाकर हमारी चुगली की।"

राजे बोले, "ये दावेदार कौन—तुम्हारे ?"

"अजी, हमारे ही पुराने समधी, रिश्तेदार, दुधोंड़ी के काटे देशमुख। दस पीढ़ियों का दावा। एक पीढ़ी भी सुख से नहीं रही। इनकी भी और उनकी भी।"

"बड़ी जू, आप मेरी सुनोगी भी ?"

"जी !"

"हम आपके छोटे भाई जैसे हैं। हमारे सामने कुछ हाथ का रखकर रखने की आवश्यकता नहीं। हमारे सामने बैठो और सारी बातें ठीक-ठीक और साफ-साफ कह डालो। कुछ भी अनकहा न रहे।"

राजाई ने जानकी को सहारा दिया। जानकी राजा के सामने बैठी। एक बार आंखें पोंछ ली, आवाज साफ थी।

राजे बोले, "पहले यह बताओ यहां कैसे आना हुआ। गांव कहां है, कितनी दूर है ?"

"ये परे गुजंन मावल में।" राणोजी ने बताया।

"यह नीचे लगी हुई पहाड़ी के परे कानन्द घाटी में।"

"अच्छा तो उस पहाड़ी पार तुम्हारा गांव है ?"

"जी, और उसके परे मुकम देव की पहाड़ी के परे तलहटी में गुंजवन

नदी है, वहां गुंजन मावल।"

"नाम क्या गांव का ?"

"अवसरी जी !"

"यहां मां के दर्शन के लिए···।"

"हां जी, हां। मैंने सोचा 'कि मां को सारा दुःख सुना दूं। उसीके पैरों में रहूं।' यहां देखा धर्म का बन्धु ही आ गया।

"तो अब बता दो सिलसिले से।"

"मेरा नाम--जानकी।"

"तो जानकी माई !"

"खाली 'जानकी' कहो।"

"नहीं, आप मुझसे बड़ी हैं। जानकी दीदी कहूं ?"

अपने दुःख की सारी-की-सारी कहानी जानकी ने बता दी। वही पीढ़ी-दर-पीढ़ी की दावेदारी, वही पीढ़ियों ने ढाया कहर, शादी-ब्याह पर पड़े छापे। उसी में भेड़िये लुटेरों के धावे, लूट। कोई भी भारी भरकम उठता, चार-छह साथ लेता और रात-बेरात गांव पर डाके पड़ते। इन छापे डालने वालों की फरियाद लेकर देशमुख किले सुभान मंगल गए। और इधर जानकी बाघ से जूझ रही थी। बाघ को मारने सारा गांव जुटा था। उधर दावेदारों ने हवेली को आग से जला दिया। उधर उलटे थानेदार के पास चुगली की। उधर से बाजी को पकड़ने आए। बाजी लौटा तो उसे पकड़-कर सुभान मंगल ले गए। यहां तक सारा कुछ बताकर, जानकर जानकी रोने लगी। आगे बोली, "मैं खुद थाने सुभान मंगल गई थी। छह माह बीत गए।"

राजे चकित होकर बोले—

"खुद ! साथ कौन था ?"

"एक नौकर। पर वहां की दुर्दशा में कह नहीं सकती, कुछ देर जानकी चुप-चुप रही। फिर बोली, "भाई, राजा के सामने क्या लाज !"

"बोलो, बोलो, जानकी दीदी। बोलो, कुछ भी संकोच न करो।"

"पहले मेरी फरियाद कोई सुन ही नहीं रहा था। मैं किले के दरवाजे के पास पड़ी रही। मैंने और मेरे नौकर ने उन भेड़ियों के साथ वह रात

कैसे गुजारी, राजे, क्या कहूं !" कहकर जानकी फूट-फूटकर रोने लगी।

राजा ने उसके दुःख को उसीप्रकार बहने दिया। फिर जरा रुककर बोले—

"मेरी सुनो ! अब कल सुनेंगे ? ठीक है न ?"

झट से उठी जानकी बोली, "नहीं, नहीं। आखिर थानेदार से भेंट हो ही गई। सिपाही, प्यादों के साथ किले के बाहर जा रहा था। मैं उनकी पत्नी हूं, यह सुनकर लाल होकर कहने लगा, "उन्होंने सवाल जवाब किए थे। थानेदार पर हाथ उठाया था। बोला—कुत्तों को खिला दूंगा।"

"मतबल अभी ननावरे देशमुख कैद में हैं, कैद भोग रहे हैं।"

"ईश्वर जाने।"

बड़े ही आदर से राजे बोले, "जानकी दीदी, हिम्मत न हारो। आप शेर से टक्कर ले सकती हैं, खुद उठकर धनी की खोज खबर लेने किले सुभान मंगल तक जा सकती हैं। तब हम भी कहते हैं विश्वास रखो, तुम्हारा धनी तुम्हें मिलेगा। कुछ बहुत बड़ा शब्द हम देते नहीं। आदमी वह जो करे बहुत, बोले कम। अब यहां से आप कहां जाएंगी ? यदि इच्छा हो तो हमारे साथ पूना चलिए। वहां हमारी जीजाऊ मां से मिलिए। वे अपनी छाती से लगा लेंगी। ऐसी आबरू वाली वीर, साहसी बेटियां उन्हें बहुत प्यारी लगती हैं।"

जानकी ने केवल सिर हिला दिया।

यह क्या मना करती ?

दूसरा दिन उत्साह का, आनन्द का अबीर उड़ाता उगा। कोण्ढणपुर में नौजवानों का उनके उत्साह और आनन्द का ज्वार उमड़ रहा था। डुग-डुगी बज रही थी—"आज दिन ढलते ही गांव की चौपाल के बड़े अहाते में खेल होंगे। सामने होंगे जीऽऽ···।"

सांझ उतरी तो चौपाल के बड़े अहाते में जवानों, मर्दों की, तमाशबीनों की भीड़ उमड़ पड़ी। गांववालों ने बीचोंबीच का बड़ा-सा मैदान खाली रख छोड़ा था। कुश्तियों के लिए बड़ा-सा गोल अखाड़ा खोदकर तैयार किया था। भीड़ को शांत और सीमा के बाहर रखते करते गांव-

वालों की नाक में दम हो रहा था।

दोपहरी से ही इस मेले की तैयारी हो रही थी। खन्तियां, फावड़े बोल रहे थे। राजा के बैठने के लिए सुन्दर मंच बनाया गया था। उन पर कमलियां बिछाकर राजा के लिए बढ़िया आसन बनाया था। उसी मंच को लेकर भीड़ ने गोल बनाया था। छोटे-छोटे उनके बीच-बीच में से घुसते थे। कुछ ढीठ छोटे दन-दन पैर पटकते भीड़ में से ठीक गोले की पंक्ति में आकर बैठते। पीछे वाले उन पर बरस पड़ते। हाथ उठाते। तब तक कोई सयाना गांव वाला बाबा, बेटा' कहकर सब को जहां के तहां बिठाता।

इतने में किसी एक ने बड़ी-सी गठरी मंच पर लाकर रख दी। भीड़ में बातचीत चली।

"क्यों रे गोपाल, क्या है उस गठरी में ?"

"पगड़ियां और शेले।"

"अरे, इतने ?"

"तो क्या खुद राजे बांटने वाले हैं ?"

"किसे-किसे ?"

"तुझे। और तुझ जैसा निरा गधा होगा उसे। टकुरे को बांधने के लिए पगड़ी और ओढ़ने के लिए शेला। फिर बारात निकलेगी।"

"किसकी ?"

"तेरी ! साल्ला, चुप ! कितनी बक-बक करता है। देख, उधर राजे आए हैं।"

छोटे सरकार घोड़ी पर उधर आ रहे थे। उनके पीछे शिलेदारों की भीड़ थी। सभी लोग मुड़-मुड़कर उस ओर देख रहे थे। कोई उनकी घोड़ी की तारीफ करता, कोई उसके ऊपर बैठे सलोने सवार की बड़ाई करता, कोई राजा की कमर पर रखे रोबीले हाथ की मुट्ठी पर लट्टू हो रहा था तो कोई चमकती तलवार को एक टक देख रहा था।"

मेले के पास आते ही राजे घोड़ी से फुर्ती से कूदे। सवार उतरते ही घोड़ी जहां की तहां चुप खड़ी थी। चित्ररेखा-सी। पैर, पूंछ, कान, अचल। घोड़ी के गुण देखकर सभी खुश हो उठे। राजा ने घोड़ी की तरफ देखकर

स्मित किया। घोड़ी के पुट्ठे पर थपथपाया और पोतदार के हाथ में लगाम देकर सभीको 'राम राम' कहते हुए राजे मंच की ओर बढ़े।

राजे के मंच पर पहुंचते ही पीछे-पीछे सारे शिलेदार मंच पर जा बैठे, राजा ने गांव के बड़े बूढ़ों को बड़े ही आदर से ऊपर बुलाकर यथा-स्थान बिठाया। तानाजी और बाजी दोनों ही राजा के पीछे बैठे थे। राजा ने दोनों को बुलाकर पास बिठलवाया। गांव के पटेल और पंच अखाड़े के के पास खड़े थे। राजा ने उन्हें इशारा किया और नगाड़े तथा सींग बज उठे।

पंच कुश्तियों के जोड़ बुलाकर कुश्तियां लगाने लगे। लाल माटी के पुतले जैसे पहलवान, लंगोटे पहन-पहनकर अखाड़े में उतरते, बाजू फटकराते, टड्, टड्-सी आवाज आती। कोई जोड़ बेकार समय गंवाता तो भीड़ उन पर बरस पड़ती। फिर जोड़ फुर्ती से खेलता। क्षणभर में कुश्ती खत्म होती। जीतने पर उसके साथी चिल्लाते-नाचते, पगड़ियां, टोपियां आकाश में उड़ाते।

जीतने वाले मंच के पास आते। तानाजी से पगड़ी बंधवाते। भीड़ की तरफ मुंहकर मुजरा करते।

कभी-कभी कोई ऐसा दांव लगाता कि तानाजी हरख उठता। राजे उसकी बेताबी देखकर उसे कहते, "कहो तानाजी, कैसे खेल हो रहे हैं?"

"कुछ मत पूछो, राजे! क्या लगता है बताऊं?"

"कहो भी!"

"लगता है यह पगड़ियों की गठरी फेंक दूं और उतरूं अखाड़े में। दो-चार कुश्तियां खेलूं और आपके हाथ से पगड़ी बंधवा लूं।"

"वाह भई मालुसरे, तुम्हारा उत्साह बांका है।" इतने में अखाड़े में एक जोड़ उतरा था। एक ने कुश्ती मार दी। सभी चिल्ला उठे, "क्या है ऽऽ।"

सारी भीड़ तड़ तड़ ताली पीट रही थी। उस जोड़ का एक पहलवान था तो मामूली, लेकिन उसकी फुर्ती गजब की थी। उसने दूसरे पहलवान के पेट के नीचे घुसकर उसे कब उठाया और कब चित्त किया, पता ही नहीं चला। बिजली था। राजे चकित थे उसकी चपलता पर। तानाजी से

बोले—

"तानाजी उसे यहां लिवा लाओ।"

तानाजी मंच से कूद पड़ा और दौड़ा-दौड़ा गया। उस पहलवान को हाथ में उठा लाया। राजा ने हाथ का सोने का कड़ा उतारकर उसे पहनाया—इस एक ही कृति से सारी भीड़, सारे लोग राजा ने जीत लिए।

सारा समाज आनन्द से, राजा की उदारता से विभोर होकर, पगड़ियां उड़ाने लगा।

चौदह

रात के खेलों के गुनी पहलवान अपने-अपने शस्त्र हाथ में लिए घूम रहे थे, इशारे की बाट जोह रहे थे। इशारे की ढोलकी बजते ही, वे सब घेरे के भीतर उतरे। पहले दिन रात को छबीने के खेलों में उनके लिए जगह कम थी, पर आज जगह काफी थी और पांच-छह हजार की भीड़ उत्साह भर रही थी। खेलने वालों की नस फूल रही थी। क्या दिखाएं और क्या न दिखाएं। उन्हें समझ नहीं आ रहा था।

पट्टे वाले, खड़गवाले, बरछी वाले, सभी अखाड़े में उतरे थे। सभी अपने-अपने शस्त्र चला रहे थे। खड़ग से सप्-सप् आवाज उठ रही थी। पट्टों के पान पट्टेवालों के शरीर के चारों ओर घूम रहे थे। नीबू जमीन पर रखकर एक ही सफाईदार बार से उसे काटते थे। पट्टे की नोक बाएं हाथ में लेकर, उस जरा से गोल में से कूद लगा रहे थे।

वेन्त-चर्म लेकर लोग लड़ने लगे। लड़ने वालों के शरीर पर वेन्त के बार पड़ते तो दांत-होठों को भींचकर लड़ने वाला दूसरे पर कसकर बार चलाता तभी अपने चर्म पर दूसरा उसके बार को रोकता।

इधर यह खेल चल रहा था, तब तक पन्द्रह-बीस केले के खम्भ लाकर रखे गए।

मावलों ने बीचोंबीच गड्ढे खोदकर उन खम्भों को खड़ा कर गाड़

दिया। उनमें से पांच एकसाथ बांधकर गाड़े गए थे। यह सब हो जाने पर पटेल जोर से गरजकर बोले, "सुनो रे मर्दो, अभी तक आपने अपने शस्त्रों के खेल की तैयारी दिखाई, अब परीक्षा होनी है। यहां केले के खम्भे गाड़े हैं। इन्हें खड़ग के एक ही घात में सफाई से काटकर दिखाना है। जिसकी भुजा में ताकत है, हिम्मत है, वह सामने आए।"

इसीबीच कुछ मर्दों ने खड़गों का ढेर-सा मंच के सामने लाकर रख दिया। सभी अचरज से देखने लगे।

उत्साह से एक-एक के हाथ-पर-हाथ देते हुए बोल रहे थे। एक बोला, "भई, अब है मजा।"

दूसरा बोला, "तूने कभी देखा है ऐसा ?"

"नहीं जी।"

तीसरा बोला, "अबे, दस-बीस सालों में ऐसा खेल हुआ ही नहीं तब वह क्या देखेगा !"

"अरे, तेरी उमर कितनी है ?"

"होगी, यही कोई चौदह-पन्द्रह बरस की।"

"तो भई, गोबर गणेश, जो बात दस-बीस साल में हुई नहीं, वह कल का छोरा क्या देखेगा ?"

चार सयाने थे। बोले, "इसकी बात ठीक है जी। सही तो है जो खेल दस-बीस सालों में हुआ ही नहीं, वह यह बित्ते भर का छोरा क्या देखेगा ?"

इतने में बड़े शेर-सी छलांग लगाता एक पहलवान अखाड़े में उतरा। गठा हुआ मजबूत शरीर, गहरी नजर। उसने भीड़ के सामने रखे ढेर में से एक अच्छी सी तलवार उठाई, दो-चार हाथ चलाकर देखी। जचीं नहीं तो दूसरी खींची। पेल कर देखी। जंच गयी तो लगा हाथ चलाने, पैंतरे दिखाने। उसके हाथ देखकर लोग लगे हँसने। भीड़ चिल्ला पड़ी—

"अरे पहलवान! डरा क्यों रहा है ? जो कुछ ताव है उसे उस केले के खम्भे पर दिखा।" अब पहलवान में जरा जोर आया। वह छलांग लगाता हुआ केले के खम्भे के पास पहुंचा। खड़ग जमीन पर रखा। उसे दायां हाथ लगाकर उसकी मिट्टी सिर पर लगाई। दो-चार दण्ड लगाए। बैठकें

निकाली। तभी एक महतारा चिल्लाया—

"यह नाटक क्या दिखा रहा है! जरा सा केले का खूंट क्या काटना है, उसके लिए इतना ऊधम! क्या कोई बड़ी भारी नाल उठा रहा है?"

अब वह पहलवान उठा, छाती तक तलवार उठाई। छाती भरकर ताव से हाथ चलाया। तलवार केले के खूंट में गपकर धंस कर रह गई। वह फिर तलवार खींचनें लगा तो पंच ने उसे आगे बढ़कर रोक लिया।

दूसरा पट्ठा उठा। इकहरा शरीर। वह मंच के पास गया। राजा को मुजरा किया। एक लम्बी और पल्लेदार तलवार चुनकर उठाई। सहज ही पेलता हुआ आगे बढ़ा। चौमुखी मार निकाला और गोल घूमकर वह केले के खूंट के पास पहुंचा और पूरे जोर के साथ जनेऊ का वार निकाला। केले का खूंट सफाई से कट गया। सभी जोग शाबाशी देने लगे। ताली पिटने लगी। मंच के पास जाकर उसने राजा को मुजरा किया। खुश हुए राजा ने उसे अपने पास बुलाया और अपने हाथों से उसे पगड़ी बांधी और पूछा, "भई, गांव कौन-सा तुम्हारा, ?"

"जी, धानज ?"

"नाम ?"

"रंभाजी,"

"शाबाश रंभाजी, तुम्हारी सफाई भी खूब है। खेल खत्म हो जाने पर हमसे मिलोगे ?;"

"जी।"

उसकी यह जुगत देखकर बहुत से जवान उठे। तलवार उठाते, खूंट के पास जाते, घात लगाते। कुछ सफल होते, कुछ फंसते। तानाजी जीतने वालों को पगड़ी बांधता, हारने वालों को हिम्मत देता। बीच के गोल अखाड़े में केले के खूंट के टुकड़ों का ढेर-सा हो गया। तभी चार-छह जवान उठे, उन्होंने वे टुकड़े उठाए और मैदान फिर से साफ किया।

आगे के खेल के लिए भीड़ अकुला रही थी कि पटेल ने अखाड़े में उतरकर, चिल्लाकर कहा—"सुनो भई, सुनो। जो भी मर्द इन एक साथ बंधे पांच केले के खूंटों को एक साथ एक घात में काटेगा उसे छोटे सरकार खुद के हाथ से सोने का कड़ा पहनाएंगे।"

भीड़ यह सुनकर चुप हो गई। जहां एक खूंट को साफ करने में अनेक की फजीहत हुई थी, वहां पांच की कल्पना से ही लोग चुप नहीं होते तो क्या करते ?

पूरी भीड़ में से एक-दो ही जवान अखाड़े में उतरे। पूरी ताकत लगाकर घात लगाई, पर उनका हाथ खूंटों के बीचोंबीच तक भी नहीं पहुंच पाया। वे मुंह लटकाकर वहां से जो भागे तो ठीक अखाड़े के बाहर।

एक को लोगों ने जबरन अखाड़े में धकेला। बोले—"अरे, कुछ तो कर, यों ही भैंसा बना डोलता है। उठा तेग, ले घर की लक्ष्मी का नाम और लगा घात, हूं चल···।"

पर उसने पहलों की फजीहत देखी थी, वैसा ही लौट आया।

कोई भी आगे नहीं आता है, यह देखकर राजा ने तानाजी की ओर देखा। उसने मंच पर रखी खुद ही पल्लेदार तलवार उठाई। मां के मंदिर की ओर मुंह कर नमस्कार किया, उस ओर की अखाड़े की मिट्टी माथे पर लगाई, राजा की ओर मुड़कर मुजरा किया, बुजुर्गों को पायलागूं कहा और झटके से खूंटों के पास जा खड़ा हुआ। हुंकार भरकर खड़ग के पैंतरों के मण्डल लेता आगे बढ़ा और क्षणभर के लिए उसकी तलवार ऊपर चमकी। और नीचे पांचों खूंट एक साथ लुढ़क पड़े।

यह सब पलक झपकते ही हो गया। लोग आनन्द से चिल्ला उठे। उस आनन्द की लहर उतरती है तब तक सांड-जैसी हुंकार भरते हुए सत्या अखाड़े में उतरा। सभी लोग चकराकर उस ओर देखने लगे।

काले-काले पहाड़-सा वह आगे बढ़ रहा था। तेग ऊंची उठाकर गरज रहा था। वह कहां से अखाड़े में उतरा, पता ही नहीं लगा। वह फटी आवाज में बोला—

"धत् तेरी की ! तूने तो सारा पेड़ लुढका दिया। अब देख, इस सत्या की तेग का चमत्कार।"

सत्या गरजता हुआ खूंटों के झुम्मड़ के पास पहुंचा, बिजली-सा उसका जनेऊ का बार उस झुम्मड़ पर पड़ा, और तेग ऊपर हवा में चमक उठी पर पांचों खूंटों का झुम्मड़ वैसा-का-वैसा ? खूंट कटे, यह कोई जान ही नहीं पाया। खूंट खुद भी नहीं समझ पाए थे। हहाकर हँसता सत्या हाथ

उठाकर नाचता हुआ उस खूंटों के झुमम्ड़ के पास पहुंचा और उसमें एक लात दी। सारे कटे खूंटें धड़ाड़कर नीचे गिर पड़े।

यह अनोखा काम देखकर भीड़ चकित हो गई। जब तक अचरज उतरता है, वे उसांस भरते हैं, तब तक दूर से घोड़ों की टप्-टप् गरजती-दौड़ती भीड़ अखाड़े के ठीक पास आकर रुकी। घबराकर भीड़ ने उधर देखा। अब की बार आए सवार वास्तव में दीवान के ही थे। वे आए तो सीधे तेग उठाते, अखाड़े में घुसे चले आए।

तलबखान अचल खड़ी भीड़ को देखकर ही मन में अचरज कर रहा था। आज तक के अनुभव से यहां जरा अलग था। वह भीड़ की ओर देखकर, अपनी दाढ़ी में उंगलियां फेरता, गरज उठा—

"ये सब क्या तमाशा है? अरे, कोई बोलता भी है? ये सब क्या तमाशा खड़ा किया है कमीनो? अनुभव था कि कोई मरी-सी कुतिया भी दीवान की कचहरी से आती तो लोग घबरा उठते, उसकी आव-भगत होती। भले-भले डर जाते। दीवान के अमलदार की ओर नजर उठाने की किसीकी हिम्मत नहीं होती थी।" पर आज सारी भीड़ दीवानी अमलदार की ओर आंखें फाड़कर देख रही थी।

भीड़ की आंखें मंच पर बैठे बड़े बुजुर्गों की ओर थीं। पर वहां भी कोई विशेष हलचल नहीं थी। यह देखकर लंगोटी पहने मावलों में भी जोर आया। जो उठने-भागने की सोच रहे थे, वे भी जमकर पालथी मारकर बैठ गए। फिर भी क्या होता है? यह अधीर मन से देख रहे थे। उत्तर न मिलने पर तलबखान आग बबूला हो उठा। घोड़ा अखाड़े में नचाता हुआ चिल्ला पड़ा—

"अबे, ओ बूढ़े पटेल! कहां है?"

अब बाजी जेधे राजा से कुछ पूछकर मंच से नीचे उतरा। पटेल और देशमुख मन से डरे तो थे, पर छोटे सरकार की मौजूदगी के कारण उनमें भी जरा-जरा हिम्मत जग उठी थी। पर तलबखान की ओर ध्यान न देना भी ठीक नहीं लग रहा था। रोज-रोज तो कोण्ढणपुर रहने वाले नहीं थे। उनके जागीर से लौटने पर रोज का वास्ता इसी तलबखान से था। और उसीकी नजर के नीचे उनके पूतों को रहना था, पुस्त-दर-पुस्त।

पटेल यह सोच ही रहे थे कि बाजी जेधे ने देशमुख और पटेल के पास जाकर कुछ धीरे से कहा और फिर उठकर वे सभी खान साहब के पास जाकर, बंदगी कर बोले—

"खान साहब! आज इधर सवारी—बहुत दिनों बाद आई?"

खान लाल-पीला होकर बोला—

"बंदगी गई भाड़ में। हम पूछते हैं यह गौर बांका क्या है?"

जेधे बोला, "गौर बांका?...?...?"

"अच्छा! अच्छा!! यह खेल। अरे, यह तो हमारी मां का उत्सव है। उसीका यह सब बच्चों का खेल है। चलिए, आप कचहरी चलिए। अरे, येसकर! अरे, कौन है उधर?" एक ओर महार बैठे थे उनमें से एक बोला, "मैं यहां हूं जी!"

"अबे गधे! वहां बैठा क्या कंडे थाप रहा है? इन खान साहब को कचहरी का रास्ता बता, चल उठ! उनके घोड़े के दाना-पानी की व्यवस्था कर। उठ, भाग। तब तक हम यह सब ठीक-ठाक कर आ रहे हैं।"

तलबखान का घोड़ा अपनी ही जगह इधर-उधर कर रहा था। तलबखान ने उसे सम्भालते हुए लगाम का झटका दिया तो वह आगे के पैर उठा कर वहीं-का-वहीं नाचने लगा। नाराजगी से जलता खान बोला—

"कचहरी गई जहन्नुम में। मैं पूछता हूं—बगैर इजाजत, ये तेगें क्यों चल रही हैं? किससे हिम्मत पाकर यह बगावत की जा रही हैं?"

इतने में नारबां देशपाण्डे और चिमणाजी दोनों ही अपनी तलवारों को सम्भालते वहां जा पहुंचे। पटेल घबड़ा गया था। चिमणजी बोला—

"जी कुछ नहीं, हमारी देवी की मूरत के हाथ में तेग है, भाला, तीर-कमान पेशकब्ज ये सब हथियार हैं। आज उसका उर्स है। हमारे धाम में लिखा है कि आज के दिन इन हथियारों से ही मां को अदब बजाई जाए। इसीलिए ये लड़के जरा खेलकूद रहे हैं।"

"फिर भी यह सब किसकी इजाजत से? बगैर इजाजत के ही यह सब! वह भी उस बुतपरस्ती के लिए!" और मंच की ओर हाथ उठाकर बोला—

"और वह कौन बेहया वहां बैठा है हमारे यहां? आने पर भी उठ

खड़ा नहीं होता है। आदाब अर्ज नहीं फरमाता है ?"

अपने स्वर और आवेश को खूब रोककर चिमणाजी बोले—

"जरा अदब से पेश जाओ मियां ! आप राजा साहब शहाजी भोंसला के सपूत हैं।"

खान मन में घबरा गया। पर हार मानना भी तो उसके लिए संभव नहीं था। बोला—

"कोई भी तीसमार खां हो, हमें उससे वास्ता नहीं। यह आदिलशाही मुल्क है। यहां यह गैरबांका हम चलने नहीं देंगे। चलो हटो, तितर-बितर हो जाओ।"

तलबखान पलटकर अपने सवारों को झपटने के लिए कहता, तभी एक गजब हुआ।

मंच के आसपास बैठे खिलाड़ियों को राजा का इशारा मिलते ही वे सब ढेर में से तलवार उठा-उठाकर अखाड़े में पैंतरे खाने लगे। तानाजी एक हाथ में तलवार और एक हाथ में पट्टा चढ़ाए उस ओर लपका। देखते-देखते अखाड़े की भीड़ बढ़ने लगी। खान देखकर अचरज करने लगा—"आज तो ये शंख के कीड़े भी सींग उठा रहे हैं।"

खान के घुड़सवार तो पूरी तरह से घबरा उठे थे। उन्होंने अपनी तेगें नीचे की और घोड़ों को बड़ी मुश्किल से सम्भाल पाए।

तलबखान को यह पराजय सहन नहीं हुई वह गरज उठा, बोला—

"देख क्या रहे हो बदजाती ? चलाओ हाथ। बढ़ो आगे।" यह कहकर वह अखाड़े में खड़े शस्त्रधारी खिलाड़ियों के बीच में घुसने लगा और मंच की ओर बढ़ा ही था कि सत्या वहां दोनों ओर की भीड़ को चीरता-गरजता आ धमका। वह अब हाथ चलाने ही वाला था कि शिऊबा चिल्ला उठे—

"हम मना करते हैं नाईक ! आप तेग चलाओ।" सत्या ने एक बार मंच की ओर देखा और फिर से तलबखान की ओर बढ़कर उसके घोड़े की लगाम को पकड़कर उसके मुंह पर तमाचा दिया। घोड़ा डर गया, कांपने लगा और क्षण भर में जमीन पर गिर पड़ा।

"खान की यह दशा देखकर उसके घुड़सवार भाग खड़े हुए।"

सारी भीड़ आज जोश में थी, आनन्द में थी। आज जो घटित हुआ था वह कुछ और ही था।

पर जो कुछ हुआ उसका धौंसा भी कुछ लोग अनुभव कर रहे थे। जवानों में जोश था, खुशी थी। उन्हें एक नया दृश्य दिखा था, नया मार्ग मिला था।

वस्तुतः उन्होंने क्या विशेष किया ? कुछ भी तो नहीं। केवल एक इशारे पर एक साथ हाथ में शस्त्र लेकर खड़े ही तो हुए थे। तलवारों की केवल पैंतरेबाजी ही तो की थी। वे तलवारें भी क्या थीं ? केवल तमाशा के लिए खेलने के लिए इकट्ठे किए गए पुराने लोहे ही तो थे। केवल एक संघ बनाकर भीत की तरह अडिग खड़े भर रहे। खान की उस गुर्राहट की ओर ध्यान तक नहीं दिया।

इसका परिणाम ? ठीक दीवान की कचहरी से आया अमलदार अपनी ही दाढ़ी के बाल नोंचता भाग गया था। खुद की फजीहत, भागकर वह भी अकेला नहीं, शस्त्रों से लदे दस घुड़सवारों के साथ।

यह सब अजब था। इतना अजब मानो चींटियों ने शेर को बांधा हो। खरगोश के पिल्ले ने भेड़िये को खाया हो।

पर यह सब विचार केवल युवकों के जो वर्षों आदिलशाही को भुगत चुके थे, उनकी छाती डर गई थी, उनकी धड़कने बढ़ गई थीं। सोच रहे थे—'मेले में भीड़ की हिम्मत में और जोश में बहकर तलबखान की फजीहत को देखकर हमने भी दांत दिखाए थे। पर कल सौ-पचास घुड़सवार लेकर किला सुभान मंगल में बैठी सुलतानी इस ओर गाज-सी आ गिरेगी तब ? तब, इन आवारा बच्चों का क्या ? दीवान की ओर से जिनके नाम से ले-लेकर पकड़ने का हुक्म आएगा—वे सब हम ही होंगे—गांव के सयाने बुजुर्ग पंच। हंटरों के फटकारे पड़ेंगे हमारी पीठ पर। घर जलेंगे वे हमारे।'

सुलतानी अत्याचार जो सूने देखे, उनकी केवल याद से ही दिल दहल उठते हैं।

जहां चमड़े के हंटरों की मार से चमड़ी उधेड़ी जाती है, पैरों के तलुओं पर जहां मार पड़ती है, मारने को उन्हें कुछ भी चलता है। लकड़ी की लम्बी खूंटिया, लकड़ी के हथौड़े, बड़ की जटाएं। यह मार भी पीठ पर ही

पड़े, यह भी कोई जरूरी नहीं। जहां भी हाथ पड़ जाए। लातों से, मुक्कों से। किसीकी गठरी बांधने को किसीने मना तो किया नहीं।

पेड़ों से बांधकर पीठ सेंकी जाती। तिपाई पर औंधे मुंह लिटाकर पीटा जाता, तोफों पर लिटाकर पीटा जाता, नाक और कान में चूने का और नमक का पानी डाला जाता, नाक-कान काटे जाते, जीभ काट दी जाती, हाल-बेहाल करने के सभी संभव उपाय वहां किए जाते। उन्हें देख-सुनकर लगता कि यमराज भी शायद यातना देने का यह पाठ नहीं पढ़ा हो।

ये विचार उन बूढ़ों बुजुर्गों को सावधान कर रहे थे। धीरे-धीरे ऐसे लोग भीड़ में से, मंच पर से, चुप-चुप उठने लगे।

कोई पूछ ही लेता--

"क्यों जी, कहां चले ?"

"कुछ नहीं, जरा यहीं तक।"

"भई वाह, इस झगड़े की उलझन को कौन छुटाएगा ?"

"हैं तो सभी।"

"तुम्हारे बगैर क्या होगा, कौन क्या बताएगा ?"

"अरे, पटेल आप भी। अरे ! अरे !! भई वाह ! पटेल तो गए भी !"

"जाने भी दो, जाएंगे उनका क्या भरोसा ?"

"यह सब ठीक, पर आगे क्या ?"

"राजा क्या कहते हैं, यह भी तो देखें।"

"भई, डर तो हमें भी लग रहा है।"

एक उठते हुए बोला—

"मैं नहीं था, तुम्हारे में। न हीं, मैंने तलवार उठाई थी। मैं तो केवल दर्शन के लिए आया था, मैं तो चला।"

"ऐ जी, चल उठ।"

तभी एक चिल्ला उठा—

"ऐ थू तुम्हारी ! तुम अकेले पर ही गाज गिरेगी—क्या ?"

"सुनो रे, सुनो। छोटे सरकार कुछ कह रहे हैं।"

भीड़ में कोई हाथ उठाए—कोई दुपट्टा फटकारे आवाज दे-देकर भीड़

को पकड़कर बिठाता। तीसरा गाली दे-देकर छोटों को दबोचकर बिठा रहा था। बमुश्किला भीड़ बैठी, शांत हो गई।

और छोटे सरकार उठकर खड़े हुए। दोनों हाथ छाती पर बंधे थे। उनका कोमल, पर दृढ़ता का स्वर सुनने को सभी के कान आतुर हो उठे। राजा के भाषण में उठ खड़े होने का संकेत था। साथ में विवेक एवं जागरूकता की ताकीद थी। विचार भी थे, योजना भी थी और था निष्ठा और आवेश का संदेश।

वे बोल रहे थे—

"बारहों मावल के वतनदारो! मित्रो! क्या हुआ, यह हम सभी ने देखा। क्या हुआ? हम सभी की कुल-देवता मां भवानी का उत्सव बंद करने के लिए आए सुल्तानी अमलदार को आज वापस लौटना पड़ा, अपयश लेकर।

"हम सभी ने क्या किया? कुछ भी तो नहीं। एक को भी तो तोड़ा नहीं। केवल एकसंघ होकर, एक निष्ठा, एक निश्चय से केवल सिर उठाकर साहस से खड़े रहे।

"केवल खड़ा रहना, इतना कर सकता है। यह नया अनुभव हुआ। मेरे मित्रो! मन में जो दुःख है, दर्द है, वह बहुत दिनों का है। यह सब हमारा देश है। यह खेती, ये उद्योग सब हमारे हैं। हमारी ये गौएं, चमरी, ये महतारी हमारी बहनें हैं। हमारे ये देवालय, हमारे ये मठ, सभी कुछ तो हैं। जो हमारा है वहां गैर को हाथ बढ़ाने का क्या कारण?

"पर बीते कई बरसों से हम सभी यह अन्याय-अत्याचार सहन करते चले आ रहे हैं। आज लगा कि वह सारी रात बीत गई और नया दिन उग रहा है। हम सब समझ रहे हैं कि अपने धर्म, अपने कर्त्तव्यों को निष्ठा से निबाहते कोई भी रोकने का साहस कर पाता नहीं। आया भी तो उसे फजहीत लेकर ऐसे ही वापिस जाना पड़ता है। केवल एकसंघ बनकर, एकजुट होकर, अपनी आबरू, अपनी इज्जत का रक्षण करने, साहस से सामना करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए।

"बरसों तक हम आपस में लड़ते-झगड़ते रहे, एक-दूसरे की गरदनें काटते रहे। पर आज यह समझ आई है कि कुशलक्षेम, एक-दूसरे से शत्रुता

करने में नहीं है। अन्याय के विरोध में एकजुट होकर, एकसंघ बनकर उठ खड़े होने में है।

" मैं एक बालक ठहरा। समझदारी कुछ विशेष है, ऐसा भी नहीं। पर इतना विश्वास दिलाना अपना फर्ज समझता हूं कि इसी प्रकार एकजुट होकर, कभी कुछ उठा रखने का मौका आया, जरूरत पड़ी और आपने किसी छोटे से बच्चे को भी भेजा तो हमारी ताकत आपके पीछे खड़ी रहेगी।

" ये पहाड़ियां, ये दरिया, ये घाटियां, यह हमारा वतन है। यहां के देवालय, मठ, हमें प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं और उनकी उतने ही जतन से रक्षा करनी है। इस धरती में हम उगाएंगे। हमारा, हम ही खाएंगे, भोगेंगे। इस धरती से ईमान रखेंगे। जीवन जीना है तो बस इस मां के लिए यदि मरना है तो इस धरती के कारण, इस मां के लिए।

" इससे बढ़कर और क्या कहूं मैं ? आप सभी समझदार है, विचारवन्त हैं।"

बुजुर्गों की आंखों में आंसू आ अटके। जवान चकित होकर सुन रहे थे, होनहार के धनी मन में कुछ गुन रहे थे।

राजा की बातें रुकीं तो सभी के मुख से अनायास ही गर्जना गरज उठी—

"उदय हो मां ! उदय हो ! तेरा उदय हो !"

पन्द्रह

दिन अस्ताचल की ओर उतरने लगा। राजा की घोड़ी कोंडाना किला पीछे छोड़कर पहाड़ी-पहाड़ी नीचे उतरने लगी। पीछे उनके सभी शिलेदार थे। अब उनकी संख्या बढ़ गई थी। कितने तो कल्याण के थे और कितने ही कोण्ढणपुर के। कुछ रांझा के थे। सभी जवान। जबरी हिम्मत वाले, मजबूत छाती के। सभी आनन्द से जंगल की कहानियां कहते चल रहे थे।

"पहाड़ी की इस टूटी कगार के नीचे मेरी गाय बाघ ने दबोची थी। पत्थर मार-मारकर भगाया था उसे।"

"और गाय ?"

"उसे तो पहले ही उसके पैरों में से खींच निकाला था। पर बहुत कटी थी, काटी थी। मर गई।"

दूसरा बोला, "वह टूटी पहाड़ी के नीचे खाली-सी जगह है, वो ऽऽऽ।"

"हां, वही !"

"एकबार में वहां फस गया। हुआ क्या कि मैं गया था घास काटने। तभी पानी बरसने लगा। अरारारा ऽ, वह पानी, वह पानी लगा कि आसमान फट पड़ा हो। हाथी की सूण्ड जैसी मोटी धाराएं पहाड़ी से पड़ रही थीं। सोचा—'पानी उतरने पर बोझ उठाकर चलें। और उस कगार के नीचे जरा जा टिका कि झट उठा। वहां फस्-फस् होने लगी। देखा तो बड़ा-सा अजगर मुंह फाड़े बढ़ा चला आ रहा था।"

"तब ?"

"कुछ नहीं। कमर में हंसिया था। दन्-दन् हाथ चलाए। टुकड़े-टुकड़े कर दिए।"

चलते-चलते उस भीड़ की दो टुकड़ियां अनायास ही बन गईं। बातें करते लोग पीछे रेंग रहे थे। राजे आगे की टुकड़ी में थे। तानाजी और बाजी उनके साथ चल रहे थे। भरा-भरा-सा जंगल था। साग और हर्र के वृक्षों में खूब झाड़ियां भरी थीं। करौंदों की भरी-भरी झाड़ियां थीं। दो मावले आगे-आगे चलते, हंसियों से कुल्हाड़ियों से पगडंडी का रास्ता साफ कर रहे थे।

इस पहाड़ी के कुछ परे गुंजन-मावल था। उसके दाहिने मुरुमदेव और तोरना किले की पहाड़ियों की कतार थी। और उसे ही देखने राजे सांझ-उतरते हुए भी, इधर मुड़े थे।

पहाड़ी की भरभराती हवा। आकाश में पूरब की ओर दूर तक बादलों की एक मोटी पट्टी-सी फैली थी। उसके परे सारा आकाश साफ-साफ नजर आ रहा था। करौंदों की झाड़ियों में रहनेवाले तीतर और

खरगोश सवारों की खड़खड़ से डरकर भाग रहे थे। भागते-भागते कभी-कभी घोड़ों के पैरों में आ-आ गिरते। राजे साथ न होते तो वह सारी मावलों की भीड़ इस शिकार को बिलकुल न छोड़ती। पर आज कुछ उपाय नहीं था।

चारों और सारी-की-सारी पहाड़ियां, एक-से-एक सटकर खड़ी थीं। एक-एक शिखर ऊंचे सिर उठाए खड़ा था, लगता था सृष्टि का सौन्दर्य ही कौतुक से देख रहे हैं। उनके पेट के नीचे घाटियों में सांझ की छायाएं उतरने लगीं। तलहटी के मैदानों में दूर-दूर बड़े-बड़े ऊंचे शिखरों की छायाएं दूर-दूर तक पसरी थीं। धीरे-धीरे वे लम्बी और लम्बी हो रही थीं। ऊपर आकाश में चीलें शांत-सी, पंख स्थिर किए, हवा में तैर रही थीं।

जंगल की लताओं, बेलों में से छनकर आती सौंधी-सौंधी हवा, सवारों के पिछोरे उड़ा रही थी। इन शिलेदारों की खड़-खड़ के अलावा सारा जंगल शान्त था, चुप था। लग रहा था एक विशाल प्रस्तर-खण्ड पर विशाल चित्र बन रहा है। चित्रकार झट-झट अपनी कलमों से रंगों के फटकारे चला रहा है। लाल, काले, हरे, बैंगनी, नीले। इस सबमें स्वच्छ था पश्चिम की ओर उतरता हुआ सूर्य-बिम्ब। उसमें चित्रकार ने भड़कीला सोने का रंग भर दिया था। सारा चित्र अपूर्व दिख रहा था।

उस चितेरे की अद्भुत कला को देखकर छोटे राजे ने अपनी घोड़ी रोक ली। घोड़े की लगाम खींचकर बाजी और राणोजी प्रश्नांकित मुद्रा लेकर एक दूसरे की ओर देखने लगे। राणोजी ने घोड़ा राजा के पास ले जाकर पूछा—

"यहां रुकना है ?"

अपने ही आनन्द की समाधि में मग्न राजा ने बाजी की ओर मुड़कर कहा—

"बाजी राणो जी ! देखो कैसा सुन्दर लग रहा है !"

"जी !"

हम लोग महलों, हवेलियों, घरों में रहते हैं। ईश्वर की यह कला देखने का सौभाग्य वहां कहां !"

तब तक पिछले सवार भी वहां आकर रुके। राजा ने स्थान, अवसर

और मुहूर्त देखकर कुछ सोचा और बोले—

"हम पूछते हैं, मालसुरे ! इन पहाड़ियों, वादियों, घाटियों में रहने वाले हम मावलों को दूसरों के दवाव में रहने का क्या कारण ? और उन्हें भी हमें दबाने का क्या हक ?

" इन विशाल ऊंची पहाड़ियों के शिखरों से खेलनेवाली, भरभराती यह स्वच्छन्द हवा, ये ऊंची टूटी कगारों के, प्रस्तरों से कूदती नदियां ! यह भगवान के घर की सुनहरी धाम। यह सारा-का-सारा जिनके लिए, और जिनके लिए ही है, वे किसी आदिलशाही की हुकूमत को सिर नमन करते हुए यह जीवन क्यों जीएं ?"

राजा का स्वर भर गया था। मन खिन्न था। तानाजी के कन्धे पर हाथ रखकर बोले—

"ऐसी कुत्तों की जिन्दगी जीने की अपेक्षा तो मरना बेहतर है।"

"पर नहीं ! ये सारे-के-सारे उसी नरक में जी रहे हैं, वंश बढ़ रहा है, जीवन रेंग रहा है। यह सब क्यों ? क्यों ??"

"तानाजी, मन में बहुत-बहुत चुभता है। मन में उठता है सो बोल दिया, नाराज तो नहीं हुए ?"

"खैर छोड़ो !"

"तुम्हारा गांव इस परसे मावल में है ? नहीं जी ?"

"जी, पश्चिम की ओर। यानी हम चल रहे हैं, उसी पहाड़ी पर," क्षण भर रुककर, बड़े ही अदब से राणोजी बोला—

"मैं कहता हूं, जरा···।"

"बोलो, बोलो !"

यहां तक आए ही हैं तो वहां तक यदि हो आते···।"

"नहीं, आज यह सम्भव भी नहीं है। फिर कभी अवसर आया तो··· अभी जिस कारण आए हैं, वह पहले। यह पठार और कितना लम्बा है ?"

रास्ता बताने वाला बोला—

"अब बहुत थोड़ा सा ही रहा है, वहां तक चलने पर फिर उतरना ही है।"

फिर से शिलेदारों का वह समूह रास्ता बताने वाले के पीछे चल

दिया। पठार पर एक जगह जरा गड्ढे में एक छोटी तलैया-सी बनी थी। जल-मुर्गों का एक झुंड वहां बैठा था। इन लोगों की आहट लगते ही जल-मुर्गों का यह झुंड वहां से खिसका और कुछ दूर जाकर फिर से पानी पर दिखने लगा।

कुछ और आगे बढ़ने पर एक छोटा-सा टीला बीच में आया। वहां से दो रास्ते निकल रहे थे। जंगल तोड़ते आगे बढ़ने वाले दाहिनी ओर उतरने लगे। राजा ने पूछा—

"यह पगडंडी किस ओर जाती है?"

"जी, बिझर को।"

"और यह?"

इस रास्ते से आगे बढ़ने पर सारा-का-सारा यह मैदान दिखता है। सारा पूरा आसमन्त दिखता है। लगता है सारा प्रदेश एक नजर में आ रहा है। उस टीले को बाएं छोड़कर सारे शिलेदार दाहिनी ओर की झाड़ी में घुसे। आगे का रास्ता घुमाव लेता जा रहा था। कभी तो वह खुले में निकलता, कभी किसी झाड़ी में से होकर गुजरता। टेकड़ी की भीत के नीचे, खजूर के पेड़ खूब फले थे। उनके लंगर-के-लंगर झूल रहे थे।

बीच-बीच में थल-कमलिनी खिली थी। पर अब उसका रंग फीका पड़ गया था। एक बहते झरने में से ये लोग निकलकर सादड़ी की राई में घुस गए। दाएं हाथ में एक खूब ऊंचे पेड़ पर ठीक ऊपर की टहनी तक कंवठाहा की एक बेल चढ़ी थी। उस पर कंवठाहा के फूल लगे थे। वे अब पककर लाल-लाल दिख रहे थे। राजा ने क्षणभर रुककर रास्ता बताने वाले को पूछा—

"ये फल क्या हैं?"

"जी, उन्हें कंवठाहा कहते हैं कवंढाहाडल,"

"क्या होता है इनका?"

"वैसे कुछ विशेष तो नहीं पर, चौपा बीमार पड़ता है तो काम आते हैं।"

बाजी ने पूछा, "क्या उतारने हैं?"

मना करते हुए राजा ने कहा—

"अभी कुछ इतनी जरुरी नहीं है।"

घोड़े आगे बढ़ चले। वह राई आगे की पूरी चढ़ाई तक फैली थी। ये लोग भी चढ़ाव चढ़कर ऊपर पहुंचे और उस पहाड़ी के माथे पर पहुंचते ही उस पार का सारा-का-सारा प्रदेश एक ही नजर में आ गया। वहां से ठीक सामने का दृश्य मनोहर था।

अथाह समुद्र में खड़े किसी बड़े-से जहाज के समान मुरुमदेव का पहाड़ अपना ऊंचा शिखर खुले विशाल आकाश में उठाए खड़ा था। उसके हाथी के सूंड-जैसे उतरते एक सिरे पर 'तोरना किला' खड़ा था। सभी ओर से बेलाग। एकदम सुरक्षित।

अब सूरज उसके पीछे डूब चुका था। इसी कारण उस पृष्ठभूमि पर किला और भी भव्य-दिव्य दिख रहा। क्षीरसमुद्र से मेरू के निकले शिखर-जैसी उसकी शान दिख रही थी। किले के दोनों हाथ क्षितिज तक पहुंचे-से लग रहे थे। ऊंचे और ऊंचे, उस किले का बुर्ज बीच में ही अपना सिर उठाता प्रतीत हो रहा था। संध्या के प्रकाश में तोरना किले की तटबंदी स्पष्ट रूप से दिख नहीं रही थीं। पर फिर भी उसकी मजबूती नजर आ रही थी, प्रतीत हो रहा था।

वह तोरना किला हिम्मत वाले बहादुरों के लिए एक आह्वान दे रहा था। कह रहा था—

"वीर माता के सपूतो! आओ। छाती में हिम्मत हो तो मेरे ये बेलाग कगारे चढ़कर आओ। मेरे दोनों ओर ये यहां से वहां तक फैली घाटियां हैं, उन्हें लांघ आओ। मैं क्या सीधे चढ़ने दूंगा! नजर थका देने वाली भीतें खड़ी करूंगा, उनमें उंगलियां फंसा-फंसाकर छातियां सटाकर घिसते हुए ऊपर चढ़ना पड़ेगा। एक ओर भयंकर चढ़ाई तो दूसरी ओर पाताल के समान गहरी खाइयां। हाथ छूटा कि वहां क्षमा कहां! यह जरा-सी काया उड़ती-पड़ती खाई की तलहटी में जा पड़ेगी। वहां भरे दिन में घूमते शेरों के लिए अनायास ही बलि मिल जाएगी।

"फिर भी, यह सारा साहस कर यदि एक बार मेरी छाती पर चढ़ें और यह तटबंदी पारकर मेरी उपत्यकाओं में उतरें तो मैं पुरस्कार के रूप में नीचे के कोंकन के सारे-के-सारे दरवाजे खोल दूंगा। बीते हजार-हजार

सालों से नीचे से आए घाटियों के मार्गों का मैं संरक्षण करता आ रहा हूं। मुझे यह सारा मालूम है। कोंकण के कितने ही दुर्ग मेरे मित्र हैं। उनसे तुम्हें बातें करना सहज होगा। उनके साथ प्रेम आलाप करना सम्भव होगा। मेरे तट पर खड़े रहने पर ठीक समुद्र का आसमन्त तुम्हारी नजर में आता रहेगा, यह सारा प्रदेश बस तुम्हारा, तुम्हारे आगोश में आकर रहेगा। पर यह सब—तब जब ये मेरी टूटी कगारें, मेरी खाइयां, मेरे ये सारे रास्ते नापकर ऊपर चढ़ सकोगे!"

यह आह्वान देता तोरना खड़ा था। उसका यह आह्वान बुदबुदाने के समान निकल रहा था। यह सारा इसलिए कि उसकी छाती पर गुलामी का निशान, हरा निशान फरफरा रहा था। वह उसे भी खुलकर मुंह खोलने नहीं देता था। उसका श्वास-प्रश्वास बन्धा था। उसका मन क्षोभ से दबा था, बन्धा था। उसके क्षोभ के कारण उसकी छाती भर-भर आती थी। उससे वह बेचैन था। तिलमिला रहा था, इतना बड़ा बलवन्त वह किला, पर केवल एक गुलामी की हरी चिंधी उसकी दुर्दशा प्रकट कर रही थी। वह क्या मामूली चिंधी थी? उसके पीछे सुलेमानी और खुरासानी तेगों की अधिसत्ता का दबदबा था। अरबी घोड़ों की रौंदती टापों के साथ उसीका बीज इस धरती में बोया गया था। घर की फूट घर को भेद रही थी। वह सारी फसल गहगहाकर तोरन दुर्ग के चारों ओर खड़ी थी। उस फसल का जंगल उसे बोलने कब दे रहा था! उसकी बुलंद आवाज दबी थी, आज वह अस्वस्थ था, बेचैन था।

पर इस बेचैनी से उसके उस गंभीर स्वरूप में कुछ भी फरक नजर नहीं आ रहा था। उसे विश्वास था कि यह पृथ्वी विशाल है, यह समय भी असीम है, कभी-न-कभी कोई-न-कोई बिरला मेरी ये बातें सुनेगा, समझेगा। सुननेवाले में जोश आएगा, हनुमान-जैसा उसमें बल आएगा, वह भी उसी प्रकार इस आकाश में ऊंचा उड़ेगा और मेरी इस छाती पर शल्य-सा चुभने वाला यह हरा निशान उतारकर फेंक देगा। तब मैं फिर से अपनी इस मजबूत छाती की ढाल बन कर फिर से इस देश का शासन संभाने की शक्ति प्राप्त करूंगा। उसे यह पूरा-पूरा विश्वास था।

और, उस सुनहरी संध्या को, जब चतुर चितेरे की कलमों में आकाश

ने रंगों का खुला समुद्र उड़ेल दिया था, तब कोई एक बिरला भुलेश्वर की पर्वत-श्रेणी पर खड़ा था, और तोरना किले की उस मनोव्यथा को समझ रहा था।

मंत्रमुग्ध-से छोटे सरकार अपनी घोड़ी पर बैठे थे। लगाम हाथ से छूट गई थी। दोनों हाथ छाती पर बंधे थे। मुद्रा लाल-लाल हो रही थी। श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ रही थी। दांतों तले अधर भींच लिया था इतने जोर से कि उसमें से कभी-कभी हृदय की व्यथा टप् टप् टप् कर टपक पड़ती।

राजे किसी से भी बोल नहीं रहे थे। न ही उन्होंने किसी से कुछ पूछा। मावले सभी आपस में बोल रहे थे।

"यह सामने दिख रही है वह मुरुदेव की पहाड़ी।"

"उस पर किला है ना जी ?"

"है, पर बहुत मजबूत नहीं है। कुछ दस-बीस पानी के ठिकाने हैं।"

"और तटबंदी ?"

"मामूली-सी। और पश्चिम की ओर दिख रहा है वह तोरना किला।"

"ओहो ! ओ, वह ?"

"रे भई, वह तो बहुत ऊंचा है। पूरे इस प्रदेश में ऐसा किला नहीं है जी।"

"तूने कभी देखा है इसे।"

"नहीं जी, हम कभी इस पहाड़ी को पारकर इस ओर उतरे नहीं हैं।"

"धत् तेरे की !"

तभी तानाजी ने उन सभी बतियाने वालों को चुप किया। राजा की समाधि उसने देखी थी। वह उसे समझने का प्रयत्न कर रहा था। वह इतना समझ पाया था कि इस समय राजा को जरा शान्त वातावरण चाहिए, कोई शब्द भी न बोले। इस बालराजा की समाधि भंग न हो। तानाजी की सूचना सभी ने मान ली। अब केवल घोड़ों की टप्, टप्, टप् आवाज हो रही थी।

कुछ क्षण बीते और राजे घूमकर तानाजी से बोले, "चलो चलें अब चलते समय वह कंवडाहल की बेल दाएं आएगी, क्यों रे ?"

"जी, आएगी तो ! क्या कुछ फल गिराने हैं ?" राजे कुछ न बोले। चुप-चुप उस राई में घुसे। वह ऊंचा पेड़ पास आते ही रुके और बोले, "मित्रो ! ये फल निकालने तो हैं पर ऊपर चढ़कर नहीं, इन तीरों से बेंधकर !"

राजा ने ऐसा कहा और सभी जवानों ने कन्धे पर रखे तीर-कमान उतार लिए। भर-भर कमानों की डोरियां चढ़ने लगीं। सियारों की आंतों की, बांसों की तांते—ठुई-ठुई—बोलने लगीं। तरकसों में से तीर निकलने लगे और सप्-सप् सटासट कर तीर छूटने लगे।

कुछ पेड़ की ऊंचाई से ही निकल जाते, किन्हीं से केवल टहनियां और पत्ते टूट रहे थे। कुछ के तीर कामयाब हुए थे। लाल कंवडाहाल नीचे पड़े थे।

एक फल पेड़ की चोटी पर था। नीचे से ठीक-ठाक दीखता नहीं था। उसके नीचे आड़ी दो मजबूत शाखाएं थीं। उनकी आड़ से वह सभी को चिढ़ा रहा था। पर उस ओर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। कुछ लोगों ने अपनी ताकत के बाहर का समझकर उसे छोड़ दिया था। कुछ लोगों ने यत्न किया, पर असफल रहे।

राजा की उस ओर नजर थी। उन्होंने एक मित्र से तीर-कमान मांग लिया। उसने तरकस आगे किया और उसमें से एक अच्छा-सा तीर निकाला। उस पर प्रेम से हाथ फेरा। उसके पिछले परों को ठीक किया—आगे के फल की धार उंगली पर जांच ली। फिर घोड़ी से नीचे उतरकर उस पेड़ के तने के पास जाकर खड़े हो गए। पास पड़े एक मजबूत पत्थर पर एक पैर टिकाकर और ऊपर देखकर उस कंवडाहाल के फल को बेंध लिया। वहां से भी ऊपर की मजबूत शाखाएं आड़ी आ रही थीं। कुतूहल से सभी तीरंदाज राजा को देख रहे थे।

कमान की तांत हाथ में पकड़कर राजा ने तीर कान तक खींचा, कंवडाहल की ओर दृष्टि लगाई, श्वास रोक लिया और सारा शरीर स्थिर होने पर तीर छूट गया। टेढ़ी-मेढ़ी टहनियों-झाड़ियों में से निकलकर तीर सीधा ऊपर गया और कंवडाहाल नीचे गिरा।

एकदम खुश होकर राजा ने तानाजी के हाथ-पर-हाथ रखा और बोले,

"रावजी, सामने तोरना किले पर फहर रहे निशान पर ऐसे ही तीर मारना है। एक तीर में निशान नीचे उतरना चाहिए।"

फिर राणोजी की ओर घूमकर बोले—"दौलतवंती, तुम्हारा गांव तोरना किले से कितनी दूर है? ठीक-ठीक बताओ।"

"जी, यही है कुछ कोस, दो कोस।"

"इस प्रदेश का चप्पा-चप्पा तुम्हारा देखा-जाना होगा?"

नीचे देखते हुए राणोजी ने कहा—"हुकुम होते ही, सब घूमकर हाजिर करता हूं।"

राजे चुप हो गए। लौटे। सभी लौट रहे थे। दिन अब पूरा डूब चुका था। मावेलों की आंखें उस अंधेरे में, उस तोरने के जंगल में खोई कथाएं देख रही थीं।

प्रातःकाल का समय। लाल महल के महाद्वार पर भगवा ध्वज लहरा रहा था। प्रभातकाल की शहनाई बज रही थी। दूर, शिलेदारों के शिलेखान के पास खड़ा सिपाही राष्ट्र-ध्वज की वन्दना में शंख फूंक रहा था।

पूना के गणेश-मंदिर में आरती के घंटा-नाद हो रहे थे। गोपुर पर बैठे कलाकार शहनाई और चौघड़ा बजा रहे थे। सारा आसमन्त प्रातःकालीन मांगल्य से भरा था।

इतने में दूर धूल उड़ाती घुड़सवारी की टोली आती दिखी। लालमहल में चहल-पहल बढ़ गई। दादोजी पन्त महाद्वार पर बने चौड़े चबूतरे पर खड़े थे। इतना बड़ा विशाल लालमहल का आहाता—पर वह घुड़सवारों से भर गया। सभी सवार घोड़े से उतर-उतरकर महाद्वार की ओर बढ़ रहे थे। कमर पर हाथ रखकर दादोजी यह उत्साह भरा मित्रों का जमाव देख रहे थे। कौतुक से प्रसन्न होकर बोले, "वाह वा! शिऊबा राजे, वाह वा! कितने मित्र बना लिए, कितने शिलेदार इकट्ठे किए। हमारी कल्पना से भी अधिक किया।"

शिऊबा, अब तक घोड़ी को गारद के सिपाही के हाथ में देखकर महाद्वार की सीढ़ियां चढ़ रहे थे।

झटके से आगे बढ़े और दादोजी पन्त के चरणों की वन्दना कर

बोले—"हम सोच रहे थे कि आपको यह सब पसन्द···।"

उनका यह वाक्य पूरा होने के पहले ही दादोजी राजा की पीठ पर हाथ फेरकर बोले—"यह सब पसन्द न आने के लिए हम क्या वैरागी हैं ? ठीक है रानी साहिबा तक खबर पहुंच ही गई है। अब आप जरा आराम कर लीजिए। इन सभी की व्यवस्था अब हम देखते हैं।"

थोड़ी देर में ही शिलेदारों को भीतर से बुलावा आया। पहरेदार के पीछे-पीछे सभी भीतर के दीवान में माऊ साहिबा से भेंट करने को हाजिर हो रहे थे। भीतर चौड़ी बैठक, में लोढ़ से टिककर माऊ साहिबा और उनके पास शिऊबा बैठे थे। अभी-अभी नहाना होने के कारण माऊ साहिबा के कोमल केश सिर पर से फैलकर साड़ी के पल्लू से बाहर निकल रहे थे। विस्तृत ललाट पर भी बार-बार बाल उतर आते। बड़ी-सी बिन्दी माथे की शोभा बढ़ा रही थी। मुद्रा पर खानदानी अदब, साथ में प्रसन्न उदारता भी प्रतीत हो रही थी। हाथ के कंकण रह-रहकर बोल रहे थे!

राजा बोले—"आइये, राव तानाजी मालसुरे ! हमने माऊ साहिबा के पास आपकी तारीफ पहले ही कर दी है। आइए, इधर आइए।"

इस अनोखे आदर एवं ममता के अनुभूत व्यवहार से तानाजी का मन संभ्रमित हो रहा था। जंगल का वह स्वछन्द पंछी, कोण्ढणपुर की पुरानी हवेली के ओसारे पर छोटे सरकार से मिलना एक बात थी और आज इस खानदानी अदब और अन्दाज के माहौल में माऊ साहिबा की-सी राजसी के सामने पेश होना बात बहुत कुछ विशेष थी। पर क्षण भर में तानाजी सम्भल गए और माऊ साहिबा को मुजराकर एक ओर खड़े हो गए।

स्मित करती माऊ साहिबा बोलीं, "रीछनी कगार से धकेल क्यों दी, राव ! गले में रस्सी बांधकर लाते तो शिकार खाने के काम आती।"

तानाजी कुछ बोलने ही वाला था कि माऊ साहिबा बोलीं, "खैर, जाने दो, पर फिर कभी मौका आया तो उसकी मूंछों के बाल जरूर ही लाओ। बड़ी औषधि है वह। यह बाजू की जखम कैसी है ?"

तानाजी संकोच से बोला, "कहां का जखम और क्या ! जरा-सी खरोंच-सी थी। ऐसा तो बहुत बार होता रहता है।"

"लगता है शस्त्र पर आपका हाथ और शौक अच्छा है। हमारा

शिलेखाना नहीं देखा होगा ?"

"जी नहीं, मैं गांव का गंवई आदमी। कभी कहीं गया नहीं, आया नहीं।"

"तो भी इसमें क्या ! कुछ दिन छोटे राजे के साथ रहोगे, सब-कुछ समझ-बूझ जाओगे। एक बात और, खुद को गांव-गंवई नहीं कहना चाहिए। क्या कमी है खुद में ! चौड़ी छाती है, अपार हिम्मत है, तलवार हाथ में, बरतने का शौक है। यह सब सच है ना ?"

"जी।"

"अरे, तुम अभी भी खड़े ही हो ! आओ, शिऊवा के पास बैठो।"

इसी प्रकार हँसते, पूछताछ करते राजा ने सभी का परिचय करा दिया।

ये भानजी डिंबले, तलवार चलाने में होशियार हैं। ये आवाजी और भावजी दोनों ही—खास भाई फरीदगी का खेल खूब करते हैं। ये हैं सर्फोजी काले, पट्टे का हाथ सफाई से करते हैं। ये उरसल उत्तम भानाईत, इनके दादा की छाती में तीर घुसा था, बहुत दिनों बाद निकाल पाए थे, उर में चुभी उस चुभन की यादगार में 'उरसल' कहलाते हैं। एक-एक मुजराकर अपनी मर्यादा से बैठ रहा था। बड़े घर में दीवानखास में इतनी आत्मीयता से आदर होगा, ऐसा उन्होंने सोचा तक नहीं था। पर वह प्रसन्न व्यवहार देखकर सभी के मन में आनन्द हो रहा था। सभी की मुद्राएं प्रसन्न और उजली हो रही थीं।

दोपहर में जब सारे-के-सारे राजा के साथ थाली के लिए आकर बैठे तो अनेक को बड़ा ही अटपटा लगा। जंगल में ज्वार और नांगली की रोटियां हाथ में रखकर नमक की डली और लाल मिर्ची के साथ ठूंसकर ऊपर से मट्ठा का गड़बा पीकर, गड्, गड्, गड् पानी पिया। फूले पेट में उंगली देकर देखा, नरम लगा तो दो-चार रोटियां और उतारीं कि बस। यह इन मावलों की थाली की रीत।

वहां आज हरएक को बैठने के लिए सुन्दर तख्तों के पट्टे थे, आगे उतने ही सुन्दर पट्टे थे। उन पर सुन्दर थाली, एक-एक थाली में चार-चार कटोरियां, बाजू में बड़े-बड़े कांसे के सकोरे, मुलायम-मुलायम

रोटियां घी चुपड़ी, चार-चार तरकारियां, बाईं ओर रायते, चटनी कटोरियों में, सकोरों में, चार-चार प्रकार की खीर। ऐसा ठाट था और पूछताछ के लिए खुद माऊ साहिबा खड़ी थीं। बार-बार परसवाती थीं। सभी के मन इसीसे भर गए थे।

उनमें से कितने तो पट्टे पर उकड़ूं बैठे थे। दो-चार ने रोज की आदत के अनुसार रोटियां झट से हाथ में उठाकर रख लीं। एक-दो ने सारी खीर थाली में डालकर थाली ही उठाकर मुंह को लगा ली। कुछ ने सारी चीजें थाली में एक कीं और सपासप खाने लगे।

पर कुछ ऐसे भी थे जिन्हें यह सब सहन नहीं हो रहा था। आंखों में पानी लिए हाथ-पर-हाथ धरे बैठे थे। उनका हाथ कोई उठा नहीं पा रहा था। आखिर जीजाऊ उनके पास जाकर बैठी। पूछा, "रावजी क्या तबियत ठीक नहीं है ?"

आता हुआ रोना जैसे-तैसे दबाकर बोला, "नहीं जी !"

"तब, हमारे घर का भोजन पसन्द नहीं आया है ?"

"वैसा भी नहीं। सारी चीजें खूब बढ़िया जो हैं।"

वह कुछ बोलता कि मन को वह रोने से रोक न सका। आंसू पोंछकर बोला, "आज तक आप-जैसी कोई मां भोजन कराने वाली मिली नहीं। आज मिली तो आनन्द से हाथ उठता नहीं, और नीचे उतरता नहीं।"

कौतुक से जीजाऊ बोली, "ऐसा क्यों जी ! घरवाली भोजन परोसती नहीं है क्या ?"

पास बैठे लड़के को मजाक सूझा। वह बोला, "मैं बताता हूं माऊ-साहिबा ! यह ऐसा ही है। और घरवाली क्या है ? रीछनी है, रीछनी। यह केवल इतना कह भर दे कि थाली तैयार है कि घिघियाती दौड़ती आती है। क्या करे यह भी ! तभी ऐसा खप्पड़ हो गया है।"

ऐसा करते हुए उसने ऐसा-कुछ मुंह बनाया कि उसका वह साथी भी हँस पड़ा और साथ में सभी ठहाकों के साथ हँसने लगे ?

सौलह

खासे महल का एक खासा कमरा। एक चौड़ी चौकी पर अच्छी-सी मसनद लगी थी। लोढ़ से टिककर जीजाऊ बैठी थीं। दूर कोने में समई की बाती स्थिर-सी प्रकाश कर रही थी। उससे निकलकर काजल ऊपर उठकर, ऊपर के पसरे छोटे चांदी के पात्र पर छोटी छतरी-सी बना रहा था।

जीजाऊ मां जानकी को अपने पास बिठाकर उसकी पीठ पर हाथ फेर रही थी। जानकी भीतर से आते दुःख के आवेग को आंखों के आंसुओं को जैसे-तैसे रोकती अपनी कर्म-कहानी कह रही थी। तपी जमीन को जरा-सा पानी मिलते ही झपकारे निकल रहे थे। सामने ही राजाई खड़ी थी। जानकी की कहानी अब उसे याद हो गई थी। जानकी जहां रुकती, कह न पाती, वहां आगे का सूत्र राजाई जोड़ देती। सारा सुन लेने पर माउ साहिबा उंसास भरकर चुप रहीं। उनका हाथ जानकी की पीठ पर था। मन कहीं खो गया था। दूर, बहुत दूर किसी भूतकाल में।

उस क्षण भर कितनी ही ऐसी जानकी और उनकी परीक्षाओं की घड़ियां उनकी आंखों के सामने झट-झट सरक गईं।

जीजाऊ का मन खिन्न था। पर इस जानकी के पराक्रम से जीजाऊ बहुत-कुछ मन में प्रसन्न हो रही थी। हथेलियों में बड़े कौतुक से जानकी की मुद्रा अपने दोनों हाथों से भरकर उससे बोली—

"यह बता मेरी लड़की! बाघ से जूझते तुझे मरने का डर नहीं लगा?"

"नहीं जी, वह बछड़ा टुकर-टुकर डरे हिरन-सा बड़ी ही करुणा से मेरी ओर जो देख रहा था।"

"होगा, पर···।"

"उसके प्राण कैसे बचेंगे, बस यही एक विचार उस समय था।" झट

से माउ साहिबा ने जानकी का मुख चूमकर उसे छाती से लगा लिया। बोली, "यह तेरा विरला साहस सारे गुणों से बढ़कर है मेरी बेटी ! आज तूने अपनी मां को धन्य किया, अब दुःख करने का कारण नहीं।"

"राजाई ! छोटे राजा को कहो कि हम उनको बुला रही हैं।"

कुछ ही क्षणों में छोटे राजा वहां हाजिर हो गए। आते ही बड़ी ही मर्यादा से जीजाऊ के चरणों का स्पर्श करके बैठे। तभी जानकी आंचल सम्भालतीं उठने लगी। माउ साहिबा ने उसे फिर से बिठा लिया, कहा, "अरी, यह तो तेरा भाई है ना ? उससे इतना संकोच क्या !"

अब तक राजे माउ साहिबा के पास चौकी पर बैठ गए थे। बोले, "मां साहिबा ने जानकी की कथा सुन ली होगी।"

"हां, राजे, आपने इस काम के बारे में क्या मनसूबा किया है। हम दादोजी से पत्र की थैली भेजने वाले हैं।"

"खत से यह काम होगा नहीं मां साहिबा ! थानेदार बहुत कुछ टेढ़ा है। उन्मत्त भी है। वह खत फाड़कर फेंक देगा।"

"तब क्या दूसरा उपाय है ?"

"किसी चतुर शिलेदार को यह कामगिरी सौंपनी चाहिए। जिसे दरबारी रस्मों-रिवाज और कायदे मालूम हों। जो अदब और शाही अन्दाज का भी कायल हो, जरूरत पड़ने पर हरहुनर से काम निकालने में माहिर हो, साथ में छाती का फौलाद, और हिम्मत में शेर हो।"

"हम पूछते हैं कि ऐसा सुघड़ हरहुनर कोई ढूंढ़ा है ?"

"दौलतबंदी को भेजें। कैसा रहेगा ?"

"राणोजी ? आदमी उत्तम ढूंढ़ा।"

"यह सही है, पर राजाई भाभी क्या सोचेगी ?"

मां साहिबा, अभिमान से मस्तक उठाकर बोली, "राजाई को ? छोटी फरीया से नोक पोंछती थी, तब से मेरे पास रही है। मैं उसे अच्छी तरह पहचानती हूं। एक महकते ललाट की बिन्दी को सलामत रखने के लिए उसके घर धनी के परिश्रम सफल हों तो उसकी छाती अभिमान से भर-भर जाएगी।"

"पर मैं कह रही थी···।"

"क्या ? बोल, बोल !"

"कुछ विशेष नहीं, पर हम दोनों ही को भेज दो मां साहिबा !"

"काम जरा हिम्मत का है, यदि मैं साथ रहूं तो घरधनी की मददगार बन सकूंगी।"

"शिउबा, तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

राजे सोच में डूब गए। राजे ऐसे प्रसंगों पर गहरे विचारों में डूब जाते हैं, यह मां साहिबा को खूब मालूम था। उन्हें उसी में छोड़कर वे कुछ क्षण चुप रहीं। कुछ ही क्षणों में राजे बोले, "माउ साहिबा, पन्त काका को बुलाकर जरा···।"

माउ साहिबा ने दूर खड़े हुजरे की ओर देखा। वह समझकर पन्त काका को बुलाने चला गया।

माऊ साहिबा ने जानकी के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा, "बेटी जानकी, निश्चित होकर रहो। तुम्हारा सारा भार अब हमने ले लिया है। हर प्रयत्न से तुम्हारा धनी तुम्हें ला देंगे। जाओ अब आराम करो। राजाई इसे···।"

उन दोनों के चले जाने पर, राजे उठकर मां साहिबा के बिल्कुल पास बैठ गए। मां साहिबा ने प्रेम से राजा को अंक में भर लिया। मुख ऊपर उठाकर उनके विस्तृत ललाट को कुछ देखकर उस पर होंठ टेक दिए···।

महाराष्ट्र के राजा ने वह अपार धन मां की गोद में छिपा लिया।

"इतना गरम होने की जरूरत नहीं है, राजे ! दिल हमारा भी जलता है। पर जरा सबर ! काम इतने जल्दी नहीं होते। और यह दुःख-दर्द बहुत दिनों का है।"

"पर, सुलतान है तो रैय्यत से इतनी उन्मत्तता जरूरी है ?"

"खुद बादशाह सलामत, आदिलशाही, अमलदारों को हुक्म भरते हैं ऐसा नहीं है शिऊबा ! आप जानते नहीं हैं कि सूरज की धूप जितनी नहीं जलाती जितना तपती रेत जलाती है। यह बदमाशी इन अमलदारों की ही है।"

अपनी नाराजी पर जप्त करते हुए राजा बोले, "अंधकार को सूर्य कहने को हमारी जीभ आगे नहीं बढ़ती।"

माऊ साहिबा गुरु-शिष्य का यह संवाद सुन रही थीं।

हँसकर बोली—"पन्त शिऊबा के उत्तरों पर नाराज न होइए। वह तो हमारी तालीम में बढ़ा छोटा पखेरू है।"

पन्त उतने ही अदब से बोले—

"नहीं, रानी साहिबा! मन में हमें भी इस तालीम की तालीम पर फख्र है। इसे हम कहकर बता नहीं सकते। पर हम सोचते हैं कि बड़े राजे साहब को अर्जकर यह हालात पेश करें, तो···।"

माऊ साहिबा की मुद्रा, कुछ गंभीर हो उठी। वे उसी गंभीरता में अपना अनमनापन आंचल से संवारती हुई बोलीं—"आप तो जानते हैं पन्त कि जब तब स्वामी को पत्र, खत, अर्ज पेशकर इधर की बातों में उनका मन उलझाने में हमें बहुत संकोच होता है।"

"हम यह अर्ज अपनी ओर से पेश करेंगे।"

"यह सही है कि स्वामी की चतुराई और पराक्रम की कोई सीमा नहीं है। आपकी ओर से या नाम से अर्ज की बात ही क्या, इधर से छोटा-सा पंछी भी उधर जाकर तकरीर करे तो वे यहां के सारे हालात जान लेंगे। पर उधर से कहना कुछ भी नहीं होगा, केवल हँसेंगे। और आप नहीं जानते, स्वामी का वह हँसना हमें दिल में चुभन करता है।"

"बड़े राजे साहब को यह सब लिखने की जरूरत नहीं है। उन्होंने इधर से रुखसत करते हुए ही सब बता दिया था," एकाएक राजे बोल उठे—

"जो कुछ करना है अपनी हिम्मत और हिकमत पर करना है। किसी प्रकार की तकरार हम तक नहीं आनी चाहिए।"

"अब कहना इतना ही है कि यदि आप दोनों ही का आशीर्वाद हो तो हम खुद ही गगन के तारों को बांधने हाथ उठाएं।"

उसांस भरकर अपना पिछौरा कुछ ठीक करते हुए पन्त बोले—

"मनसुखा तो ठीक है पर, मुकाबला आदिलशाही से है। यह सब समझ-बूझकर, बड़ी ही खबरदारी से काम करना चाहिए। इससे बढ़कर हमें और कुछ कहना नहीं है।"

यह सुना भर था कि राजे उठकर पन्त काका के चरणों का स्पर्श

करने झुके। तभी हड़बड़ाकर पन्त उन्हें उठाकर अपने पास बिठाकर, अपने आंसू और नाक पोंछते हुए बोले, "राजे, अकेले में आपकी यह नम्रता योग्य है। सही है। पर व्यवहार में आप हमारे धनी हैं और हम आपके दास। यह भी आप ध्यान में रखें। हम इस दौलत के और इस धनी के आसपास सारे इस पहाड़ी आंचल की श्रद्धा और आदर केन्द्रित कर रहे हैं। उसीको ध्यान रखकर लोगों को व्यवहार रखना चाहिए। आपकी नम्रता की हम बहुत-बहुत कदर करते हैं, पर जनों में यही दिखना चाहिए कि दौलत के धनी आप हैं, समझे ना राजे !"

शिऊबा ने यह सब सुनकर, उसी अदब से पन्त के कांपते हाथों को हाथ में लेकर पूछा—

"तो फिर तोरना किले का आपका विचार क्या हुआ ?"

पन्त क्षण भर आंखें मूंदकर बैठे और बोले, "राजे, आपने अपना मनसूबा बता दिया है। हमने अपना जासूस पहले ही उधर भेज दिया था। वह अनेक बहानों से उस किले पर घूम आया है। उसकी खबर यह है—

"बहुत दिनों से यह किला बेवसाऊ ही था। नीचे के चौपाये चौमासे भर ऊपर किले में चरते रहते थे। एक बार चौपायों को भीतर कर दरवाजा बंद किया कि बस फिर इन चौपायों को कोई डर नहीं रहता था। कोई उस ओर देखता भी नहीं था। कभी-कभार सांड ने किसी चौपाये को गिराया, मारा या टूटी कगार से धकेल दिया तो ही कोई उधर जाता। नहीं तो उधर जाने का किसी को कोई कारण नहीं। कोई घेरने वाला कभी ऊपर जाकर देखता, किला घूमता, कहीं कोई बाघ-बघर्रा घुसा हो तो उसे मार भगाता।

पर इधर दो-चार सालों से नामालूम क्यों, थानेदार का किले की ओर कुछ-कुछ ध्यान गया है। उसने बिजापुर के दरबार में अर्ज दिया है। और तब कुछ मामूली सैनिक-साजो-सामान आया है। आजकल पांच-पचास सैनिक ऊपर रहते हैं। किलेदार आया है अनायत खां दख्खनी। उसने गारद और चौकियां बिठा दी हैं, पर यह सारा बंदोबस्त ठीक-ठाक ही है।

कोण्डाणा की नाक तोरण का किला है, यह वह भी समझता है।

उसने कारखाने का अधिकारी, सबनीस, टिपणवीन ऐसे कुछ अधिकारी भी रखे हैं। वे सभी इसी मावल के इलाके के हैं। हवलदार बेल्हा इलाके का है। नाम है राजवाड़े।

किले पर पानी का इन्तजाम खूब है। दाना आसपास के इलाके से आता है। तोपें हैं तीन, पर एक का कान फूट चुका है, दूसरी टूटी पड़ी है। एक सही सलामत है। पर अभी फिलहाल उसके लायक उतनी बारूद नहीं है। किले पर कुछ पुरानी कडबिनी है।

राजा ने यह सब सावधानी से सुन लिया और पूछा, "यह सही ही है कि किला बिलकुल एक ओर है, और आदिलशाही की सुलतानी बंदोबस्त से दूर अलग-थलग है।"

"यह सब सही है, कोण्डाना किला छोड़ दे तो आसपास दूसरा किला नहीं है और कोण्डाना किला हमारे कब्जे में है।"

"यह भी सोचे कि यदि बोरना पर कब्जा ले लिया तो परिणाम क्या होगा?"

"बिजापुर से जवाब-तलब होगा।"

"ठीक है। यह भी तो कहा जा सकता है कि कोण्डाना के इलाके के पास था, और इधर लुटेरों-चोरों का बंदोबस्त करने की नीयत से ही इस पर कब्जा लिया है और वह भी आदिलशाही की ही ओर से उसीकी वजह से।"

"यह कारण तो ठीक है, और मंजूरे का किला भी—"

"तो फिर कदम उठाएं।"

"मां भवानी का स्मरणकर दांव सार दो, पर खबरदार और सतर्क भीर हो।"

माऊ साहिबा की ओर देखकर शिऊबा बोले, "मां साहिबा, हम हैं तो छोटे बालक ही, कुछ अधिक का भार तो नहीं उठा रहे हैं?"

गौरव के साथ माऊ साहिबा बोलीं, "शिऊवा, कितने ही दिनों से हम यह स्वप्न देखती आ रही हैं। इससे बढ़कर सुन्दर और क्या होगा!"

छोटे सरकार की कचहरी खूब बढ़िया सजाई गई थी। चारों ओर नील गायों के पूरे चमड़े भीतों पर टंगे थे। राजा की चौड़ी चौकी के पीछे

सोने के काम से सजाई सुन्दर ढाल टंगी थीं। उसके दोनों ओर दो उम्दा तलवारें टंगी थीं। उनकी मुट्ठियों पर लाल-लाल और हरे नग जड़े थे। पास की खूंटी पर सोने के पानी से सजे दो तरकस लटकाए थे। बढ़िया बांस की कमान थी। एक फौलादी कमान लटकी थी। उस पर चांदी का सुन्दर काम किया था।

कचहरी की जमीन सुन्दर गलीचों से पटी थी, छत पर रंग-बिरंगे झाड़-फानूस टंगे थे। कचहरी की एक ओर चौड़ा-सा आंगन था, दूसरी ओर हवेली का परकोटा दिख रहा था। जरूरत भर खिड़कियां। भीतर खूब प्रकाश आ रहा था।

राजा की बैठक की चौकी चौड़ी और काफी लम्बी थी। शीशम की नक्काशी किए तराशे सुन्दर खूंटे थे। गादी पर सुन्दर चादर थी। तकिये की खौल मखमली थी, उसके दोनों ओर के नाड़ों के कूदने रेशमी थे।"

राजे केवल अंगरखा पहने लोढ़ से टिककर बैठे थे। पैरों पर जरी की लाल-लाल शाल पड़ी थी। मुठा नदी को पार करते पैरों में मामूली खरोंच और मोच आ गयी थी। उस पर हल्दी का लेप लगाया था। पास बैठा सेवक मोर-पंखी लेकर लेप पर बैठती मखियां हटा रहा था, हौले-हौले।

अंगरखे में से राजा का भरा-भरा मजबूत शरीर और भरे-भरे बाजू दिख रहे थे।

उमर अभी नयी थी, पर मुख पर प्रौढ़ता और विवेक दिखता था। वे कचहरी में बैठे विचार में डूबे थे।

एक बार बाजी जेधे और चिमणाजी भीतर झांक गए थे, पर राजा की तन्द्रा लगी देखकर वैसे ही लौट गए थे।

इतने में राणोजी कमर में दुपट्टा कसते हुए कचहरी में आया। थोड़ी देर तक चुप खड़ा रहा, कुछ खंकारा तो राजा का ध्यान उस ओर गया। बोले—

"आइये दौलत-बंकी ! हो गयी सब तैयारी।

"जी !"

"राजाई भाभी की।"

"उसकी भी हो गयी है।"

"राणेजी ! जा रहे हो, पर चौकस रहो, साथ में घरवाली भी है, किसी से कह रही थी। आसवली कभी देखी नहीं।"

"ठीक ! काम की सारी कल्पना है ?"

"जी।"

"जरा दुहराओ तो क्या-क्या कहना है ?"

"यहां से पहले आसवली को जाना, वहां चार दिन रहकर तोरना किले की खबर लेनी, वह काम हो जाने पर, आसवली जाकर बाजीराव नमावरे के काम को हाथ में लेना है। वह सुभान मंगल ही है या कोई और है इसका अता-पता और खोज-खबर लेनी है।"

"ठीक, ठीक। पर एक-एक काम के लिए दिनों मत लगाओ।"

"नहीं जी।"

"दौलतवंकी, हमारी सुनोगे ? काम जरा कठिन है, किसी और को साथ ले लो।"

"नहीं धनी ! काम जरा नाजुक है, बारीकी का है। किसी नये आदमी को देखकर ही गांव के लोग जरा चौकस हो जाते हैं।"

"ठीक है पर, कुछ टेढ़ा मालूम हो तो तुरन्त हम तक खबर करो।"

"धनी, परसों हमारी कोण्ढणपुर की यात्रा का बहुत बोलबाला हुआ है। बहुत-से लोग इस ओर अपनी दृष्टि से देखने लगे हैं। कुछ ऊंच-नीच हो भी जाए तो आप तक खबर अपने-आप आ जाएगी।"

राजे उठ खड़े हुए—बोले, "चलो, तुम्हें दरवाजे तक विदा कर दूं।" दोनों ही उठकर बाहर की ओर चल पड़े।

राजा को देखकर नौकर-चाकर आदर से झुककर मुजरा करते, अदब से एक ओर हटते। चौक में से होकर राजे आगे बढ़ ही रहे थे कि तानाजी सामने से आया, वह मुजरा कर बोला, "इधर ही आ रहा था मैं।"

"घोड़े देखे ?"

"देखे जी, पर अभी बिल्कुल जंगली हैं। दाना, मसाला मिला नहीं अभी तक, हड्डियां इसीलिए दिख रही हैं।"

"घुमाकर सवार होकर देखा ?"

"हां जी, हर घोड़े पर सवार होकर उसे थका लिया।"

राजा ने हँसते हुए पूछा, "किसी ने गिराया तो नहीं ?"

"हुं, मुझे क्या गिराते ! मैंने ही एक-एक को थका-थकाकर चूर कर दिया।"

पेट के नीचे पैरों की कैंची लगाई और पीठ पर दी तरवड़ के फोक की मार दी। दो-चार ने इधर-उधर तगड़ियां साड़ी उठा-पटक की। मुझे गिराना चाहा, मैं ब्रह्मराक्षस सर पर चिपका बैठा था। घोड़ों ने खूब ऊधम किया और फिर आए रास्ते पर चुपचाप।"

"तो फिर खरीद लें।"

"ले लीजिए, हड्डियां बाहर निकली हैं, पर दाना-मसाला मिलने पर तैयार हो जाएंगे और आते आषाढ़ में वैसे ही मोटे हो जाएंगे। कहावत भी तो है !"

"क्या ?"

"आषाढ़ में टट्टू, सावन में भट्टू और भादों में कुनबट्टू।" हँसते हुए राजा ने पूछा, "मतलब कुछ ध्यान में नहीं आया।"

"ऐसा है जी ! कि आषाढ़ में नया चारा खाकर ये टट्टू शरीर से गदराते हैं। सावन में बामन के दान-दक्षिणा से और सीदे से फुरसत नहीं पाते। भादों शुरू हुआ कि कुनकी भी लोगों के पितर जीमते-जीमते लौटते हैं और चौपाल पर पसरे रहते हैं सांड-सी जुगाली करते।"

इस विनोद पर तानाजी हहाकर हँसने लगा। आसपास के नौकरों ने पिछोरों से मुंह ढांपकर हँसना छिपाया।

राजे बोले, "भई, दौलतबंकी आज नयी मुंहिम पर निकले हैं और द्वार पर घोड़े आए हैं। शकुन तो अच्छा हुआ। चलो, इन्हें महाद्वार तक पहुंचा दें। फिर आपको हमारा शिलेखाना भी देखना है न आज ? चलो चलें।"

सत्रह

तानाजी ने शिलेखाने में पैर रखा और वह चकित होकर रह गया। वहां तो शस्त्रों का कारखाना था। शिलेखाने के परे खुले आंगन में भट्टियां थीं। जलते उपलों पर लुहार फौलाद ठोक रहे थे। तलवारों की पाती गढ़ी जा रही थीं। वहां से धार लगाने वाले सिकलीगरों के पास पहुंचती थी। वे उनको घिस-घिसकर साफ करते। दो-चार चक्के घूम रहे थे, उन पर कारीगर तलवारों की पाति रखते। धार काढ़ते थे। नीचे पैरों में धरी ईंटों से लाल-लाल धूल उड़ रही थी। वह उन बूढ़ों की दाढ़ी के बालों को मेहंदी-सी रंग रही थी।

पास ही दो-चार मियान बनाने वाले बैठे थे।

बिना रेशे की मुलायम तख्तियों को साफ कर रहे थे। नाप कर मियानें बन रही थीं। कुछ कारीगर, पीतल की लाख भट्टियों पर बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों में पिघाला करते थे। दूसरे उस लाख को मुट्ठियों के खांचे में डालकर उसमें तलबार की पाती रखकर उसकी नोक-झोंक तोलकर उसमें तलवार बिठा रहे थे। शिलेखाने अधिकारी, कारखानीस, हर काम को चौकसी से देख रहा था। क्या है क्या नहीं है, इसकी चिन्ता कर रहा था। तैयार काम की नोक-झोंक देखता, खाती देखता धार देखता, कहीं कम या दोष देखता तो नग फिर से कारीगर को लौटाता।

कुछ कारीगर पल्लेदार तलवारों को जमीन पर आड़ी रखकर, उसे मांज रहे थे। उनके दोनों ओर करकरी धूल और बिनौले के तेल के सकोरे रखे थे। फौलाद को घिसने के औजार थे। कारीगर तलवार को घिसते, उस पर करकरी धूल और बिनौले के तेल की बूंदे टपकाते और फिर घिसते।

हरएक अपने-अपने काम में मगन था। दो-तीन दर्जी मियानों की खोल बना रहे थे। उनके हाथ भरभर चलते। धागा पूरा खींचने के लिए सुई का हाथ ऊपर ऊंचा उठता। उसी झटके में फिर से सुई पिरोकर

ऊपर उठता। लगता ऊपर हवा में हजार-हजार छेद हो रहे हैं।

राजे तानाजी के साथ शिलेखाने में घुसे तो कारखानीस सामने आया बड़े ही अदब से मुजरा कर बोला, "राजे, कोयले खतम होने को हैं। "कुछ कल तक बंजारों के बैल कोयले लेकर नहीं आए तो भट्टियां ठंडी करनी होंगी।"

राजे बोले, "पन्त काका तक खबर पहुंची है क्या ?"

"जी ! उन्होंने बंजारों की खोज-खबर लेने सवार भेजे हैं।" कुछ भी हो भट्टियां बंद नहीं होंगी। लुहार और कारीगर खाली न बैठे।"

"जी !"

राजे तानाजी के साथ एक बड़े दालान में आए। वहां कोने में बड़ा-सा भालों का ढेर रखा था। पास ही कुछ कारीगर मजदूर दण्डों को कड़वा तेल लगा रहे थे। उन सुन्दर और पानीदार शस्त्रों को देखकर तानाजी का मन रोमांचित हो उठा। सहज ही बोला, "राजे, दण्ड कितने अच्छे हैं !"

"जरा उठाकर देखो।"

तानाजी ने एक भाला उठाया, उसका दण्ड जमीन पर टिकाया, और हाथ से दबाते ही वह कुछ झूल गया। उसकी वह लचक और बांकापन देखकर तानाजी खुश होकर बोला, "गांव की ओर भालों का दण्ड माने ठूंठ होता है।"

"एकदम ठस !"

"भाले का दण्ड मजबूत पर लचीला हो, जैसा यह है।"

"जरा हाथ आजमाऊं।"

"जरूर, जरूर ! पर इसी परकोटे के भीतर।"

"नहीं रहने भी दो।"

"राजे, पातीदार शस्त्र हाथ में आने हर हाथ पर काबू नहीं रहता। जरा अधिक जोर लगा और भाला परकोटे के बाहर किसीकी छाती में गपकर गया तो।"

तानाजी ने भाला वहीं रख दिया।

राजे तानाजी को लेकर भीतर के दूसरे दालान में गए।

भीतर पैर रखते ही तानाजी की आंखें चौंध गईं। उस दालान के भीतर हाथ-हाथ पर खूंटी थी, हर खूंटी पर एक-एक तलवार टंगी थी। सभी तलवारों की मियानें मखमली थीं। कपड़े पर जरी का काम किया था।

प्राय: सभी की मुट्ठियां बांकी थीं, उन पर सोने का काम किया था। कुछ मुट्ठियों पर नक्काशी थी, बेल-बूटियां थीं। कुछ पर बाघ, सिंहों के चित्र थे। एक तलवार पर देवी का चित्र था। दूसरी पर नरसिंह का था। कुछ मुट्ठियों पर अरबी में कुछ सुन्दर आयतें लिखी थीं।

उन शस्त्रों में कुछ किरचें थीं, कुछ-कुछ मत्स्य खड़ग थे। कुछ कर्नाटकी तेगें थीं। दो अति उत्तम तुर्की तलवारें थीं। दो चकाचक करते पट्टे थे। उनके आस्तीन पर चांदी का पानी चढ़ाया था। कुछ उत्तम जांबिये थे। कुछ कटारें थीं।

वहां का पहरेदार साथ में भीतर आया।

तभी राजा की नजर तानाजी की ओर उठी।

तानाजी कुछ अचरज, अविश्वास और संभ्रम में खोया-सा दिखा। राजा ने पूछा, "क्यों तानाजी, क्या हुआ ?"

"राजे, सोने की लंका में आया हूं, ऐसा लग रहा है।"

"ये शस्त्र इतने अच्छे लग रहे हैं ? हैं ना ? तो जरा हाथ में लेकर देखो।"

राजा के इशारे पर पहरेदार आगे बढ़ा। उसने एक-एक शस्त्र खूंटी से उतार कर मियान से बाहर खींचकर दिखाना शुरू किया।

एक अच्छी सी तलवार की चांदी की मूठ पर कानड़ी में कुछ लिखा था। तानाजी ने पूछा, "यह नक्काशी है ?"

"नहीं, यह हमारे वालिद का नाम है।"

कुछ चौड़े फल के खड़ग थे। उनकी चौड़ाई भी काफी थी। उनके दोनों ओर की धार ठीक मूठ तक गई थी। कुछ तलवारों का फौलाद इतना अच्छा था कि हाथ की जरा सी हरकत पर सारा पानी थरथराने लगता। कुछ तलवारों की पात पर सोने की कीलें ठुकी थीं। उन्हें गौर से देखते हुए तानाजी ने पूछा, "यह क्या है ?"

"यह, उस तलवार की करामात का इनाम है जनाब ! दस बड़े खासों को मारने पर एक कील सोने की टांकी जाती है।" बड़े ही आदर से तानाजी ने उठाकर उसे सिरमाथे लगाया। तलवारों की एक जोड़ी तानाजी को बहुत पसंद आई। दोनों हाथों में लेकर वह बोला, "राजे, जरा दो-चार हाथ चला कर देखूं ?"

"हमें खुशी ही होगी। आइए ऐसे, बाहर मैदान में आइए !" उत्साह से भरा तानाजी, चीते की चपलता से छलांगें भरता आंगन में आया।

आंगन लम्बा-चौड़ा था। नीचे फरसबंदी थी। राजे सीढ़ियों पर खड़े थे। उनके पीछे शिलेखाने के सारे ही मजदूर, कारीगर कौतुक से खड़े थे।

तानाजी ने दोनों खड़ग हाथों में लेकर, पैंतरों से काम शुरू किया।

पहले मोहरे पर तीन कदम आगे बढ़कर पूर्वस्थलांतर किया। दूसरे मोहरे पर उसी प्रकार काम किया। ऐसा पूरा चारों मोहरों का काम कर तानाजी ने आवर्तन लिए। बिजली-जैसे उसके हाथ के खड़ग चमक रहे थे। क्षणभर में भेद के साथ संडीन लेकर सामने के मोहरे पर आगे बढ़कर तानाजी ऊनचक्र कर, दूसरे मोहरे पर भेद और मार लगाकर मोहरा बदलते ऊन चक्रकर रहा था। इस प्रकार उसने पूरा चारों मोहरों का काम किया।

शिलेखाने का पुराना कारीगर राजे शाहाजी के समय का था। खुश होकर बोला, "शाबाश!"

राजा ने प्रसन्न होकर पूछा—

"जानोजी, यह काम कैसा है ?"

"बहुत ही खासा। धनी ! इसे 'हनुमन्ती पैंतरा' कहते हैं।"

"आप खेलते हैं, वही ?"

"नहीं, हमारा यही हाथ, कुछ मिलवा है। इसमें मुसलमानी और कर्नाटकी पैंतरों की मिलावट है। पर यह काम शुद्ध इधर का है।"

राजे आगे बढ़े, और बोले, "तानाजी, बहुत खूब, पर अब बस करो। आपके इस काम पर हमारे तानाजी खूब खुश हैं। आपने अभी खेला उसे ये 'हनुमन्ती पैंतरा' कह रहे हैं ?"

"यह तो मैं जानता नहीं पर इधर यही हाथ खेला जाता है।"

"जनाब ! ये खड़ग आपको बहुत पसंद आए मालूम पड़ते हैं ?"

"जी !"

"तो फिर ये दोनों ही खड़ग आपको दिए। बख्शीश नहीं, भेंट, नजर क्यों, स्वीकार है ना ?"

तानाजी राजा की ओर देखता ही रहा। क्षण भर बाद वह रोमांचित हो उठा, और उसने झट से राजा को मुजरा किया। बोला, "राजे, मैं आज बहुत खुश हूं। ऐसा शस्त्र और ऐसी उदारता ! पर मेरा एक खड़ग आपके शिलेखाने में ही रहने दीजिए और यह दूसरा आप खुद पहनाइए।"

तब तक पहरेदार ने उस खड़ग की मियान लाकर उसे व्यवस्थित कर दिया था।

राजे बोले, "जनाब ! इसका मतलब समझते हो। आजसे आप हमारे शिलेदारों के सरदार हो गए हो।"

आश्चर्य से तानाजी का मुंह खुला-का-खुला रह गया। क्षण भर बाद बोला, "एकदम सरदार !"

अठारह

खाम गांव की संकरी घाटी चढ़ते-चढ़ते उन दोनों को कुछ देर हो गयी। पहाड़ों की चोटी पर से घाम का डेरा उठने लगा था, पूरब की ओर अंधेरा छाने लगा।

राणोजी का घोड़ा ऊंचा और मजबूत था। पर पहाड़ों और दर्रों की चढ़ाई का उसे कभी वास्ता पड़ा नहीं था। वह इस चढ़ाई से थक गया था। कुछ चढ़ने पर रुकता, हांफता। राजाई का टट्टू फटाफट चढ़ रहा था। मैदानों में यही घोड़ा टट्टू को पीछे छोड़ता था। पर यहां टट्टू आगे बढ़ता और रह-रहकर घोड़े के लिए रुकता।

कार्तिक का महीना था। पहाड़ों के झरनों का पानी कुछ कम होने लगा था। जंगल की घास सिरे पर कुछ पीली-पीली होने लगी थी। दाहिनी ओर दूर गड़रियों के झोंपड़े दिख रहे थे।

इस घाटी में पहले चोरों-डाकुओं, लुटेरों का बहुत डर रहा करता था। पर कोंडाना में दादोजी का अमल शुरू हुआ, उन्होंने बन्दोबस्त किया। घाटी में चौकियां और गारद बैठे। इस बंदोबस्त में भी एक बार किसी विवाह की बारात पर डाका पड़ा था। दादोजी ने चौकियों से अच्छे-खासे सवार भेजकर गुनहगारों को पकड़कर कठोरता से उनके कान कलम किए थे। अब लुटेरे, डाकू इस ओर आने से कतराते थे।

ये दोनों ही घाट चढ़ते जा रहे थे। बीच-बीच में कुछ राही मिलते, इनके कपड़े-घोड़े देखकर उन्हें आदर से, अदब से 'राम-राम' करते, एक ओर हटकर रास्ता देते, कोई आगे बढ़कर बात भी करता।

"राम, राम। कौन गांब के ?"

"आसवली, जी।"

"याने शेलरों का गांव।"

जी ?"

"हां, इधर ही है, पहुंच ही जाओगे अंधेरा उतरते।" घाटी में चौकी थी, वहां इनकी पूछताछ हुई। मावल केसरदार भोंसला के दौलतबंदी हैं, यह सुनकर राणोजी को आराम करने को कहा गया पर अंधेरे के पहले आसवली पहुंचना था। राणोजी बोला—

"गांव पास ही है और सांझ उतरने के पहले पहुंचना जरूरी है। अच्छा चलते हैं।"

इस चौकी पर बीते कुछ दिनों से एक पागल-सा फकीर डेरा डाले पड़ा था। पास की बस्तियों से भीख मांगकर खाता, कहीं से उसे नशा-पानी का सामान भी मिल जाता, उसीके लालच से गारद के सिपाहियों ने उसे चौकी में आसरा दिया था।

यह पागल जंगल से सूखी लकड़ियां उठा लाता, चौकी पर धूनी जलती रहती। उसकी ऊटपटांग बातें सिपाहियों के मन-बहलाव का एक सासा साधन बन गया था। उसका कहना था—

"खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का और हुकम नासिर जंग का।" खुद को वह नासिर जंग कहता था, लोग उसे 'वली' कहते थे और वह था अवलिया ही।

भीख मांगते हुए वह लोगों से कहता—

"इस वली साहब की बगैर इजाजत चींटी भी घाटी से गुजर सकती नहीं।"

चौकी की पूछताछ हो जाने पर प्रायः यह कहता, "हां, हां, अब जाओ, वली की इजाजत है।"

राणोजी और राजाई—दोनों के घोड़े चौकी से निकलकर कुछ आगे बढ़े ही थे कि वली चिल्ला उठा—'ए, बेमुरौवत, वली साहब की बगैर इजाजत उस हुस्न को लेकर कहां जा रहा है? रुक!'

राणोजी उर्दू जानता था। राजाई को हुस्न कहते ही उनका माथा ठनका। वह रुका, आंखें लालकर लौटा व पहरेदार से पूछा, "यह कौन है?"

पहरेदार ने अदब से कहा, "हुजूर, पगला है। बकता है, आप जाइए।"

कोई और समय होता तो राणोजी उसकी पूरी चौकसी करता। पर आज उसे गांव की ओर जाने की जल्दी थी, उसने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया।

जंगल बहुत ही घना हो रहा था। दादोजी ने इधर इन रास्तों का जंगल तुड़वाकर सफा किया था। फिर भी यदाकदा कुछ झाड़-झंखाड़ बढ़ा जाते थे। दोनों ओर से घने अंधेरे में कहीं-कहीं सियार, इक्का-दुक्का जरख या भेड़ियों के निकलने की आहट मिलती। एकाध बन्दर भी दिख जाता।

घाटी के ऊपर पहुंचते ही राणोजी कुछ रुका। उसे लग रहा था कि यह स्थान वही है जिसकी कहानी उसने मां से सुनी थी। भरे-भरे स्वर से उसने राजाई से कहा—

"सुना तूने?"

"जी?"

"जीवन भी क्या होता है! मेरा बोझ पेट में लेकर मेरी मां इसी रास्ते

भागती बचती गई थी। क्या हुआ होगा! उसने यह सब कैसे सहा होगा! आज मैं उसी रास्ते से अपने उसी गांव को, दौलतबंदी बनकर इस सलोनी को लेकर जा रहा हूं।" उंसास भरकर राजाई बोली—

"ईश्वर की लीला हम आदमी क्या समझें!"

दोनों ही उस स्थान पर क्षण भर रुके। उनकी आंखें कुछ गीली हो रही थीं।

क्षण भर बाद राणोजी ने घोड़ा आगे बढ़ाया। उतार पर एक गदराए हर्र के पेड़ के नीचे आसवली के कुछ आदमी बैठे थे। वे जंगल में लकड़ी बटोरने आए थे। बोझ लेकर लौटते हुए पास की झाड़ी में से बाघ ने उनपर दांव लगाया था। उन्होंने पत्थरों-लाठियों से बाघ को बरका दिया था। पर उसके फिर से आने का डर तो था ही, इसीलिए वे यहां बैठे थे। उन्होंने इन दोनों को आवाज दी। कहा, "जरा जल्दी-जल्दी उतरो जी!"

राणोजी ने पूछा, "क्यों? क्या बात है?"

"जी, इधर-इधर झाड़ी में बाघ छिपा है। उसके पुट्ठे पर इस फरसे का हाथ पड़ा है। तब जाकर हमारा पीछा छोड़कर भागा। घोड़ों की आहट सुनकर फिर से दांव लगा सकता है।"

"यह सब हुआ कब?"

"अभी-अभी।"

"कहां?"

"वहां, दूर सूखा नाला-सा दिख रहा है वहीं।"

राणोजी के कपड़े, उसका घोड़ा, हाथ में चांदी के कड़े, राजाई की बढ़िया साड़ी, यह सब देखकर सभी लोग उसे घेरकर खड़े गए। 'राम-राम' की लेन-देन हुई।

एक ने पूछा—"पाहुने का गांव कौन-सा?"

"हमारा गांव वह सामने रहा, सब लोग किस गांव के?"

"हम सभी आसवली के हैं।"

चकित होकर राणोजी ने पूछा, "तुम किसके पूत हो?"

"मैं शेलार हूं, ये सभी शेलार ही हैं।"

अब राणोजी खुद को रोक नहीं सका। वह घोड़े से कूद पड़ा। उस आदमी का हाथ प्रेम से हाथ में लेकर बोला, "भाई, मैं भी आसवली का ही हूं। आज तक कभी गांव आया नहीं। पर कभी मेरा बाप आसवली का देशमुख था।"

उसमें एक अधेड़ था बोला, "तो क्या तुम सुलतानजी के पूत हो?"

"जी! मुझे राणोजी कहते हैं।"

सभी चकित होकर राणोजी को उसके ठाट को देख रहे थे। राजाई जरा हटकर यह सब कौतुक देख रही थी। उसने सिर पर साड़ी का पल्लू कुछ खींच लिया था, अधेड़ पुरुष ने अब राणोजी को कुछ-कुछ पहचाना था। बोला, "तुम व्यक्ति मावल के सरदार के साथ···"

"हां जी। मैं उनका दौलतबंदी हूं।"

उसने अब जरा अदब से राणोजी को 'राम-राम' किया। बोला, "मैं आयदानजी।"

उसे देखकर सभी ने फिर से 'राम-राम' किया। अब राणोजी उन्हीं में से एक हो गया था। बोला, "आज जंगल में ऐसा क्या काम था जी?"

आयदानजी खुश होकर बोला, "यह ग्येनू है, इसकी बहन का आज रिश्ता तय हो रहा है। बहुत से लोग आएंगे। ईंधन का इन्तजाम करने के लिए जंगल में आए थे। आपकी भेंट यहीं हुई, यह अच्छा हुआ। बहुत दिनों के बाद आज गांव आ रहे हो, अब रहो दस-पन्द्रह दिन, पूरे इलाके के नाते-रिश्ते के लोग आएंगे। पुराने रिश्ते उजले होंगे। जान-पहचान होगी। आनन्द आएगा।"

अब तक एक जो राजा की ओर अचरज से देख रहा था, बोला, "ये कौन? घरवाली!"

आयदानजी ने उसे डपटकर कहा, "अरे बच्चे, इतना भी समझ नहीं पाया, पूछना ही पड़ा?"

"चलो आज घोड़े पर बैठो, घोड़ा बढ़िया है।"

एक बोला, "हां, है तो बढ़िया। इस ओर ऐसा जानवर कहां?"

दूसरा बोला, "जी? यह जानवर खुद का है या मांगे का। सुना है उधर उधार भी मिलते हैं।"

पूछने वाले की पीठ में फरसे का डण्डा ठूंसते हुए दूसरे ने कहा।

"ए पण्डित ! किससे क्या बोलें यह कुछ समझते भी हो ?"

पीठ सहलाते हुए वह बोला, "अरे, किसी गैर को पूछा है क्या ? घर के ही तो हैं। पूछा तो क्या हुआ !"

हँसते हुए राणोजी ने कहा, "पूछने भी दो, क्या हुआ ? उसे मालूम नहीं है, इसलिए पूछ रहा है। चलो, यह भी अच्छा हुआ, आप लोग मिल गए।"

आयदानजी राणोजी को घोड़े पर चढ़ने के लिए हाथ दे ही रहा था कि राणोजी कूदकर घोड़े पर सवार हो गया था। सभी उसकी फुर्ती पर आश्चर्य कर रहे थे ? इतने में आयदानजी ने खड़े लोगों की ओर देखकर आवाज दी—

"ए गैनी, खण्डू, जरा दौड़ो। आगे जाकर गांव को खबर दो कि सुलतान जी का पूत राणोजी शेलार घरवाली के साथ आ रहा है, दौड़ो, जाओ, चलो।"

लकड़ी का बोझ सिर पर रखकर वे दोनों से आगे बढ़ गए।

राणोजी के साथ बातें करते बाकी लोग धीरे-धीरे चल रहे थे। आयदानजी ने पूछा, "बीते महीने आपके जागीरदार कोंढणनपुर आए थे।"

"तुम कैसे जानते हो ?"

"अपने गांव के दो-चार व्यक्ति यात्रा को गए थे। वे बता रहे थे, वहां बहुत झगड़ा हुआ !"

"झगड़ा !"

"यानी अमलदान खेल बिगाड़ने आया था, उसे भगा दिया तो ठीक हुआ या नहीं ?" एकदम आयदान जी बोला—

"बुरा क्यों ? जो हुआ सो ठीक हुआ। ये लोग बहुत चढ़ गए हैं। ऐसा कोई सेर को सवा सेर मिलना ही चाहिए था।" राणोजी ने सोचा 'शुरुआत तो अच्छी हुई। एक तो मिला इस काम को अच्छा कहने वाला।'

अपने आसवली गांव का, एकाएक टूटे-बिखरे देशमुख के घर का पूत, कर्दातमावल के जागीरदार के हुजूर में रहता है, वहां वह अमलदार हुआ है, यह एक बात ही अचरज भरी थी।

गांव के बड़े बूढ़े तक समझते थे कि सुलतान जी देशमुख का घर डूब गया। उसके घर का दिया बुझ घया। किन्तु आज उसी घर का पूत, टिमटिमाती बाती का दिया ही नहीं, घर और गांव को उजागर करने वाला कुलदीपक बना है, एक अमलदार बना है, यह बात भी पूरे गांव के लिए गौरव की और शान की थी।

यही सोचते हुए, आनन्द से भरे, वे लोग आगे बढ़कर खबर देने जब गांव में पहुंचे, तब उनकी दृष्टि में वह दौलतबंदी नहीं रहा था। कोई उसे कुछ कहता, कोई उसे कुछ और ही बताता। कोई उसे शिलेदार कहता, दूसरा उसे थानेदार बताता। तीसरा उसे मुजूमदार कह देता। बहुत कुरेदकर पूछने पर मुंह बिचकाकर, कंधे उचकाकर कहते—"है तो कुछ ऐसा ही। पर है देशमुख का पूत ही। और वह है भी बड़ा अमलदार, इतना सही है।"

वह बड़ा अमलदार है। इस बड़े अधिकारी का यहां इधर आने का मकसद क्या है? इसी पर वहां बातें होने लगीं। कुछ खुराफाती थे उनके मन में डर जगने लगा।

कोंढणपुर में हुई बारदात को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया था। उसे सुनकर कुछ बड़े बूढ़े कहते—"जो हुआ, ठीक नहीं हुआ। कुछ भी हुआ तो भी वह आदिलशाही राजसत्ता है। किसी दिन फौज बढ़कर आएगी और सारे पच्चीसों गांवों की राखकर लौट जाएगी। खुराफातियों को पकड़-पकड़कर सुभान मंगल ले जाएगी। वहां के आदबखाने का यश, जो सभी के कानों तक है, कुछ बढ़िया नहीं है। वहां कैदियों के साथ जो बीतती है उनकी कथाओं से ही सुननेवालों को पसीना छूटता है।"

"वे बादशाह हैं, उनसे क्या झगड़ा? कभी पखेरू भी गरुड़ बना है। सूरज की ओर आंखें फाड़कर देखने से क्या? आंखें ही तो बुझ जाएंगी। वे दयावन्त हैं, खाविन्द हैं, कृपालु हैं। उनकी आज्ञा सिरमाथे कर काम चलाना है, जीवन जीना है, यही ठीक है। यही और इसीमें सुख है। वे क्या हथियार चलाने को मना करते हैं? लड़ाई का बांका समय आने पर थाली पर से उठकर, पकड़कर ले ही तो जाते हैं। पर उन कृपालु खाविन्द को बिना पूछे,—अखाड़ेबाजी करना, बचकाना खिलबाड़ है। उसी दिन,

कोंढणपुर में जो कुछ हुआ वह निरा पागलपन था, निरी मूर्खता थी। उस जागीरदार के सपूत का ठीक है ? वह ठहरा जागीरदार। उसपर आंख उठाने की किसकी बिसात ! पर बाकी ये सब 'मिट्टी के माधो' हलधर ! उनकी ललाट की रेखा कौन बनाने आएगा ! अकारथ ही मरेंगे बेटे ! खुद तो डूबेंगे तो डूबेंगे ही, साथ में भरे-पूरे इस पूरे देश को भी ले डूबेंगे।"

उस जागीरदार का यह अमलदार। अब इस दूर के गांव में क्यों आ रहा है ? सारे गांव में कुछ बड़े बूढ़े, यह सोचकर, सावजी देशमुख की चौपाल पर आए। इन दिनों सावजी दमे से परेशान था। खुल-खुल्ल करते बेहाल हो रहा था। उमर भी साठ के पार हो चली थी, कयूमखान से खरीदी देशमुखी को घर बैठे चला रहा था, भोग रहा था।

जलते छोटे चिराग के तले उकड़ू बैठा; सावजी हांफ रहा था। दुखता सिर दोनों हाथों में थामें बीच-बीच में खांस रहा था।

गमनाजी बोला, "राम-राम जी, देशमुख ! सुना, आपने ?

हवा में मच्छर उड़ाते हुए देशमुख सावजी बोला—

"फिर, आगे क्या ?"

"हां, हां जी सुना।"

"क्या पता, असल है या बनावटी है।"

"ठीक है जी, पर मानो कि सही ही हो तो ?"

इसपर सावजी के पास उत्तर तो था नहीं। तब वह चिढ़कर बोला, "देखो जी, मैं यहां का देशमुख हूं, मुझे पूछे बगैर···।"

"क्या ?—खैर, छोड़ो। पर, अभी सगुन के समय कुनबे के साथी लोग आएंगे। सभी को बीता झगड़ा याद है। कोई कह भी सकता है कि आज तुम घर के झगड़े के कारण उसके सामने आ डटे हो।"

"देखा जाएगा जी !"

"एक बात शायद तुम भूल रहे हो, देशमुख ?"

"कौनसी जी ?,"

"वह अब बच्चा नहीं हैं और अकेला नहीं है।,"

"अब सावजी जरा तेज होकर बोला, "आ रहा है ! आ रहा है !! आने भी दो। अभी कहीं दिन में सूरज डूबा नहीं है।"

"यह सही है, पर फिर···।"

"और सभी दक्षिण में सभी ओर मुगलशाही राज नहीं है। अभी यहां आदिलशाही है। कयूम खान बैठे हैं बिझर में।"

"और सुभान मंगल में अमीन साहब भी तो हैं!"

"हां भई, वैसे तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। पर सोचा 'जरा पूछ ही लें।' 'राम-राम जी,' कहकर गमनाजी गया और सावजी के मन में चुभन चुभा गया। अब वही आग धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

राणोजी इधर आया था। कुछ जोड़ने, कुछ सहारा लेने, कुछ जगाने। उसे घात लगाकर कुछ हथियाना था तो केवल तोरणा किला। उसे आसवली की देशमुखी का टुकड़ा लेने की कामना नहीं थी। और न ही वह उसे उड़ाने यहां आया था। हां, यदि वह टुकड़ा उसकी झोली में अनायास आ टपकता तो वह उसे फेंक देता, सो भी बात नहीं थी, पर वही एकमात्र उसकी यात्रा का उद्देश्य नहीं था।

"यह अराजकता टूटे, आदमी आदमी बने, इस काली जीवट की माटी का माथा ऊंचा उठाकर चले, जीये। यह मेरा वतन है। यह अभिमान से कहे, यह भाव, यह आव, जगानी है।" यह उस जवान की यात्रा का उद्देश्य था। उस दृष्टि से देशमुखी के छोटे-बड़े टंटे-बखेड़े जैसी छोटी और ओछी बातों की ओर ध्यान देना उसे माकूल नहीं था।

राणोजी को लेकर सारे लोग जब गांव में आ पहुंचे, तब तक दिया-बत्ती हो चुकी थी। घर-घर की, कड़ुवे तेल के दिये की हिलती लौ किवाड़ों से बाहर झांक रही थी। घर की छोटी-बड़ी आंखें उसअनोखे अमलदार को देखने-परखने को अकुला रही थीं। हर घर की लक्ष्मी घूंघट ओढ़े किवाड़ों को ढांप रही थी।

इतने में गांव की गली के पत्थरों पर घोड़ों के सुमों की टप्-टप् आवाज उठी। हर घर का बूढ़ा, सारी बातें मालूम होने पर भी चौथरे पर से झुककर पूछता—"राम-राम जी, राम-राम! कौन गांव के?"

राणोजी के घोड़े को पकड़े चल रहे आयदानजी ने उत्तर दिया, "जी! हैं तो अपने ही गांव के।"

"ऐसा? तो फिर ये शैलार ही हैं? नहीं?"

"हां जी, शैलार ही तो है।"

"पर है किसका पूत ?"

"सुलतान जी देशमुख का ?"

"अरे भाई ! सच, ऐसा ही ? तब था कहां इतने दिनों तक।"

"कर्यात मावल के जागीरदार के यहां। वहीं बड़ा अमलदार है।"

"अच्छा !"

दो-चार, दो-चार घरों के बाद यह और इसी प्रकार की पूछताछ हो रही थी। हर पूछने वाला पहले हुई पूछताछ और सवाल-जवाब सुन लेता था। फिर भी मन की ललक पूरी करने की हवस के कारण खुद वे ही बातें नये सिरे से पूछकर अपना मन पक्का कर रहा था।

इनमें से एकाध यह भी पूछता—"जी, ये साथ कौन हैं जी ?"

"जी ?—ये, इनकी घरवाली हैं जी !"

"अच्छा, अमलदार की घरवाली भी साथ हैं !"

"हां भई ! क्यों ?"

"नहीं, ऐसे ही पूछा।"

राणोजी ने रात गांव के किसी मन्दिर में टिककर बिताने की बात सोची थी। उसके काम की दृष्टि से यह योजना ठीक थी। पर उसके साथ गांव में आए दूसरे शैलारों को यह बात मंजूर नहीं थी। सगुन की बात थी ग्यानू के बहनं की। वह इस कारज का कर्त्ता-धर्ता था। वह सामने आकर बोला—

"ऐसे, इस ओर आइए जी !"

"इनके टिकने की व्यवस्था कहां है ?"

"मेरे घर और कहां !"

"वाह जी, यह तो बहुत ही बढ़िया।"

"भई ! मैं गांव के बाहर मन्दिर में टिकने की बात सोच रहा हूं।"

"वाह ! भई वाह !! ऐसा भी कभी हुआ है ?"

"कभी हम आपके जागीरदार के यहां आएं तो आप भी हमें गांव का मन्दिर ही दिखाओगे ? यह नहीं चलेगा। आप ग्यानू के पाहुने हैं। उसीके घर ठहरोगे। क्यों ग्यानू ?"

"और क्या ! मेरे ही घर ठहरेंगे।"

फैसला गांववालों ने ही कर दिया था। राणोजी को उनकी बात माननी पड़ी।

रात का खाना-पीना हो जाने पर लोग अपने-अपने पिछौरा लेकर अहाते में आकर बैठने लगे। राणोजी को देखने, उससे बातें करने की इच्छा से जवान, बूढ़े, बच्चे सभी की वहां छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हुई। कोंढणपुर की यात्रा को गए रतना और सगना दोनों भी वहां आकर बैठ गए।

आयदानजी ने पूछा--"क्यों, रतन्या तुम कोंढणपुर गए थे ?"

"हां ? मैंने ही तो वहां की बातें बताई थीं।"

राणोजी ने पूछा—"क्यों जी ! हमारे राजा को देखा था ?"

"हां, देखा क्यों नहीं ! मेरे पास से ही तो उनकी घोड़ी निकली थी। भई वाह ! क्या जानवर था, मोती का दाना। गरुड़-जैसी सुन्दर नाक, पके नीबू जैसा पीला रंग। नजर ही नहीं ठहरती थी।

"ए, तूने राजा को देखा या घोड़ी को देखा ?"

"ऐसा नहीं रे, देखा दोनों को। मैं अंधा नहीं तेरे जैसा।"

"रे भाई, तुम जरा चुप भी हो ओगे ? हां तो रतन्या, आगे बताओ तो सही राजा तेरे से बोले ?"

"हां-हां, बोले भी। मेरे से नहीं, पर हम सभी से कहा।"

"क्या ? क्या कहा ? बताओ तो !"

"अरे, बोले तो बहुत, पर सभी कुछ मैं याद नहीं रख सका।"

"तब भी तो बताओ।"

"कह रहे थे—यह देश हमारा है। हम यहां अपने हाथों जमीन जोतेंगे, फसल काटेंगे, खाएंगे। अपने इन मन्दिरों में भजन करेंगे, गाएंगे। इन देवताओं के मेले भरेंगे। हाट लगेंगे। ये आदिलशाही के अमलदार हमें रोकने वाले कौन होते हैं ? इनका यहां क्या काम ? ऐसा ही बहुत कुछ बोलते रहे।"

"शाबाश रे ! तुमने तो बहुत कुछ याद रखा।"

"तो मैं क्या निरा बुद्धू हूं ? भई, जो बातें सही थीं याद रहीं, इधर-उधर की होतीं तो भूल ही जाता। तुम ही बताओ ये बातें सब झूठ हैं

क्या ?"

"नहीं जी, सब सही हैं, झूठ क्यों ?"

इस चर्चा से राणोजी मन में खुश हो रहा था। वह जिस समाज-जागरण के काम को लेकर आया था—वह काम तो वहीं के कुछ उत्साही युवकों ने शुरू भी कर दिया था। वह सोचने लगा—'इन पीड़ित शोषित गरीब लोगों में उठाव करने के लिए बीजबोना कुछ कठिन काम नहीं है।'

इसी दृष्टि से उसने उन लोगों से बातचीत शुरू की। सभी शैलार कुनबे के थे। कोई नाती थे, कोई चचेरे भाई थे, कोई भतीजे थे दूर के। यह रिश्ता वट की जड़ों का-सा फैला था और शैलार के कुनबे का ही बड़ा सा गांव बन गया था।

वहीं सावजी शैलार आज बहुत दिनों से देशमुख का अधिकार भोग रहा था। पर उसने यह देशमुखी बेईमानी से हथियाई थी। इसीलिए गांव के लोगों को उसका रौब, मान-सम्मान मन में खटका करता था। इसी कारण कुछ शैलारों ने राणोजी के सामने गांव की देशमुखी के वतन की बात चला दी। पर राणोजी ने इस चर्चा को जानबूझकर टाल दिया।

वह उनके घरों की, व्यवसायों की, खेती-बाड़ी की पूछ रहा था।

प्रायः सभी परेशान थे, पीड़ित थे। कंगाल थे। पहाड़ों की ढाल पर बसा यह गांव। खेतों के नाम पर सीढ़ीनुमा कुछ छोटे-छोटे खेत बनाये गये थे। बरसात में उसमें पानी रोककर कुछ थोड़ी सी खेती होती थी। उसमें भी जंगल के छोटे से जानवरों का उत्पात। अरनें, सूअर, कभी तरख, कभी भेड़िये। कभी-कभी बाघ-तेंदुएं भी आते। इन जानवरों की छोटी-बड़ी मार से गांव में कोई-न-कोई खटिया पर पड़ा ही रहता था। कभी-कभी परेशान होकर गांव के दस-बीस लोग लाठियां, तलवारें, भाले लेकर जंगल में घुसते और जानवरों को मारते। उनके डर से दस-बीस दिन तक इनका ऊधम शान्त होता। परन्तु फिर जैसा-का-तैसा ऊधम शुरू हो जाता।

यह खेती भी क्या थी ! साल भर ढोरों की तरह खपने पर तीन-चार माह के लायक मोटा चावल, सवां जैसा साधारण अनाज होता था।

इसके लिए मेहनत पहाड़-सी करनी पड़ती थी। इसमें भी ढोरों के रोग होते। चलता काम रुकता। साथ ही खेती वरुण राजा की कृपा पर।

उसने आंखें फेरीं कि गांवों की आंखें बंद होने की नौबत आ जाती।

खलिहान में अनाज आने पर भी वह घरों तक पहुंचेगा ही इसका भी भरोसा नहीं। इसपर गांव के स्यावड़ी लेने वालों का पहला हक। भिखारी अलग। फकीर उससे भी बढ़कर। न दो तो आंखें दिखाते। ये गांव के दामाद, कब क्या करें ? खाना खराब करेंगे, यह धोंसे ?

इन सभी से गांवों के लोग कभी-कभी इतने तंग आते कि सोचते घर-बार इन भिखारियों को, मांगने वालों को, फकीरों को सम्हाल दें और उनका खप्पर हाथ में लेकर भीख मांगने निकल पड़ें।

इन पहाड़ों के वे घर ! घर कहते हैं इसलिए घर थे। आंधी का एक झपट्टा आया कि घर का छप्पर उड़ता-उड़ता हवा से बातें करने लगता। तीन पत्थरों का चूल्हा लेकर आकाश की छत के नीचे बैठना पड़ता।

इन सभी से हिम्मत से निबट भी लें तो लुटेरों के हाथ पड़ते। इनको कुछ भी मिले, चल जाता था। पुरानी गुदड़ी, टूटी खटिया, टूटी डलिया सवां-कोदों। कुछ भी हो, वे उठाकर ले जाते।

दीवानी कचहरियों से बैठे-बिठाये बेगार का बुलावा कब आएगा और वह बेगार भी कितने दिनों तक चलेगी, कुछ हिसाब नहीं। इस प्रकार इन गांवों के लोग, बीता दिन अपना कल क्या होगा की चिन्ता मन में लेकर जैसे-तैसे जी रहे थे। इस कंगाली और फजीहत की सारी हुमस ऐसी भरी थी कि राणोजी के छूते ही जहां-तहां से फूट पड़ी।

"कहां की खेती जी !"

"ऐसा क्यों, क्या यहां खेती नहीं होती ?"

"खेती तो होती है, पर पहाड़ी देश में, आंधी-बंवडर के कारण धूल अधिक, गाड़ी-गाड़ी भुस उड़ाओ तब कहीं पसेंरी, दस पसेंरी अनाज हाथ में आता है।"

"इसीसे हारकर हमने तो खेती करना ही छोड़ दिया।"

"तब घर-बार कैसा चलता है भाई ?"

"करते हैं कुछ-न-कुछ। चल ही जाता है। अपना कुनबा ही कितना है ?"

खेती की बात छोड़कर राणोजी ने विषय बदलकर पूछा—

"क्यों भई, तुम लोगों के घरों में हथियार हैं ?"

"हैं क्यों नहीं ? घर-घर में हैं । हर बच्चा तलवार चलाना जानता है ।"

"भाला, चलाना भी जानता है ?"

"हां, हां ।"

"दीवानी कचहरी से बुलावा आने पर लड़ने तो जाना ही पड़ता है। न चाहने पर भी । क्या करें ? उनके राज में जो रहते हैं ।"

"यह सब दरिद्दर और अस्मानी सुलतानी की परेशानी से छुटकारे की युगत है। सुनो तो बताऊं ?"

यह सुनते ही भीड़ मारे उत्सुकता से राणोजी के पास-पास घिर आई। उनमें छोटे बच्चे भी थे, उन्हें डांटकर भगा दिया। पर वे महा नटखट। जरा हिले-डुले और फिर से पालथी मारकर जम गए। राणोजी ने एक-बार उनकी ओर देखकर, जरा साहस कर, उन्हें विश्वास देकर कहना शुरू किया। बोला—

"मेरे भाइयो—मैं भी तुम्हीं लोगों के कुनबे का हूं। मेरा भी यही गांव, कबीला है। यह बात दूसरी है कि इस गांव में आज मेरा घर नहीं···।"

एकाएक चार-छह बोले—

"अजी, छप्पर और भीतों के ढह जाने से कहीं घर टूटता है ? यह इतना बड़ा घर जो यहां है ! वह किसका है ? तुम यहां के देशमुख हो !"

राणोजी ने बात फिर घूमती देखकर इस बात को वहीं तोड़ दिया, बोला—

"हां तो, मैं कह रहा था कि मैंने राजा भोंसला की चाकरी धर ली। वह राजा क्या पराया है ? नहीं, अपने ही देश का, अपनी ही माटी का, अपने रक्त का, माया का है। वह कोई पीरजादा, बादशाह खुदावन्त नहीं है ।

" यह बात पते की कही । सही ही तो है। मैंने देखा है उसे । ऐसी मूरत कि सोने से मढ़ी हो । क्या बोलना, क्या बरतना, उमर है जरा सी । पर आब, रौब, खानदानी है। उसमें बड़प्पन है।'

"भई, यह ऐसा ही होता है। होनहार विरवान। वह कोई कहीं उठा, कहीं पड़ा, ऐसा नहीं है।

"यह चाकरी भी क्या! हमेशा राजा के साथ रहना। आड़ा वक्त आने पर आगे बढ़कर, सिर भी चढ़ाने की तैयारी से तलवार हमेशा मियान के बाहर तैयार।

"मेरे भाइयों, यह यमराज के घर का बुलावा कभी टला है। कभी-न-कभी जाना ही है।

"अपने प्राणों की चिन्ता न करो। वह राजा हमारे प्राणों को जी-जान से चाहता है। चिन्ता करता है। ठीक ही तो है?

"जांघों के नीचे घोड़ा, पैरों में करकराती जूती, करामातों पर बक्षीशी तोड़ा, कभी बाजू में कड़ा, पहरने के लिए बढ़िया कपड़े।"

राणोजी का यह बोलना काम कर रहा था, उसकी बातों पर अविश्वास या संदेह करने की जरा भी गुंजाइश नहीं थी। तभी एक ने पूछ ही लिया—

"क्यों जी, तब हमें यह आसवली गांव छोड़ना पड़ेगा? जहां तुम रहते हो वहां आना पड़ेगा?" यह उसका पूछना क्या हुआ, सभी ने उस पगले को कहा, "मेरे बड़े भाई, नहीं, नहीं। तुम यहीं पालथी मारकर बैठो, जागीरदारी के घर से घोड़े पर से तुम्हारे लिए शिलेदारी के कपड़े, तलवार आएंगी, वे तुम्हें चढ़ाए जाएंगे—तुम गोबर गणेश! तुम्हें जरा भी हिलने नही देंगे। तुम्हारी यहीं स्थापना की जाएगी।"

राणोजी ने बात आगे बढ़ाते हुए उसे उस भीड़ के भरे-पूरे हमले से बचा लिया।

आगे बोले—

"मेरे भाई, दीवान की कचहरी से बुलवा आने पर लड़ने जाना पड़ता है कि नहीं?"

"क्यों नहीं, जाना ही पड़ता है।"

"घर कहीं खाली बैठकर चूल्हा तो जलता नहीं, खैर।"

अब राणोजी ने जवानों की ओर बढ़कर पूछा—"क्यों रे, गांव में, कहीं अखाड़ा है?"

"नहीं जी, अखाड़ा कहां का ! गांव के मंदिर पर ही डंड-बैठक लगाते हैं और जोड़ करके खाएं क्या ! हवा ? न दूध है न घी है।"

राणोजी, समझाते हुए बोले—

"देखो जी, मामूली अपनी आब-रौब रखने के लिए दूध-घी की जरूरत नहीं होती। पांच-पचास डंड-बैठक निकालनी चाहिएं, घड़ी-दो-घड़ी तलवार के हाथ निकालने चाहिएं। आड़े समय पर यही मेहनत काम देगी। क्या समय पर कहोगे, "ठहरो, जरा गरम हो लो।"

"हट, ऐसा भी कभी हुआ है ?"

"तब ? अच्छा छोड़ो इसे।"

"घर-घर, घोड़े हैं ?"

"हैं क्यों नहीं !"

एक बोला—"कहां के घोड़े ? चार पैर, एक पूंछ है। चल-फिर लेते हैं। कभी-कभी लात झाड़ लेते हैं' बस।"

"क्यों ? क्या हुआ उनको ?"

"होना क्या ? अजी है क्या खाने को ?"

"हड्डियों के रेंगते ढांचे हैं ? मारो तो कहीं चार डग रेंगते हैं।"

"सिपाही के लिए उसका घोड़ा, उसके दूसरे प्राण होते हैं। तुम लोग भी क्या हो ? उन्हें कुछ गुड़दाना, मसालादाना···।"

"सरदार ! यह गांव है ? यहां कहां का गुड़, कहां का दाना ! सुबह खूंटों से खोल दिए, दिन भर जंगल में चरते हैं। जानवरों ने घास नहीं लगाई तो रात को घर आने पर बांध देते हैं।"

"नहीं, यह ठीक नहीं, हम जो खाते हैं उनमें से ही थोड़ा दाना उसे भी देना चाहिए। उसकी पीठ पर चार हाथ खरारे करने चाहिए।"

"इतनी सी सेवा से भी तुम्हारे हड्डियों के ढांचे, काम लायक घोड़े हो सकते हैं।"

"अच्छा ! हथियार तो ठीक हैं।"

आयदानजी बोला—

"हैं, पर वे क्या हथियार हैं ?"

"उनपर कभी तेल नहीं, कभी पानी नहीं, उनकी वही गत है। वही

दुर्दशा है। अजी, दसियों बार चलाने पर भी शूर्पनखां की नाक पर भी खरोंच नहीं आएगी।"

अब राणोजी की आवाज में तीखापन आया, बोला—

"अरे, मेरे भाइयो! सपूतो! यह क्या है? सिपाही, बिन हथियार का! माने बिना सिंदूर और मांग की सुहागिन।"

सभी सिर हिलाकर बोल उठे—"ठीक, ठीक ही तो है!"

"ठीक है, कहने भर से क्या लाभ?"

"कल ही जिसके जो हथियार है बाहर निकालो, उसपर कड़ुए तेल का हाथ फेरो, उसका पानी चमकाओ।"

"यह सब तैयारी कर रखो। मैं फिर कर आऊंगा, तब यहां से पांच-पचास जवान राजा के पास ले जाऊंगा।"

"क्यों जी, केवल जवानों, पट्ठों को ही?"

"हम महतारे नहीं?"

एक चिल्लाकर उससे बोला, "ए बुढ़ऊ! तू वहां जाकर क्या शादी करेगा कि वहां पुआ और खीर खाएगा?"

राणोजी ने तुरंत उसे टोका—

"ऐ बुढ़ऊ! क्यों, जिसका मन बूढ़ा हो गया है, कलाई मजबूत है, छाती लौह है, वह ढली उमर का होने पर भी जवान ही कहलाएगा।"

"और जिसकी उमर तो है पच्चीस पर छाती रही कच्ची। वह क्या? खेतों का बिजुका!"

सभी खुश होकर बोले, "हां हां, सही ही तो है।"

"हां, जी, हां। बात पक्की।"

"कसम उठाई?"

"हां कसम।"

इतने में रुस्तमा बोला, "क्यों रे भई, मैंने तोरना किले के कारखानीस से स्याही ले रखी है उसका क्या होगा?"

"क्या? तोरना का क्या हुआ?" राणोजी ने सजग होकर पूछा।

"अजी, यह किला नहीं है। तोरना?"

"हां है, पर उसका अभी क्या?"

"कुछ नहीं, उसके तटों की मरम्मत जो होनी है। कारखानीस ने बिगार की बात कही। बोला—"पांच-पचास लोग पत्थर ढोने के लिए चाहिए।"

"हां, चाहिए। तो फिर ? बिगार ही ना ? नहीं, बिगार नहीं पर मैंने स्याही ले ली है।" राणोजी मन में खुश हो रहा था।

बोला, "भई यह काम कित्ते दिन चलेगा ? उसका क्या ! दो दिन चलेगा। नहीं तो दो महीने, चार महीने तक चल भी सकता है।"

"कारीगर कहां के हैं ?"

"उधर ही के हैं दख्खिन के कानड़ी।"

"यह भीत कित्ती चौड़ी है रे !"

"क्या बताऊं ? तुम इस काम को कुछ जानते हो ?"

अब राणोजी ने अपनी बात जमा देने की गरज से कह दिया—

"हां भई, जानता हूं, उधर पूना में।"

"लाल-महल बना, तब मैं ही तो सब काम देखता था।"

खुश होकर रुस्तम बोला, "यह खूब रही, बड़ी खुशी की बात हुई।"

"तब चलो मेरे साथ कल। वहां काम में कुछ ऊंच-नीच हो, कम-ज्यादा हो, तो बता भी देना, अच्छा होगा।"

"यह सब ठीक है भई पर वहां जाने कौन देगा ?"

"अजी, मैं जो रहूंगा साथ। और खुद कारखाने वाले का बुलावा जो है।"

राणोजी ने अपनी सजगता जरा बुझा कर, ऊपरी मन से कहा, "खैर, देखा जायगा।"

धीरे-धीरे लोग उठने लगे और यह बैठक ऊंघने लगी।

उन्नीस

दिन निकलते ही राणोजी रुस्तम के साथ तोरणा किले की तलहटी में पहुंचा। धीरे-धीरे किले के पास पहुंचकर चढ़ना शुरू किया।

बड़ी चौकस और सतर्क दृष्टि से राणोजी सारे प्रदेश को निरख रहा

था। उसकी इच्छा अनायास साकार हो रही थी। आसपास के पहाड़ों के ओर-छोर के हाथी की सूंड-जैसे उतरते ढाल, घाटियां, संकरे दर्रे, वादियां सारा-का-सारा दृश्य उसके मन में चित्र-सा उतर रहा था। उसने इस किले को, इसके आंचल के प्रदेश को, कभी इतने पास से देखा नहीं था। उन चट्टानों से बने विशाल चौथरे पर, डण्ड फटकारते खड़े किसी पहलवान-सा वह किला, उस विशाल पहाड़ पर अविचल खड़ा था। राणोजी उसकी उस शान को कौतुक, विस्मय, और अभिमान से भर-भरकर आत्मीयता से देख रहा था। उसने किले बहुत से देखे थे। शिवनेरी का किला देखा था। माहुली के किले पर भी वह रहा था। माहुली के ऊंचे-ऊंचे और सीधे उतरते किले देखकर वह रोमांचित हो उठा था। शिवनेरी के किले से माहुली के किले की मजबूती, ऊंचाई, दुर्गमता सभी बढ़-चढ़कर हैं। यह वह जानता था।

पर तोरणा के किले की विशालता और मजबूती कुछ और ही थी। लगता था वह आकाश को ही थामे खड़ा है। उसके सिर पर शरद्कालीन मेघ मंडरा रहे थे। शुभ्रमेघ श्वेत पगड़ी-जैसे शोभा दे रहे थे। किले के चारों ओर की पहाड़ी के पत्थर तराश-तराशकर सीधे कर दिए गए थे। दर्रों में पाताल तक उस पहाड़ी के पैर टिके थे। ऊंचे-ऊंचे वृक्षों से घाटियां भरी थीं, उनमें अटका रात का अंधेरा अभी भी सिमटा जा रहा था। उनमें अभी-अभी उगे सूरज की पैनी तीखी किरण घुसकर उस उनीदें अंधेरे को फटकार लगाकर निकाल रहा था खेड़ा की ओर के ढाल-से चढ़ते रुस्तम और राणोजी को देखकर चौकी के पहरेदार ने ललकारकर आवाज दी—

"क्यों जी, इधर किधर आ निकले हो ?"

"किले पर! "

"किले पर ? क्या काम निकाला है ?"

"कारखानसी जी को मिलना है।"

"किस गांव के हो ?"

"पहचाना नहीं ? हम आसवली गांव के हैं।"

"हां, हां भई, तुम तो वहीं के हो। तुमको तो पहचानाता हूं। पर यह

साथ वाला कौन है ?"

"अच्छा, अच्छा। ये ? अरे वाह ! ये तो आसवली गांव के देशमुख हैं। जुन्नर, पूना, चाकन, उधर-इधर इन्होंने बड़े-बड़े काम उठाए हैं। खड़े किए हैं। बड़े हकीम हैं, उधर, ऊपर तटबंदी का काम हो रहा है, उसे देखने आए हैं।"

"ऐसा है ! चलो भई, मैं भी चल रहा हूं। रोज ऊपर जाकर, हुजूर में पेश होना पड़ता है। आज देर हो गई है। चलो साथ ही चलें।"

एक साथी उनमें और बढ़ गया। चढ़ते-चढ़ते दोनों की राणोजी से झिझक कम हो गयी थी। सब एक मन के हो गए थे। राणोजी जो भी पूछता, उन सभी बातों का उत्साह से ये उत्तर दे रहे थे।

किले के द्वार का पहरेदार बोला, "भई, यह पहाड़ी भी चढ़ने के लिए बड़ी टेढ़ी है। किला भी बहुत पुराना है।"

"तुम यहां पहरेदार कब से हो ?"

"क्या बतावें ! हमारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी यहां यही काम कर रही है, मालिक बदलते रहे, हम वहीं-के-वहीं हैं। पीढ़ियों से पड़े हैं। दस-बीस पीढ़ियां तो ऐसी ही बीत गई हैं। मेरा बाबा कह रहा था—उसके जमाने में यह किला मराठों के पास था। उसके बाद निजामशाही का दौर रहा। अब यहां आदिलशाही अमल हुक्म शुरू हुआ।"

राणोजी उसे आंकते हुए कहने ही वाला था कि 'यह अमल हुक्म चुभता नहीं कहीं मन में' पर समय पर, उसने मन को रोक लिया।

पहाड़ी की चढ़ाई की पहली मंजिल पूरी हुई तो पहाड़ी की सूण्ड-सी एक ढलान पर वे चढ़ने लगे। राणोजी ने उस जगह की ऊंचाई आंकते हुए नीचे देखा तो किले के उत्तर में दूर उलबड़ी हिंगवण, सोमठाना ये खेड़ा और उनके आसपास की जमीन स्पष्ट दिख रही थी। वहीं पर मंदिर के पुराने अवशेष, टूटे कलशों के पास अपना वैभव दिखाती हुई मस्जिदें, उसकी आंखों में घुसने लगीं। उस चढ़ाई पर जैसे-जैसे वे ऊपर चढ़ने लगे, वैसे-वैसे किले की दुर्गमता शरीर को समझ में आने लगी और किले की उग्रता का आभास कुछ अधिक होने लगा।

अब ये लोग किले की चढ़ाई की दूसरी मंजिल पूरी कर चुके थे।

उन्हें ऊपर से कुछ लोग उतरते दिखाई दे रहे थे।

कभी-कभी माटी का डूह या बड़ी सी चट्टान के कारण वे लोग ओझल हो जाते थे। उनमें से एक बहुत ही सम्भल-सम्भलकर उतर रहा था। दूसरे दोनों उसके आगे बढ़कर पत्थर, झाड़-झांकड़ ठीक कर रास्ता बना रहे थे। जरा देर में वे नजर में आए। राणोजी देखते ही समझ गया कि उनमें से एक कोई अधिकारी है। यह हाकिम भी क्या था! उसको उसकी तलवार का भी भार खुल रहा था। उतरने की परेशानी के कारण उसने अपनी तलवार और जूतियां दोनों ही नौकर के हाथ में थमा दी थीं। वह हाकिम ढलान की एक चट्टान पर हूं-हां करते बैठ गया। मारे पसीने के बेहाल था। उसपर चढ़ती धूप सिर चटका रही थी। चिल्लाकर बोला, "बदजातो! हवा करोगे तो क्या हाथ टूट जाएंगे? उफ!"

एक नौकर ने पंखा निकाला और लगा जल्दी-जल्दी हवा करने। नौकर भी उसकी बेबसी और परेशानी देखकर चुपचाप हँस रहे थे। तब तक ये सभी चढ़कर उनके पास तक आ पहुंचे। पहरेदार ने खान को देखते ही उसे बंदगी कर दी। रुस्तम ने भी उसको 'राम-राम' कर दी। राणोजी मन में कुछ सोच ही रहा था कि रुस्तम ने खानसाहब की ओर देखकर जरा-सा हँसकर अब आत्मीयता जता दी।

वैसे खान उस किले का कोई हाकिम या अधिकारी नहीं था। वह था किलेदार का दूर का बिरादर। दो-चार दिन का मेहमान बनकर आया था। किलेदार कुछ जरूरी काम से सुभान मंगल गया हुआ था। वहीं से परभारे उसे जुन्नर को जाना पड़ा। उधर यह नाजुक बिरादर किले की वीरानी से कुछ ऊब गया। किले की हवा उसे माफिक नहीं लगी। अब वह हारकर उतर रहा था। वैसे वह भी कुछ मामूली नहीं था, वह सुभान-मंगल के अमीन का मसलते खिदमतगार था।

उसी रोज में वह इन तीनों की ओर जरा जोशीली आवाज से बोला, "तुम लोग कौन हो?"

"जी, मैं पहली चौकी का पहरेदार हूं। पहचाना नहीं हुजूर ने?"

"ये दूसरे दो और कौन हैं?"

"जी, ये···ये! किले की मरम्मत हो रही है, उसीके काम के लिए

आए हैं !"

"यह सब ठीक है। पर ये करते क्या हैं ? और हैं कौन ?"

ये कारीगर हैं। इनको खूब तजुर्बा है। इन्होंने बहुत सी इमारतों, किलों और तटों की भीतों के काम खुद किए हैं। तटों के इलम में तो बहुत ही माहिर हैं।"

"हां, ये मरहटे क्या जाने ! इनमें यह इलम है ही नहीं। उफ !! कैसे ये तुम्हारे किले, कैसे ये तुम्हारे घर ! लगता है सब शैतान के घर हैं। क्यों रे, तूने विजापुर की मस्जिदें और शाही महल देखें हैं ? वहीं की ईदगाह, दरगाह, देखें हैं ? वह काम काम है। तुम लोग यह काम किया जानो।"

यहां राणोजी काम निकालने आया था, मन की राजी-नाराजी यहां काम देने वाली नहीं थी। उसने मन पर जैसे-तैसे काबू कर, जरा सी मुण्डी हिलाकर ही जवाब देना ठीक समझा। न जाने मुंह खुलते ही क्या गजब ढा दे।

रौब से हुंकार भरते हुए उसने आगे कहा—

"अरे, तुम लोगों की क्या औकात ! तुम में वह मुकद्दर ही नहीं। दोजख-सा तुम्हारा मुल्क, उसी जैसा तुम्हारे घरों और इमारतों का बेढंगा ऊबड़-खाबड़ काम। उफ ! हम तो तंग आ गए। क्यों शैतान की फूंक-सी हवा ! रात-दिन उसका बहना।"

ये तीनों ही उसकी इन बातों से परेशान हो रहे थे। ऊपर जाने की जल्दी थी। यह सब देखकर खान बड़ी मेहरबानी जताते हुए बोला, "अच्छा, अच्छा ! बड़े बेताब हो रहे हो ऊपर जाने को, क्यों ? अच्छा जाओ भी।"

बिस्मिलाह !! बचे, सौ खैर।

उसके पास से धीरे-धीरे वे सभी ऊपर की और आगे बढ़ गए। चार-पांच डग चढ़ आने पर, गेट का सिपाही राणोजी से बोला—

"इनकी बातों की ओर ध्यान मत दो। ये हाकिम-बाकिम ऐसे ही बोला करते हैं।"

अब क्या था ! किलेदार के बड़े बिरादर से, बड़े हाकिम से, किला देखने की इजाजत उन्हें हासिल थी। बड़े उत्साह से वे ऊपर चढ़ रहे थे।

किले के बड़े दरवाजे के पहरेदार ने जब टोका तो राणोजी का साथी सिपाही जरा तुनककर ही बोला—

"तुमने वे बड़े बिरादर जो नीचे गए, उन्हें देखा नहीं ? उन्होंने खुद ही तो इन्हें ऊपर के काम को नापने-जोखने भेजा है। इन्होंने बड़े-बड़े काम किए हैं, देखे हैं। राणोजी वहां से इतने जल्दी निकलना नहीं चाहता था। उसे उस दरवाजे की, वहां रहने वाले पहरेदारों की, वहां के शस्त्रों की, गोला-बारूद, और मसाले की पूरी जानकारी पानी थी। उसी अन्दाज से राणोजी की निगाह चारों तरफ घूम रही थी। उसने साथी गेटदार की बांह पकड़कर कहा, "भई, तुम खुद ही इस ख़ान बहादुर को सिलसिले से बताओ।"

"ठीक हैं, ठीक हैं, अभी बताता हूं ?"

वह सिपाही चतुर था। वह उन पहरेदारों को राणोजी के काम की मजबूती वगैरा-वगैरा खूब बढ़ा-चढ़ाकर बताने में मशगूल हो गया था।

तब तक राणोजी की नजर चारों ओर खूब घूम रही थी।

किले का दरवाजा बहुत बड़ा और विशाल नहीं था, पर उसकी मजबूती अच्छी थी। सागौन की दो-दो बित्ता मोटी पाटियों के मजबूत किवाड़ थे। उनमें पैनी और मजबूत कीलें गड़ी थीं। दरवाजे के पास बना चौथरा भी उतना ही मजबूत था। दरवाजे के ठीक माथे पर बरसों पुराना गणेश जी का विग्रह खुदा था। बरसों के हवा-पानी के कारण अब उसका रूप कुछ घिस गया था।

राणोजी यह समझ रहा था कि किला बहुत पुराना है। आदिलशाही के इन नेक और वफादार किलेदारों ने इन बीते कई सालों में सतही तौर पर कुछ-कुछ मरम्मत की है। बस ! किसी नये काम को हाथ लगाया नहीं है तथा कुछ जोड़ा नहीं है। उस दरवाजे के दोनों ओर जरा नीचे, पर, आड़ से ढकी, मारने की, हेरने की जगह बनी थी। उन्हीं बुर्जों को पकड़-कर दोनों ओर उसी मजबूती से बनी ऊंची दीवार थी। वहां की उस दीवार का तट बहुत मजबूत था। पर आज उसके यहां-वहां कुछ पत्थर ढह गए थे। राणोजी देख रहा था कि यह वही दीवार है जिसकी शायद मरम्मत हो रही है।

दरवाजे के बाहर दोनों ओर पहरेदारों के लिए चौथरे बने थे। मजबूत देहली के बीचोंबीच कीर्ति-मुख बना था। बरसों से लोगों की आमदोरफ्ता से देहली का पत्थर घिस-घिसकर कुछ दब गया था। चिकना भी हुआ था। उस दरवाजे के भव्य कपाट के बाहर के बाजु में दो प्रचंड और वजनी अर्गलाएं लटक रही थीं।

देखते-देखते ही राणोजी की नजर उस तटबन्दी के सहारे दूर तक जा रही थी। दूर बाईं ओर सौ-डेढ़ सौ कदमों पर वह तट घूम गया था।

उसी ओर तट में तराश कर किए छेद-सा, एक छोटा सा दरवाजा था। उस दरवाजे से एक आदमी बाहर निकला। राणोजी की नजर उसे देखकर एकाएक चौकस हुई और वहीं ठहरी। यह देखकर पहरेदार राणोजी से बोला, "क्या देख रहे हो मियां ?"

राणोजी तुरन्त सम्भल गया, बोला, "तुम लोगों की कद्र करता हूं। क्या मजबूती है किले की ! और क्या-क्या खूबियां हैं ! आसमान टूट पड़ने पर भी कुछ-न-कुछ सहारा बना रहे, वक्त जरूरत काम दे, इसलिए छिपी सुरंगे भी बनाई हैं। समतल-चौड़े मैदानी प्रदेश के काम का क्या ! वे काम दिखाऊ बहुत होते हैं। वहां इस कारीगरी और दूरन्देशी के लिए गुजांइश ही नहीं होती। किसी बहुत ही तजुर्बेकार का ही ऐसा काम हो सकता है।

यह सब तारीफ सुनकर पहरेदार जरा खुलकर बोलने लगा। बोला, "अरे, तुम क्या जानो ! यहां ऐसे कई रास्ते हैं। यह तो सबसे दूर का है।" और जरा आवाज धीमी करके बोला, "तुम्हें ही बता रहा हूं। किसी को बताना मत। यह रास्ता सीधा ऊपर वाले किले को जाता है। किलेदार के मकान के ठीक सामने।"

राणोजी मन में उसकी मूर्खता पर हँस रहा था। बोला, "आपकी भी चौकसी काबिले तारीफ है।"

"हुजूर ने मुझे ठीक पहचाना।"

राणोजी ने झुककर उसे आदाब फरमाया।

पहरेदार अब फूल गया। बोला, "बेटे ! बताने लायक यहां बहुत सी बारीकियां हैं। खैर, तुम जा रहे हो फिर कभी।" पर हुक्का नहीं पियोगे,

अरे, लगा लो एक-दो कश।"

राणोजी ने बहुत ही अन्दाज से मना किया। बोला, "नहीं जी ! नहीं। धूप बढ़ रही है। जल्दी लौटना भी है। नहीं तो दोपहर का भोजन भी यहीं कर लेता।"

"अच्छा भई, अच्छा ! खोलो खिड़की, खोल दो।"

करकराराती हुई एक खिड़की खुली और ये सभी गरदने झुका-झुकाकर उस छोटी-सी खिड़की से भीतर उतरे। उस बड़े दरवाजे में से निकलकर ये सभी ऊपर निकले। ठीक सामने एक छोटा-सा मंदिर दिखा। उसके सामने अपना माथा टिकाते हुए पहरेदार सिपाही बोला—

"यह तोरणाई का मंदिर है। बड़ा ही जाग्रत स्थान है भई ! हर दशहरे को एक पेड़ा यहां चढ़ाना पड़ता है।"

सभी ने वहां माथा टिकाया। यहां फिर से राणोजी ने अपना काम शुरू किया। उसकी तीखी आंखें इधर-उधर घूम रही थीं। सामने ऊंचाई पर वाले किला था। उसके भीतर आठ-दस इमारतें दिख रही थीं। सुन्दर खपरैल थे। बढ़िया चूने का काम चमक रहा था। पर था वह सभी पुराना ही। यहां वहां केवल कुछ मरम्मत ही की गई दिख रही थी।

तट की पकड़कर भीतर शिवन्दी के घर थे। यह काम माटी का था। पत्थर अनगढ़ थे। ऊपर के छप्पर पुआल के बने थे। दूसरी ओर दूर लम्बाई में बना बारूद का कोठा था ठिगना, गहरी मजबूत भीतों का। उस पर चूने की गच्ची थी।

राणोजी को एक बात विशेष दिख रही थी कि इस इतने मजबूत और बड़े से किले में आदमी बहुत ही थोड़े दिख रहे थे। कहीं चलते-डिगरते इक्का-दुक्का आदमी ही दिख रहा था। तभी उसकी नजर दूर चल रहे काम तक पहुंची। वहां गुड़ की भेली पर तुर-तुर चलने वाली चींटियों-से कुछ लोग चल रहे थे। पत्थर कतार में ढो रहे थे। वहीं पांच-पच्चीस आदमी दिखाई दिए।

किले की पछाह की ओर, जहां वाले किले की हद खतम हो रही थी, वहां से सौ-डेढ़ सौ कदम पर, एक सपाट, तराशा ऊंचा-सा, पहाड़ी का एक प्रचंड शिखर-सा ऊंचा टीला खड़ा था। उसे बताते हुए पहरेदार

सिपाही बोला, "यह बुघला है इसे 'बुघला माची' भी कहते हैं।

"क्यों जी, हम जो पीछे छोड़ आए वही एक दरवाजा है या और भी कोई है ?"

"ऐसा क्यों ? और भी है ?"

"कहां है ?"

उस ओर नीचे कोंकण को उतरने के रास्तों को देखता खड़ा है।"

"उसे 'कोंकणी-दरवाजा' कहते हैं ?"

"वह भी ऐसा ही मजबूत है ?"

"जी, नहीं।"

"जरा-सा दरवाजा है। उसे घुटका दरवाजा कहते हैं। मैं हूं ही साथ। कारखानीस को मिलकर, उसके साथ दो-चार बातें कर उठेंगे। फिर घूम-फिरकर बताता हूं तुम्हें सारा किला।"

"तुमने अभी देखा ही क्या है ?"

बाले किले की चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते, दो-चार चौकस सिपाहियों ने उस पहरेदार से राणोजी के बारे में पूछा, अब तक उसने राणोजी का परिचय इतनी बार दिया था कि वह सब उसे इबारत-सा याद हो गया था। जहां भी वह चाहता, अपनी ओर से कुछ-न-कुछ बढ़ा ही लेता। राणोजी को इसकी चिन्ता भी नहीं थी। पहरेदार बता रहा था—"अजी, किलेदार के बड़े बिरादर ने नीचे से इन्हें भेजा है, ऊपर के काम पर नजर डालने।" पर यहां उसके मुंह पर लगाम लगानी होगी। नहीं तो खुद कारखानीस से बोलते हुए यह बताने में कभी नहीं करेगा कि खूद बिजापुर दरबार ने ही इसे काम को देखने भेजा है।

इसलिए यहां से आगे जो भी कुछ बताना है, वह खुद ही बताना ठीक होगा। यह सब राणोजी ने मन में सोच रखा था। बाले किला चढ़ जाने पर आदमियों का आना-जाना बढ़ गया। रुस्तम और उस पहरेदार के पीछे राणोजी कारखानीस के घर के बाहरी औसारे तक पहुंचे। पहरेदार ने रोज के मुताबिक कारखानीस की हुजूर में मुजरा किया, उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वह वहां मावलों से हुज्जत कर रहा था। दो-चार मावले वहां खड़े थे। वे छप्पर छाने के लिए कारवी के चौड़े पत्तलों के गट्ठे लाए

थे। लेन-देन पर खींचतान हो रही थी। हिसाब को देख-देखकर कारखानीस उन पर बरस रहा था।

बोला—"हिसाब कम ज्यादह क्यों कर रहे हो, झूठ बोलकर घर के छप्पर सोने से छाओगे क्या ?"

"ऐसा नहीं जी ! पर···।"

"अरे, इस बाले किले के घर कितने हैं ?"

"जो भी हों। पर जो हैं, उन सभी के लिए···।"

"कुबूल, कुबूल। पर तुम्हारे इन पत्तों के छावने पर भी बरसात का पानी तो रुका ही नहीं।"

"देखो तो, वे दोनों भीतें पानी से ढह गयी हैं।"

"हम भी क्या करें ? इस साल पानी क्या था, बादल ही फट पड़ रहे थे। धाराएं बरस रही थीं।"

"क्यों रे, इस सारे किले पर क्या इसी साल पानी बरसा है ?" अब की कारखानीस का ध्यान इन चारों की ओर बंटा। हाथ का कुरकुराता बरूं कान पर रखकर उसने पूछा, "रे, ये पाहुने कहां से ले आया है ?"

अवसर देखकर राणोजी आगे बढ़ा, मुजरा कर बोला, "जी, हम आसावली के शैलार।"

चकित होकर कारखानीस बोला—"अच्छा, इस रुस्तम को तो हम जानते हैं।"

"इससे काम के लिए आदमी दिलाने की बात पक्की हो गई है। क्यों तुम···?"

"रुस्तम"

"हां, रुस्तम ही।"

अब राणोजी की ओर देखकर, कारखानीस बोला—"अजी, तुम आसावली के हो ? कैसे ?"

"अजी, मैं इन दिनों कर्यात जागीरदार के यहां दौलतबंकी हूं। मुझे 'राणोजी' कहते हैं।"

"अरे वाह ! ऐसा है, तो ऊपर आओ जी।"

"नहीं जी, यहीं ठीक हूं।"

"यह नहीं। ऐसा भी कहीं हुआ है ! जागीरदार क्या कहेंगे कि हमारे दौलतबंकी तोरना के कारखानीस निलोजी आवजी के यहां घर डेरे पर गए और उनकी वहां खातिरदारी नहीं हुई। यह नहीं हो सकता जी !"

राणोजी ऊपर चढ़कर बैठ गया। अब कारखानीस ने पूछा—"इधर आना कैसे हुआ ?"

रुस्तम बीच में ही बोला—

"उधर पूना में बाड़ा बनवाया है। वहां इनकी ही तो नजर-चौकसी थी उस काम पर। इस किले की तटबंदी की मरम्मत होनी है तो मैंने ही इन्हें कहा कि चलो, जरा खुद ही देख लो, क्या और कैसा काम है ?"

"हां, हां, ठीक किया तुमने।"

"देखो जी ! हमारे सारे कारीगर उधर के हैं, कानड़ी। हमारी बातें उन्हें समझती नहीं, उनकी बातें हमें समझती नहीं। खुद आप जरा नजर डालोगे तो हमारा फायदा ही है। अजी, खुद वजीरे आलम का हुकुम है कि सारे किले मजबूत और पुख्ता होने चाहिए। दिल्लीश्वरों के मुगलों की चढ़ाई और भाग-दौड़ का हर समय अन्देशा रहता है। ऐसे बांके समय में इन आदिलशाही किलों का मजबूती के साथ मुस्तैदी से तैयार रहना भी जरूरी है। अच्छा ही हुआ आप आ गए। अब पहले यह फरमाइएगा कि आज पहले थाली पाइएगा या तटबंदी का काम देखिएगा। इस समय अभी हम आपका साथ दे नहीं सकेंगे, इस पर भी आपकी जैसी मर्जी। बोलिए !"

राणोजी सोच रहा था—'यदि यहां थाली में फंसे तो गाड़ी कहीं दल-दल में फंस जाएगी।' सोच-समझकर वह बोला—"नहीं जी, हमें भी जल्दी है। आपका नाम सुना था। सोचा—'भेंट हो, इसलिए 'राम-राम' करने, बंदगी करने आ गया था। अब आप भी हुकुम दें तो यहां का काम भी देख लूंगा। कुछ दायां-बायां होगा तो बता दूंगा। और कहने लायक कुछ न हुआ तो उधर-से-उधर ही नीचे उतरने की मन्शा है। दुबारा यह बाले किला चढ़ने की अब हिम्मत नहीं है।"

"यदि थाली भी हो जाती तो अच्छा होता।"

"आपकी बात क्या खाली जाने देते ? पर मजबूर हूं। वैसे हम आप

ही का तो पाते हैं। समझो कि थाली पा ही ली। अब इजाजत तो है ?" कहकर राणोजी उठा।

कारखानीस, सिपाही से बोला, "क्या नाम रे तेरा ? आपको उस तट की ओर ले जाओ, कारीगरों से मिलवा दो। किलेदार नीचे दूर थाने तक गए हैं। अभी लौटे नहीं है। नहीं तो आपकी उनसे भी भेंट करवाकर ही छोड़ता।"

राणोजी, पैर बढ़ाते हुए बोला—"है तो सही, फिर कभी। तो चलूं अब।"

बीस

तोरणा किला। किले के पूरब का भाग। इस ओर कगार के पास की तटबंदी ढह गई थी। यह कगार भी बेलाग नहीं थी। उस ओर से कोई भी मावला थोड़ी-सी सावधानी और जीवट से कगार चढ़ सकता था। उस ओर की मरम्मत करना जरूरी था। गत कुछ वर्षों से किले की तटबंदी ढह गई थी। इस वर्ष भी पानी बहुत बरसा था। तटों में जगह-जगह पानी भरता रहा। एक-दो जगह पर तटबंदी का बड़ा-सा भाग नीचे टूटकर गिर गया था।

वहीं इस समय काम चल रहा था। काम करवाने वाला मिस्त्री और कारीगर कानड़ी थे। खुली चट्टान को तोड़ा गया था। किले के ही एक ओर सुरंग लगाकर पत्थर तोड़ा गया था और उसीमें से पत्थर गढ़े जा रहे थे। कुछ मावले कहां बेगारी कर रहे थे। एक काला कानड़ी खड़े-खड़े सभी के काम की चौकसी कर रहा था। उसका कसा काला शरीर घाम में चमक रहा था। उसकी बाजुओं में चांदी का कड़ा कसा था। वह चिल्ला-चिल्लाकर कारीगरों, बेलदारों को काम की सूचनाएं दे रहा था। तभी राणोजी और साथ का मेट वहां आ पहुचे। झट उस कानड़ी को राणोजी के बारे में कुछ कहने ही वाला था, तभी राणोजी ने उसे रोका और वह स्वयं ही उससे बोला—

"मराठी बरदतनूं ?'

उसे इस प्रश्न पर वह कानड़ी ठेकेदार चकित हो उसे देखने लगा। राणोजी—माउसाहिबा और बड़े राजा साहब शाहाजी के साथ बंगलौर में रहा था। उसे कानड़ी भाषा आती थी।

कानड़ी ठेकेदार के उस आश्चर्य को और बढ़ाते हुए उसने उसे पूछा—

"येनू ?"

इस पर वह कुछ होश में आकर बोला—"स्वल्प स्वल्प बरदत।"

"निमदु हेसरू येनू ?"

"लिंगण्णा।"

राणोजी आगे बोलता रहा। उसने कहा—"मुझे रानूजी शेलार कहते हैं। पूना में लाल महल का काम चल रहा था, तब वहां मैं ही वह सब काम देखा करता था। सोचा कि यहां का भी काम देखूं—कैसा चल रहा है। इसीलिए इधर चला आया।"

इस पर हँसते हुए लिंगण्णा बोला—"यह तो अच्छा ही हुआ। देखो-देखो, मना थोड़े ही है। यह देखो दीवार सबकी-सब गिर गई है। यदि इसकी अबकी बार ठीकठाक मरम्मत नहीं हुई तो अगले वर्ष तक यह यहां रुकेगी नहीं। बातें करते-करते राणोजी लिंगण्णा के साथ तट की भीत तक गया। वहां कुछ कानड़ी पत्थर गढ़ रहे थे। उस टूटी भीत पर खड़े रहकर राणोजी की आंखें कगार को देखती हुईं ऊपर से नीचे तक पहुंची—और उसी प्रकार चढ़ती ऊपर लौटीं। इस प्रकार देखते हुए कुछ समझकर कानड़ी मिस्त्री बोला—"क्यों जनाब ! इधर से कगार चढ़ने का विचार है क्या ?"

राणोजी तुरन्त हँसकर बोला—"तुम्हारा कहना एकदम सही है। यह सारी तटबंदी खराब हो गई है। अगर अभी इसकी दुरुस्ती नहीं की गई तो अगले साल तक यह पूरी गिर जाएगी।"

इसपर कानड़ी खुश होकर बोला—"मेरा भी तो यही कहना है—किलेदार को बताया भी तो वह कहता है कि जितना गिरा है उतना ही ठीक कर दो। अब हम लोग अपने देश से इतनी दूर बार-बार तो आ नहीं सकते।"

"ठीक तो है। कोई मिला भी तो पत्थर ढोने वाला तो मिल जाएगा, पर तुम जैसा गुणी कारीगर थोड़े ही मिलने वाला है!" राणोजी की इस बात पर लिंगण्णा खुश था। वह गालियां ही आए दिन सुनता रहा था। उसे इस प्रकार की बातें सुनने की आदत नहीं थी। वह राणोजी को पूरा तट घुमा रहा था। उसने वहां की सारी स्थिति बताई। पुरानी तटबंदी कहां टूटी है, नयी कहां बनेगी—यह सारा वह राणोजी को समझा रहा था। तभी राणोजी ने पूछा—"चूने की पिसाई कहां हो रही है?"

"यहां बैठकर पीसने के लिए जगह है ही कहां, चूना ऊपर पिस रहा है।"

राणोजी एक पत्थर वाले के पास खड़ा होकर देखते हुए बोला—"पत्थर अच्छा नहीं है, लिंगण्णा!"

"मैं भी यही कहता हूं! यह पत्थर ऊंची चट्टान का है—घाम में तपा, पानी में भीगा। तोड़ने पर टेढ़ा-मेढ़ा टूटता है।"

राणोजी बोला—"यहीं किले पर कहीं अच्छी-सी पत्थर की जगह देखो, खदान वहां खोदो, बाद में उसका तालाब बनाओ।"

इस पर लिंगण्णा खुश हो गया। बोला—"इसको कहते हैं, योजना।"

अब लिंगण्णा अधिक खुश था। वह राणोजी के कान से अपना मुंह लगाकर बोला—"ये बातें जरा किलेदार को भी बता दो ना? और यह भी देखो हम लोग ज्वार के देश के—हमें ज्वार देने के लिए भी कहो। यहां सुबह भात, दोपहर भात, रात को भी भात ही। हमारे लोग अब ऊब गए हैं।"

यहां घूमते-घूमते राणोजी को बहुत देर हो गई थी। अभी किला और भी देखना था। राणोजी ने लिंगण्णा से विदा लेते हुए कहा—"अच्छा लिंगण्णा! आपकी सारी बातें किलेदार को बता दूंगा। ज्वार की बात कह दूंगा। राम···रा··म।"

किले की तटबंदी देखने में ही दिन दोपहर तक चढ़ गया था। अभी किले का कितना ही भाग देखना बाकी था। तभी राणोजी की आंखें चोर-दरवाजे पर टिकीं। उसने कुछ विचारकर मेट से पूछा—"यह चोर-दरवाजे का रास्ता कहां जाता है? "वह किलेदार के घर के पास निकलता है।" "मैं देख सकूंगा?" यहां मेटकरी भी कुछ सोच में पड़

गया। बोला, "जरा कठिन है, वहां हमेशा पहरा रहता है।"

राणोजी ने उससे कहा, "यदि हो सके तो ठीक ही होगा। हमें भी पूना में लाल महल में से गणेश-मंदिर तक रानी साहिबा के लिए ऐसी ही सुरंग बनानी है। यदि इसकी बनावट और भीतर की कारीगरी देख सका।"

हिम्मत कर मेटकरी बोला—"चलो, उसे कहकर देखें।"

वे दोनों ही वाले किला चढ़कर किलेदार के दरवाजे के पास गए। वहां दरवाजे के पास खटिया पर दो अरब-पहरेदार बैठे थे। उनके हाथ में कड़ाबिनी थी। उनके गले में तोस्तदान लटक रहा था। आंखों में सुरमा लगाए, मेंहदी से दाढ़ी और गलमुच्छों को रंगाए, उनका हाकिम दरवाजे में भाला हाथ में लिए बैठा था। इन लोगों को देखकर उसने वहीं से ललकारा--

"कौन हो जी! खड़े रहो वहीं पर।"

वे सभी वहीं रुक गए। मेटकरी आगे बढ़ा और उसको अपना नाम और काम बताया और बोला—"ये पूना के जागीरदार के ओहदेदार हैं। इन्हें इस सुरंग की बनावट देखनी है।"

शंकित होकर उसने पूछा—"क्या, शाहाजी राजा का आदमी है?"

"जी हां।"

यह सुनते ही उसके दिमाग में बीती अनेक घटनाएं घूम गईं। बहुत पहले यही आदमी फर्रादखान के पास था। लखूजी जाधव पर जब तेगें चलीं, तब वह वहां हाजिर था। उसकी भी तेग चली थी। और जाधवों के खून का स्वाद लिया था। जाधवों के मुर्दे वहां पड़े थे। उन पर औरों के साथ उसने भी थूका था। राणोजी उन्हीं जाधवों के दामाद का आदमी है, यह जानकर वह सतर्क हो गया और उसी जोश में उठकर उसने पास रखा लकड़ी का हथौड़ा उठाकर, ठण-ठण कर घण्टा बजाना शुरू किया। उस आवाज को सुनकर किले पर चारों ओर फैले हशम तेगें सम्भालते हुए किलेदार के बाड़े की ओर भागते हुए आए।

उनके आने पर सरमुकादम ने राणोजी की ओर उंगली उठाकर कहा—"पकड़ो कमीने को। जासूसी करने आया है। जरा, उसकी हिम्मत तो देखो। सुरंग देखने जा रहा है। तेगें चला कर कत्ल कर दो।"

कारखानीस ने घंटे की आवाज सुनी, तब वह थाली पर बैठने ही वाला था। वह वैसे ही किलेदार के बाड़े की ओर भागा-भागा आया। उसने देखा कि राणोजी के आसपास अरब हशमों ने तेगें तान ली हैं। राणोजी को पहचानते ही कारखानीस ने हाथ उठाकर चिल्लाते हुए कहा—"हम फर्माते हैं, ठहरो।"

उघड़े बदन आए कारखानीस को देखकर अरब-हशम सहमकर रुक गए। अब् वे असमंजस में थे—कारखानीस की बातें मानें या सरमुकादम की बात मानें। वे कारखानीस की आवाज सुनकर रुके थे, पर कुछ हशम दखनी थे। वे सर मुकादम की आवाज पर आगे बढ़ रहे थे। तब एक बार फिर से कारखानीस ने डपटकर कहा—"हमारा हुकम मानते नहीं? छोड़ दो उस आदमी को। अब वे भी पीछे हट गए थे। यह देखकर सर मुकादम आगे बढ़कर कारखानीस से लड़ने लगा। बोला—"जनाब! आप जानते हैं इसे? यह जासूस है।"

कारखानीस बोले—"हो सकता है, लेकिन उसका इन्साफ हम करेंगे।"

"हरगिज नहीं। जासूस को सजा देने का हक सबको है।" यह बदजात सुरंग की गहराई-चौड़ाई नापने-जांचने जा रहा था। क्या यह जासूसी नहीं है?"

कारखानीस राणोजी की ओर देखने लगा और बोला—"बिलकुल सही है, पर वजह भी तो पता कर लो।"

तभी मेटकरी बोला—"पूना में लाल महल में से गणेश-मंदिर तक जाने के लिए ऐसी ही सुरंग बनानी है जिसमें होकर रानी साहिबा गणेशजी के दर्शन करने जा सकेंगी। मैंने सोचा—'आपने मंजूरी दी है तो इसे भी दिखा दूं।'

इस पर सर मुकादम बोला—"अजी जनाब! आप इन लोगों को जानते नहीं, हम इनका जर्रा-जर्रा पहचानते हैं। इस कमीने का मालिक, वह शाहाजी भोंसला! उसकी जरा खूबियों पर गौर करो। उसी ने बहाना बनाकर इसे भेजा है। पूरे किले की जानकारी पाने···।"

यह सब सुनकर कारखानीस कुछ पेशोपेश में पड़ गया। तभी राणोजी उससे बोला—"साफ-साफ कहकर आप भी इनकी तरह जमीन ठोको तो

मुझे कोई शिकायत नहीं। पर मुझे दादोजी पन्त को यह तो कहना ही पड़ेगा कि इतना सज्जन आदमी कारखानीस, पर उसने भी मुझ पर शक किया···।"

यह बार अचूक पड़ा। कारखानीस बोले, "जो भी हो पर, किले की जिम्मेदारी हम पर छोड़ गए हैं। हम फर्माते हैं—इन्हें छोड़ दिया जाए।"

गरम होकर सर मुकादम बोला—"कसम खाकर कहता हूं। इसे मैं इस सुरंग में झांकने तक नहीं दूंगा।"

कारखानीस राणोजी के पास आए, उसकी बाजू पकड़कर उसे बोले, "चलिये। किलेदार हाजिर हो जाने पर, आदमी भेजकर तुम्हें बुला लूंगा। अभी तो लौटो। घर पर भोजन तैयार है।"

यह सुनकर सर मुकादम चिल्लाया—"याद रहे, कारखानीस साहब! आप इतनी जुर्रत रखते हैं कि एक खुफिया को अपने घर खाना खाने ले जा रहे हैं।" कारखानीस एकदम पीछे लौटे, उनकी दृष्टि सर मुकादम को जला रही थी। सर मुकादम ने आंखें झुका लीं। तब दोनों घर की ओर बढ़े।

आसवली गांव में राणोजी लौट आया था। शाम को गांव की चौकी के बुर्ज पर खड़े होकर राणोजी आसपास का प्रदेश निरख रहा था।

उस ऊंचाई से कितना बड़ा प्रदेश आंखों में आ रहा था। चारों ओर छोटे-छोटे खेत थे। बीच-बीच में जंगली फूलों का झोंका हिलोरें ले रहा था। कहीं-कहीं खेतों की मेड़ों पर बांस के तुर्रे झूम रहे थे। बरसात के पानी से पेड़ों की हरियाली में शामलता आई थी। उस घने जंगल में होकर चारों ओर के रास्ते आसवली की ओर चढ़ रहे थे। उन रास्तों से पास के गांवों की वृद्धाएं, बहू-बेटियां ग्येनू की बहन की शादी के शकुन के लिए आ रही थीं। उनके साथ में भाले लिए जवान भी आ रहे थे।

नीचे कानंदी नदी के तीर के कैवल्येश्वर के मंदिर की जगह पर आज मस्जिद दिख रही थी। उसकी मीनार गर्व से आकाश में सिर उठाकर खड़ी थी। उस मंदिर के आसपास का जंगल भी काट-छांटकर साफ कर दिया गया था। वहां का वह छोटा-सा मैदान इतनी ऊंची जगह से साफ-साफ दिख रहा था।

आसवली की ओर आने वाले लोगों का वेग अब मन्द हो गया था। चारों ओर से चढ़ने वाले धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। पश्चिम में सूर्य डूब चुका था। मैदानों में अब धीरे-धीरे अंधेरा छा रहा था। वहां से राणोजी को लग रहा था कि चढ़ते हुए उन लोगों के पीछे-पीछे शाम धुंधलका भी धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहा है। कुछ ही क्षणों में वह धुंधला राणोजी तक आ पहुंचा। राणोजी उस आसमन्त को देखते-देखते उसी में खो गया। उसे कुछ दूसरे ही दृश्य दिखने लगे।

एक उम्दा शिलाहार सरदार अपने कबीले के साथ घाट चढ़कर इसी स्थान पर आया। उसकी राजधानी कहीं दूर थी। पर परिस्थिति उसे जंगलों में लायी। उसमें उत्साह था। कुछ करने की ललक थी। उसके प्रयत्नों में जीवट था। यहां तक आते हुए उसे कितने ही संकटों का सामना करना पड़ा। अनेक बार उसके कुनबे पर चोरों-लुटेरों ने आक्रमण किया। कई बार शेरों ने, रीछों ने घात लगाई थी। उसके कितने ही लोग इसमें काम आए थे। कितने ही जख्मी हुए थे। पर इन सभी से जूझते हुए वह यहां तक आया। इस ऊंचे शिखर पर खड़ा रहा। कमर पर दोनों हाथ रखकर उसने सारा प्रदेश देखा। उसका मुख प्रसन्न हो उठा। उसके मन में यहां बस्ती करने का निश्चय जमने लगा। अब तक उसके कबीले ने ब्याह के लिए झगरे जलाए थे। उसमें से गोल-गोल धुआं उठ रहा था। चारों ओर उसकी छतरियां छा रही थीं। संध्या के उस सन्धि-प्रकाश में सारा जंगल, सारे शिखर डूब गए थे। वह रात वैसे ही बीत गई।

दूसरे दिन सुबह सूर्योदय के समय वही राजपुरुष पूर्व की ओर देख रहा था। सुबह के प्रकाश की किरणों के साथ वहां एक नवीन दृश्य उभर आया। आसपास का जंगल, उसकी घनी काली हरियाली, जंगली फूलों की सौंधी हवा, शिखरों की ऊंचाई, घाटियों, खाइयों की गहराइयां, यह सब देखकर उसका मन इस स्थान में रम गया। उसने निश्चय किया कि बस, अब यहीं गांव बसाना है। धीरे-धीरे यहां घर बनने लगे, जमीन जोती जाने लगी। जंगल साफ किया जाने लगा। शिलाहार के घर के लोग, उसकी पत्नी, उसके···कौन नहीं ? सभी इन घाटों में मेहनत करने लगे। उनके पसीने से इस भूमि में सुख और आनन्द पनपने लगा। जहां कुछ

दिन पूर्व अनगढ़ चट्टानें थीं, वहां सुगढ़ घर बनने लगे। जहां जमीन बांझ पड़ी थी, उसको फुलाया गया था। वह अब फूल रही थी। जहां की हरियाली में अल्हड़पन था, वहां आज सौभाग्य झलकने लगा था। और एक छोटा-सा गांव रूप और आकार लेने लगा। सुबह-शाम उन घरों में से धुएं की रेखाएं निकलतीं—ऊंचे शिखर से ऊंचे-ऊंचे उठतीं। और उस गहरे आकाश में कितने ही चित्र बनातीं, संवारती उसी में खो जातीं। तब से एक-दो-तीन···कितनी पीढ़ियां उठीं-पलीं। कितने विवाह हुए, कितनी बहुएं घरों में लक्ष्मी बनकर आईं। घर की लक्ष्मी ने उनका हँस-कर स्वागत किया। कितने ही शिलाहारों के युवराजों ने एक हाथ में शस्त्र और दूसरे में श्रीफल को लिए अपनी सलोनी लक्ष्मी के साथ इस गांव में प्रवेश किया। यहां कितनी ही नवेलियों ने शिशुओं को जन्म दिया। कितने ही घर हँसे थे, आनन्द में नहाए थे। कभी यहां दुःख भी आया। जंगलों के राधुमैना ने कितनी ही बिछुड़ती रानियों को, बिछुड़ते राजाओं को देखा। सुख-दुःख की धूप-छांव में यह गांव कितने ही वर्षों तक पला था।

क्षण-भर राणोजी उसी चित्र को देखता खोया रहा। तभी एक दूसरा चित्र उभर आया।

एक दिन घाटी के बीसियों रास्तों से घुड़सवारों की टोलियां आस-वली की ओर चढ़ आईं। वे सवार ऊंचे, तगड़े थे। उनकी दाढ़ियां मेंहदी से रंगी थीं। पैरों तक का चोगा-सा पहने थे। कमर पर वह कसा हुआ था। वे सब तेगें और भाले लिए बढ़ आए और देखते-ही-देखते उस गांव में क्रन्दन, आक्रोश, चीत्कार सुनाई देने लगे। सारी जमीन लाल हो गई। जहां क्षण-भर पूर्व आनन्द था। वहां अब संहार का भयानक चित्र साकार हो रहा रहा था।

कितनी बहनें लुटीं, कितनी ही बहुएं मिटीं। कितनी माताएं दिल टूटकर पत्थर-सी होकर मर गईं। जिन्होंने इस गांव को बसाया। उनके पूतों का पराक्रम सदा के लिए गाड़ दिया गया। चारों ओर उदासी, बरबादी और सत्यानाश छा गया।

धीरे-धीरे उस श्मशान से फिर से लोग ऊठे। घर नये सिरे से बसे। पर अब उसमें वह उत्साह, वह परिश्रम नहीं रहा। अब वहां निठुर अत्या-

चार शुरू हो गए थे। बैठ बिगार वही आए दिन किसी की बहन, किसी की बेटी, किसी की बहू, किसी की पत्नी जंगल से ही गायब कर दी जाती, कभी भरे दिन में घर में, से खींचकर ले जाईं जातीं। सारा गांव पत्थर-सा जड़ होकर उसे देखता, दो आंसू बहाता, उसांसता, दिन डूबते वह दुःख उस अथाह अंधेरे में डुबो दिया जाता। दूसरे दिन फिर से वह निर्जीव जीवन अपना बोझ ढोने लगता। उसी में एक चित्र और उभरा। इसी चौकी के सामने, इन्हीं इमली के पेड़ों के नीचे काठ में डाले कुछ आसा-वली-कर दिखने लगे। कैवल्येश्वर के एक छोटे से खेत में होनो का हण्डा मिला। उसके कारण आसवली गांव के एक घर का सत्यानाश दिखा, एक दिन रात में पड़ा छापा भी दिखा। उसी समय राणोजी के चाचा ने राणोजी की मां को घर से चुपचाप बाहर निकाला। उसी भयंकर रात में एक जंगल में राणोजी का जन्म हुआ था।

गढ़ी में पहाड़ी कोने का अदबखाना। उसमें पड़े लोगों की परेशा-नियां। उसी में राणोजी की मां का गायब होना। दूसरे दिन कगार के नीचे उसके शरीर के चीथड़े मिले।

यह दृश्य देखकर उसका मन आक्रोश से भर गया। उसकी आंखों में क्रोध छाने लगा। उसके शरीर का कण-कण जलने लगा। उसके मन में आया—'कुछ भी हो पर अब इन अत्याचारी परकीयों का शासन यहां नहीं चलने देंगे। इन अपराधों की क्षमा नहीं। अपने विष भरे इरादों से यहां की जनता की गर्दनें छांटने वालों के मनसूबे जड़ से उखाड़कर फेंक दिए जाएंगे।

यह कहते-कहते ही उसके हाथों की मुट्ठियां कस गईं। तभी नीचे से किसी ने पुकारा—

"राम राम जी! क्या हो रहा है? अपना गांव, अपनी जमीन देख रहे हो क्या?"

राणोजी का मन भूतकाल के उन दृश्यों के प्रभाव से अभी मुक्त होकर लौटा नहीं था।

राणोजी के साथ रुस्तमा तोरण किला देखकर जब से लौटा था तब से उसका मुंह बे-लगाम चल रहा था। किले की घटनाएं वह खूब बढ़ा-

चढ़ाकर बता रहा था।

"अम्नी रानूजी दादा साथ थे। तभी सब निभ गया। मेरे पर यह बाका आ पड़ता तो मुंह से शब्द भी न निकलते।"

किसी ने पूछा—"रानूजी दादा ने क्या कहा रे?"

"अजी, क्या बताएं···चट्टान-से अकड़कर बोले—तुम कुछ भी करो। मैं पूना जाकर कहूंगा।"

"क्या कहेगा?"

"क्या??? यह तो मैं सब भूल गया। हां, एक बात जरूर थी।" कहकर रुस्तमा ने बिना सोचे-समझे एक गप्प सुना दी। बोला—"दादा ने कहा—पूना से सेना लाकर किला जीत लेंगे।"

इस बात को सुनकर सभी की आंखें फैल गईं। आदिलशाही अमलदार को इतना कड़ा जवाब देने वाला आज तक उन्होंने देखा-सुना ही नहीं था।

राणोजी गांव में आया। तभी से लोगों का कौतुक बढ़ रहा था। कभी के देशमुख के उजड़े-टूटे घर का पूत बरसों बाद दिखा था। आज वह एक अच्छे-खासे जागीरदार के घर का दौलतबंदी था और उसमें इतना करडा कि उसने दो टूक जवाब आदिलशाही को दिया। बस! इसी बात से सारा गांव उसका हो गया था।

दिन ढलने लगा। गांव में ग्येनू के घर उसकी बहन की शादी की रुकाई हो रही थी। पर आज राणोजी के प्रभाव के कारण···दूल्हा-दुल्हन को कोई पूछ ही नहीं रहा था। गांव के सभी जवान राणोजी को घेरे थे। यह कौतुक इतना बढ़ गया कि राणोजी जिसके घर ठहरा था उस ग्येनू के घर में उन्हीं की भीड़ बढ़ गई। नाते-रिश्ते वाले अलग।

गांव जरा-सा। ग्येनू के घर की यह भीड़ और हल्ला सावजी देशमुख के घर कुछ ही देर में जा पहुंचा। उसे सुनते ही सावजी जल-भुन गया। बोला—"हरामजादे! क्या कह रहे हैं वे हरामखोर बदजात? यहां से थाने तक एक आदमी भर भेजने पर वहां से तावड़तोड़ सवार आएंगे और उस तुम्हारे देशमुख के सपूत की मुस्कियां बांधकर, मारते, गाली देते ले जाएंगे।"

पर यह घुड़की देकर भी वह मन में डर गया था।

आज तो सभी गांव का झुकाव ग्येनू और राणोजी की तरफ झुक गया था। सावजी कुछ सहमा-सा घर में बैठा था। तभी गांव में से उसी के धड़े का आदमी आया और उसके सामने भीत से टिक कर बैठ गया। बोला—"सुना! आज दिन ढलते मैंने अपने पुराने मुतालिक बेशक खान को मस्जिद की ओर आते देखा था।"

तभी कुछ सहमकर सावजी बोला—

"क्या, तुमने खुद देखा?"

"जी! एक टूटे-से टट्टू पर बैठे डिंगरते बिझर गांव से आ रहा था।"

यह सुनते ही सावजी के टकुरे में आंधी चलने लगी। वह झटके में उठा। खूंटी पर टंगी तलवार निकालकर कमर में बांध ली और उसी आदमी से बोला—"चल मेरे साथ।"

"कहां? मैंने अभी टुकड़ा खाया नहीं।"

सावजी ने उसे ताककर देखा ओर बोला—"चल कह रहा हूं तब चल उठ।"

वह आदमी चुपचाप उठा। उसने कोने में रखा भाला हाथ में संभाला और वे दोनों उसी रात के अंधेरे में सावजी के पीछे आसवली गांव से नीचे उतरने लगे। कानन्दी नदी के किनारे खड़ी मस्जिद की ओर जाने वाली पगडंडी पर वे बढ़ रहे थे।

बेशक खां का टूटा घोड़ा रेंग रहा था। दूर मस्जिद दिख रही थी वीरान खाली-खाली-सी। तोरण किले के हशम नीचे रोज नमाज पढ़ने आते नहीं थे। आसपास के गांवों में से भी कभी-कभार ही कोई आता। बांगी जरूर रहता था, पर अकेला। उसे साथ देते उसके पाले कबूतर और कभी-कभी आकर टिकने वाले फकीर। आए दिन कोई-न-कोई फकीर मस्जिद के अहाते में रहता। बाहर तीन पत्थर रखकर रसोई बनाता।

बेशक खां का वह घोड़ा मार खाते-खाते मस्जिद तक आ पहुंचा। बेशक खान ने अपने भारी और बोझिल शरीर को जैसे-तैसे जमीन पर टिकाया। तभी बांगी बाहर आया। अजीजी से बोला—"अस्सलामालेकुम! बहुत थके हुए मालूम होते हो।"

"ठीक है, ठीक है। पर पहले जरा इस घोड़े को कुछ चारा-वारा दोगे ?"

"हां, हां यह सब ठीक हो जाएगा।"

बेशक खां ने घोड़ा उसे थमा दिया। और घोड़े की जीन के नीचे का गासिया उतारकर भीतर चला गया। वहां एक तरफ उसी गासिये को बिछाकर वह उसी पर लुढ़क गया।

अब तक बांगी घोड़े की व्यवस्था कर चुका था। भीतर आकर बोला—"अजी ! मैंने कहा खाने-वाने का इन्तजाम करूं ?"

बेशक खां ने हाथ से ही मना किया और बोला—"वह रोशनी जरा हटा दो—आंखें चौधियां रही हैं।"

बांगी दिया उठाकर भीतर गया। थोड़ी देर में बेशक खां खर्राटे भरने लगा।

मस्जिद में एक तरफ फकीर खाना पका रहा था, उसने पूछा—"कौन है ?"

"बांगी ने उसे इशारे से जरा चुपकर कहा।"

"आज हालत देखो। कुछ दिन पहले ये यहां के देशमुख थे।"

दोनों बातों में रम गए—कुछ समय बाद उन्हें आहट-सी लगी। बांगी ने पूछा—"कौन है ?"

फूलते दम को साधते हुए सावजी ने जबाव दिया—"हमारे मुतालिक है क्या ?"

बांगी ने सावजी को पहचान लिया। वह चकित होकर बोला "कौन देशमुख ! और खुद !!

अब तक सावजी मस्जिद की सीढ़ियां चढ़कर भीतर पहुंच गया था। बोला, "मैंने सुना···हमारे···मुतालिक···दिन डूबे इधर···आए हैं।"

"जी हां, जी हां। पर नींद लगी है।"

सावजी ने उधर देखा—और उसे आवाज दी। "बेशक खां—ए मुतालिक !"

जगकर बेशक खां ने देखा। क्षण-भर वह भी चकित हो गया था। उठ बैठा। पर उसकी आंखों में रूखापन था। उसी रूखी आवाज में बोला,

"क्या है ?..." इतना कहकर भी उसके मुंह पर न कुछ भाव नहीं थे और न ही कुछ जिज्ञासा। यह व्यवहार सावजी को, देशमुख को, सहन न भी होता, पर इस समय सावजी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। सावजी खान के ही सामने खम्भ के सहारे बैठा और उसने गांव की सारी घटना और राणोजी की कथा उसे कह सुनाई। और आखिर में बोला, "देखो खान साहब ! देशमुख के मुतालिक हम हों या तुम इसमें कोई फर्क थोड़े ही है। पर यह लौण्डा कहां का कौन ? उसका मुकाबला नहीं किया तो फिर हमारी तुम्हारी दुनिया डूबी ही समझो।"

बेशक खां को भी ये बातें जंच रही थीं। थोड़ी देर चुप रहकर बोला, "अच्छा तो, उनकी यहां तक हिम्मत हो गई है ? ये कौन इस बुलन्द किले को लेने जा रहे हैं। चलो, अभी कैद करके भेज देते हैं सुभान मंगल।"

"नहीं, नहीं खान साहब ! आज अभी यह जल्दी नहीं हो सकती। आज सारा गांव तलवार खींचकर उसके पीछे उठ खड़ा होगा।"

"तब क्या चाहते हो ?"

दोनों ही सोच रहे थे।

तभी वहां बैठा बांगी बोला—"इसमें सोचने की क्या बात है ! आज उनके यहां गोद-भरना है।"

"नहीं जी, टीका है।"

"हां, जो भी है, उसीमें बखेड़ा करके उन्हें पूछ लो। यह ठीक ही होगा।"

इसे सुनते ही सावजी ने बांगी की पीठ ठोककर कहा—"शाबाश !"

इक्कीस

आज ग्येनू की लड़की की शादी पक्की होनी थी। दोनों ही घर गांव में। पास-पास ही। इसलिए गोद भरने की रस्म और टीका दोनों ही एक साथ होना था। लड़की वाले के घर ही मण्डप सजाया था। सारे रिश्तेदार, नातेदार इकट्ठे हुए थे। दोनों घर की स्त्रियों की बातों से घर गूंज रहा था। उसमें ही बच्चों की चिल्लपों चल रही थी। सारी स्त्रियां राणोजी की घरवाली, राजाई, के पास जमा थीं। सभी उससे पूना की

बातें पूछ रही थीं। वह भी सभी को सारी कथा बताती। यह क्रम एक-सा चल रहा था। वह भी बताते-बताते अब थक गई थी। इस कौतुक के आगे घर की समधिन की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा था। बाहर आंगन में पुरोहित बैठा था। वह टीके की तैयारी में था। आंगन में कम्बल बिछाए गए थे। बीच में गासिया बिछाया था। उसके पीछे एक लोढ़ बनाकर रखा था। मान-सम्मान के लोग आते, उन्हें आदर से बिठाया जा रहा था। लोग आते, गासिया पर बैठने का आग्रह होता। 'लो मैं यहीं ठीक हूं'—कहकर वहीं एक तरफ बैठते। किसी-किसीको जबरदस्ती हाथ देकर गासिया पर लोढ़ के पास बिठाया जाता। राणोजी आया तो एक तरफ बैठने लगा। तभी दो-चार घर के उठे और उन्होंने राणोजी को उठाकर गासिया पर बिठाया। राणोजी की इच्छा नहीं थी। बोला—"मुझसे बड़े-बड़े लोग हैं उन्हें···।"

तभी एक ने कहा—"उमर के हिसाब से तो जंगल के बट और पीपल बहुत बड़े हैं, पर उन्हें कोई···" आगे की बातें सभी की हँसी में डूब गईं। राणोजी अब भी अड़ा था। तभी एक ने कहा—"अजी, आप यहां के पुराने देशमुख हो—उसमें भी अब तो पूना के जागीरदार के दौलतबंकी हो। तुम्हीं को एक कोने में बिठाया तो गांव के ही नहीं, आसपास के सारे गांव हमें क्या कहेंगे ?"

"सूरज पूरब में ही उगता है हम इतने···।"

"अजी, आप जैसे गहने को इधर-उधर फेंकने के लिए हम निरे बुद्धू नहीं हैं।"

इस सारे जोरदार दबाव से राणोजी जैसे-तैसे गासिया पर लोढ़ के आगे जा बैठा।

इस सब हो-हल्ले में दूल्हे को बुला लाने का किसी को होश ही नहीं रहा। अब पुरोहित जोर से चिल्लाया—"अजी, उस दूल्हे को तो बुलाओ।"

तब उसे ढूंढ़ने दो-चार लोग गए। वह छोटा बच्चा बाहर आंगन में बच्चों में गोटियां खेल रहा था। उसके पढ़ने की बारी थी। बच्चे उसे पदाई उतारे बगैर आने नहीं दे रहे थे। वह भी लंगड़ी भरते-भरते थका

जा रहा था, पर पढ़ाई पूरी करने की जिद में लंगड़ी भरे जा रहा था।

दो-चार बड़े बूढ़े बच्चों को समझाने जा रहे थे। तभी उन्हें दिखा कि दूर रास्ते में बेशक खां और सावजी साथ-साथ आ रहे हैं और उनके साथ में दस-बारह चौकी के आदमी भी हैं। यह बात घर में पहुंची। सभी को अचरज हो रहा था। इन दोनों में बिल्ली-कुत्ते-जैसी दोस्ती थी। आज दोनों को गले में हाथ डाले आता देखकर सभी को आश्चर्य हो रहा था।

राणोजी इन दोनों को देख रहा था। तभी पास के व्यक्ति ने उसे बताया—"वह खान है। वह यहां का पुराना मुतालिक है। और साथ में जो हैं, वे आजकल के मुतालिक हैं। आपकी इनसे कल मुलाकात नहीं हो पाई है। अब आज···"

राणोजी यह सुन रहा था। अब तक वे दोनों मण्डप में आ गए थे। राणोजी खुद होकर लोढ़ से दूर हो गया। राणोजी के कपड़ों से, उसकी नोक-झोंक से इन दोनों ने उसे पहचान लिया था। दोनों ही उसे आंखों से देख रहे थे। जैसे कोई अपने शिकार को देखता हो। लोग एक तरफ हो गए। बीच की खाली जगह में से वे दोनों गासिया तक आए। सावजी ने खान को गासिया पर लोढ़ के पास बैठने का आग्रह किया। खान ने सावजी को कहा—"नहीं सावजी, अब यह सम्मान आपका है। आज आप मुतालिक हैं" पर सावजी को खान से काम निकलना था। उसने खान को ही लोढ़ के पास बिठाया। इस प्रकार दोनों लोढ़ के पास बैठ गए। सब शांत होता-सा देखकर पुरोहित ने पूछा—

"सभी घर के बड़े बूढ़े आ गए क्या ?"

"हां जी। हां, आ गए।"

"तब अब करें—श्रीगणेश !"

"हां जी। और क्या ! हो जाने दो।"

पुरोहित ने दोनों ही समधियों को आमने-सामने बिठाया। दूल्हे को बाप की गोद में बिठाया।

उसे देखकर पुरोहित बोला—

"अरे, इसका टीका है—इसे जरा धुली लंगोटी ही पहना देते।"

"रहने दीजिए। सिर पर पगड़ी है न ! बस।"

"अब देर न करो।"

दोनों ही घर के बड़े बूढ़ों को पूछा और टीका की रस्म शुरू की। प्रारम्भ में ही उसने बैठे लोगों की ओर देखकर कहा—"सुनिए पाटिल, देशमुख और गांव के पंचो! ग्येनू शेलार की कन्या···"

"कन्या नहीं, बहन—"

"हां, बहन। तो इसका लगन मानाजी का नाती, सगना जी के लिए··· आया है। साथ ही एक जोड़ी बैल, साल भर के लिए लड़की के लिए कपड़े देना तय हुआ है। उसकी लड़की के साथ एक दासी भी घाटेजी के घर जाएगी। यह सारा पंचों के सामने कहा है। इसके लिए कुल-देवता, रायरेश्वर का शंभु महादेव, तुलजापुर की अंबाबाई, पंढरी का विठोबा इन सभी देवताओं की मान्यता है। अब पंचों की स्वीकृति के लिए प्रार्थना है।"

इसी बीच में बेशक खां कुछ बोलने के लिए खड़ा हुआ था, उसे सावजी ने बांह से पकड़ नीचे बिठा दिया। बैठे शेलारों ने यह सब देखा। सभी कुछ अस्वस्थ-से हो रहे थे। कुछ बातचीत भी चली। पुरोहित ने फिर से एक बार आवाज देकर कहा—

"सुनो पंचो और नाते-रिश्तेदारो! इसमें किसीको कुछ कहना है तो अभी कह दें। अब टीका होगा। बाद में कुछ बखेड़ा न हो।"

एक महतारा बोला, "जी, यह बिल्कुल ठीक ही है। किसीको कुछ कहना हो तो अभी कह दे।" तभी एक आदमी खड़ा हो गया और बोला—"इस ग्येनवा की बुआ का पुराना झगड़ा है। उसे भगाया···"

तभी मण्डप में गड़बड़ हुई। लोग आपस में बोलने लगे। ग्येनू शेलार की बुआ खेत में काम कर रही थी। उसी ओर से एक पठान सवार उतर रहा था। उसे अकेली देखकर घोड़े पर डालकर भगा ले गया। दो दिन बाद उसका शव जंगलों में मिला था। उसी बात को वह आज निकाल रहा था। यह देखकर एक महतारा उसे बिठाते हुए बोला—"देखो जी, यह अस्मानी सुलतानी है। इसकी कहीं सुनवाई होती नहीं। हुआ सो हुआ गंगा में मिल गया। आज उसको जानने की किसी को जरूरी ही नहीं है। चलो, आगे का काम शुरू करो।"

ग्येन बाने टीके का शकुन किया।

बेशक खां सम्भलकर बैठ गया। सावजी ने एक बार फिर से उसके कान में कुछ बातें बताईं। सबको टीका लगाने के बाद बेशक खां राणोजी को सीधे-साधे ही पूछेगा—यह तय हो गया था। सबको टीका लगाने का समय आते ही बेशक खां और सावजी के पक्ष के लोग सजग हो गए। उनकी इस हलचल को देखकर, गांव का दूसरा पक्ष भी सम्भल गया। कुछ घटने वाला है। यह सभी को भासने लगा।

पर झगड़ा शुरू हुआ किसी दूसरे ही कारण से। इसकी किसीने कल्पना भी नहीं की थी।

दूल्हे को टीका लगाने के बाद गांव के बड़े बूढ़ों को टीका लगाने का रिवाज था। उसमें भी गांव के देशमुख का मान सबसे पहले था।

ग्येनू चंदन की कटोरी लिए सावजी के पास पहुंचा। अब प्रश्न और था। सावजी के पास पहला देशमुख बेशक खां भी तो बैठा था। उसको छोड़कर सावजी को टीका करना भी कठिन था। ग्येनू कुछ सोच ही रहा था। तभी आयदान जी खड़ा हो गया बोला—"क्यों रे ग्येनू! क्या सोच रहा है?"

घबड़ाया हुआ ग्येनू बोला—"किसे टीका पहले लगाऊं?"

"इतना सोचने की क्या जरूरत है?"

"तो तुम क्या कहते हो?"

आयदान जो जोश में आगे बढ़ा—ग्येनू के पास पहुंचा, उसकी बाजू पकड़ी···और उसे राणोजी के सामने खड़ा किया फिर ऊंचे स्वर में बोला—"अरे, तुझे टीका लगाना है ना? तो यह रहा सबसे बड़ा माननीय। इनके माथे पर टीका लगा दे।"

क्षण भर ग्येनू सोचता रहा—दूसरे ही क्षण उसने चांदी की कटोरी में से चन्दन-भरी उंगलियां राणोजी के मस्तक पर टिका दीं और दूसरे ही क्षण वहां महाभारत का शंख फूंका गया।

सावजी और बेशक खां अपनी तेगें खींचकर खड़े हो गए। उनके पक्ष के सभी जवान खड़े हो गए। उनमें से एक ने जगदल्या को बुलाबा भेजा। इधर सावजी मूंछों पर ताव देकर बोल रहा था—"जगदल्या कहां है?

मेरा हुकुम है। इन सब बदमाशों को कैद कर लो। इन्हें बांध लो।"

तभी सात-आठ हथियारबन्द लोग राणोजी की ओर बढ़े। दूसरे पक्ष के जवान लड़ने को हाथ में फरसे लेकर खड़े हो गए। तभी आयदानजी बीच में खड़ा हो गया। उसने, सभी को रोकते हुए सावजी से पूछा—"सावजी ! ऐसा कौन-सा गजब हो गया ?"

"गधे, क्या हुआ यह पूछ रहा है ? अरे, तुमने मेरी तो बेइज्जती की, वह की ही, पर दीवान का आदमी यह बेशक खां यहां बैठा है इसकी भी बेइज्जती की है।"

"पर कैसे ?"

"अरे, हमारे गांव का रिवाज क्या है ? सबसे पहले टीका देशमुख को लगाया जाता है। आज मैं यहां नहीं था ? ये बेशक खां नहीं था ? तुम्हें पूछना ही था तो हमें पूछता। पर यह सब न करते हुए तुमने सीधे उस कल के आए किसी ऐरे गैरे···।"

तभी दो-चार चिल्ला उठे—"सावजी ! जरा मुंह सम्भालकर बोलो। ये कोई दूसरा और गैर नहीं है। यह यहीं के पुराने देशमुख का पूत है।"

"होगा ! पर पहला टीका तुमने उसे क्यों लगाया ? यह मेरी नहीं तो सीधी आदिलशाह के बादशाह की बेइज्जती की गई है।"

'यह सब-कुछ गलत हो रहा है' यह सोचकर राणोजी खुद उठकर खड़ा हो गया। उसे जीजाऊ की सीख याद आ रही थी—'तोड़ना बड़ा सरल है, पर जोड़ना बड़ा कठिन होता है।' और राणोजी आज यहां कुछ जोड़ने आया था, तोड़ने नहीं।

राणोजी कुछ बोलना चाहता था, पर उस हल्ले में उसे कोई बोलने नहीं दे रहा था।

आयदानजी बहुत आगे बढ़ चुका था। उसने सावजी से पूछा—"सावजी सबसे पहले इस बेशक खां को टीका लगाया जाना तुम्हें पसन्द था ?"

"हां, हां। चलता ! चलता !!"

"क्यों कर ! वह क्या हमारी बिरादरी का है ?"

"क्यों कर पूछ रहा है रे ? अरे, खान साहब, यहां के मुतालिक रह चुके हैं।"

"तो सुनो, राणोजी खुद देशमुख हैं, इनके बाप यहां देशमुख नहीं थे ? उनके माथे पर टीका कभी लगाया नहीं ?"

बेशक खां भड़क गया। बोला—"जहन्नुम में गया तुम्हारा राणोजी और उसका बाप।"

तभी सात-आठ लोग चिल्ला उठे—"हां, हां खान ! जबान जरा सम्भाल कर बोलो।"

रुस्तमा सबके बीच में जाकर खड़ा हुआ और बोला—"पर हमारे घर में टीका पहले किसे लगाए, यह तय करने वाला यह खान कौन होता है ? यह तय करना हमारा काम है, हमारे पंचों का काम है।"

यह बात नवीन लड़कों को ठीक जंची। बात लड़कपन में बढ़ेगी, यह सोचकर एक-दो बूढ़ों ने आगे बढ़कर कहा—"अरे, ! यह क्या बात है ? यह गांव के मान-सम्मान की बात दीवानी-सुलतानी है, पुरानी है। दीवानी से जो नियुक्त हुआ, उसे ही यह सम्मान मिलता रहा है।"

यह सुनते ही बेशक खां बोला—"बिलकुल सही है। चलो, किले सुभान मंगल। वहीं फैसला होगा।"

सभी चकित हो गए। यह कुछ तीसरा ही झमेला उठा था। इसका मतलब यह हुआ कि आज के लगुन का शकुन व्यर्थ गया।

पूरे गांव को, सभी पंचों को थाने जाना होगा और थानेदार के सामने यह सारा होगा। और जिसे वह कहेगा उसे ही पहले टीका लगाया जाएगा।

गांवों के लोगों को यह बात जंच नहीं रही थी। 'शेलारों के घर के धरम के झगड़े कभी दीवान में गए नहीं थे। सारी बिरादरी क्या कहेगी ! पूरे इलाके में बदनामी होगी। सभी कहेंगे—इन शेलारों का लगुन थानेदार के सामने और उसके कहे के अनुसार हुआ।' यह सब सोचकर फिर से कुछ बड़े बूढ़ों ने समझाया—"अजी, किसीको पहले टीका लगाया भी तो क्या हुआ ! तुम्हें मंजूर नहीं तो वह टीका मिटा दो। यह बैठक एक बार उठाओ। फिर से बैठो। सारा काम शुरू से करो। सावजी का भी तो कहना ठीक है। गांव के सम्मान की जो परम्परा है वह निभाई जानी

चाहिए। राणोजी का आपको इतना कौतुक है तो बाद में उसे भी एक पगड़ी बांध दो।" पर, नवीन रक्त को यह बात मंजूर नहीं थी। सावजी बात को ऐसे बनने नहीं देना चाहता था। दोनों ही गुटों के लोग लाल होकर चिल्ला रहे थे। लोगों के हाथ तलवारों की मुट्ठियों में कस रहे थे। तभी एक चतुर व्यक्ति ने राणोजी को एक तरफ ले जाकर कहा—"बेटे, तुम ही इन्हें कुछ समझाओ।"

राणोजी बोला—"देखो भई, मुझे पहले टीका लगाओ, यह मैंने किसी से कहा नहीं था। इस पर भी बिरादरी को यह मंजूर नहीं है तो यह लो—यह मैं टीका पोंछ देता हूं।"

ऐसा कहकर राणोजी टीके को पोंछने लगा। तभी दो-चार लोग बोल उठे—"नहीं जी! अब टीका मिटाया नहीं जाएगा।"

"यह क्या बच्चों का खेल है या बच्चों के खेल की शादी है?"

"अजी, आप जरा शांत रहिए। देखो जी, क्या होता है!" सावजी दीवानी अमलदार उठा, अपनी कमली उठाई और बोला—"आपको हमारी बात मंजूर नहीं है तो उठो, चलो।"

"कहां?"

"तुम्हें मेरी बात माननी नहीं है। तुम्हें लड़ने का बहुत जोश आ रहा है। तब अब यह झगड़ा शिरवल के बड़े थाने में ही तय होगा।"

बाईस

नाम किला सुभान मंगल। पर वह एक मैदान पर बनी बड़ी ही मजबूत गढ़ी थी। आज वहां एक भयंकर तमाशा हो रहा था। गढ़ी का हाथी गढ़ी के दरवाजे के बाहर खड़ा सूंड इधर-उधर घुमा रहा था। वह आज दरवाजे से जमकर ही खड़ा था। पीलखाने के नौकर उसके पिछले पैरों में मजबूत सांकल बांध चिमटा लगाने का प्रयत्न कर रहे थे। उस ऊधम को देखने के लिए आसपास कितने ही लोग खड़े थे। भाले हाथ

में लिए कितने ही अरब, उस भीड़ को दूर कर रहे थे। पर उस मदमाते हाथी को देखने का कुतूहल इतना था कि लोग उन अरबों की गालियां खाकर भी एक-दो कदम पीछे हटते और फिर आगे बढ़कर खड़े हो जाते। उसी में मंलग मियां भी था। वह जोर से चिल्ला-चिल्लाकर चिमटा लगाने वालों को सूचनाएं दे रहा था। वैसे मंलग को इसमें कुछ समझ थी—ऐसी बात नहीं थी, पर आदत !

हां, उठाओ, उठाओ। सम्भलकर, जरा इतमीनान से।"

"च, च, च। भाग क्यों रहे हो ?"

इधर मंगल सूचनाएं दे रहा था, उधर वजनी चिमटा इधर-उधर करते लोग थक रहे थे, बेहाल हो रहे थे।

सामना मद से मस्त हुए हाथी से था। वह हाथी पहाड़-जैसा खूब मोटा था। ऊंचा भी खूब था। सारा शरीर धूल से भरा था, उसकी भीतों जैसी कनपटियों से चिपचिपा मद झर रहा था। बीच-बीच में वह कान फड़फड़ाता तो मद के बूंद इधर-उधर छिटक पड़ते थे।

बीते चार-छः दिनों से हाथी मद में ही था। आज सुबह उसका महावत बड़ी मुश्किल से, खुशामदी से उसे किले के बाहर नीरा नदी पर लाया था। वहां वह नदी में घुसा। बाद में बाहर ही नहीं आ रहा था। हारकर चारों ओर से जलती मशालों से उसे डराया, तब कहीं वह बाहर आया। बाहर आते ही उसने धूल शरीर पर डाल ली। महावत ने बाद में बड़े यतन से उसे लौटने को राजी किया। गन्ने का लालच दिखा-दिखाकर उसे जैसे-तैसे किले तक ला पाए थे। अब वह किले के दरवाजे के पास ही खड़ा था। आगे बढ़ने का नाम नहीं ले रहा था। माहुत ने सिर पर अंकुश चला-चलाकर उसे बेहाल कर दिया। हाथी चिल्ला रहा था। उसके आस-पास की जमीन तक हिल रही थी। पर वह भीतर जाने को राजी नहीं हो रहा था। आखिर अमीन ने हुक्म दिया कि उसे वही चिमटे लगाकर धीरे-धीरे भीतर ले जाकर उसके स्थान पर बांध दिया जाए।

हाथी के पैरों में चिमटे लगाने का प्रयत्न चल रहा था। चिमटों के कांटे उसे चुभते। वह उससे और चिढ़ रहा था। इसी बीच हाथी ने भीड़ को दूर करने वाले एक अरब के हाथ का भाला पीछे से सूंड से खींच

लिया। वह अरब जैसे-तैसे भागकर बच निकला। यह हाथी रुस्तमे-जंग कितनी ही लड़ाइयों में सूंड में पट्टे लेकर युद्ध कर चुका था। एक लड़ाई में उसका एक दांत टूट गया था। इस ऐब के कारण उसे बिजापुर से दूर इधर भेज दिया गया था। बहुत दिनों से उसने शस्त्र पकड़ा नहीं था। आज अनायास भाला मिलते ही वह उसे ही घुमाने लगा। साथ ही जोश में चिंघाड़ने लगा। उसके सिर पर बैठा महावत प्राणों की मुट्ठी में लिए बैठा था। उसे अंकुश चुभो-चुभोकर शान्त करने का प्रयत्न कर रहा था। पर आज हाथी की मस्ती उतरने की बात दिख नहीं रही थी। इसी बीच कुछ पीलखाने के नौकरों ने हिम्मत से उसके पीछे के एक पैर में चिमटा लगा दिया दूसरा चिमटा हाथ में लेकर वे दूसरे पैर की ओर बढ़ रहे थे। पीछे भी तमाशबीनों की भीड़ थी। मंलग समझ रहा था कि उसी की बताई तरकीब के कारण यह चिमटा लगाया गया है। इसी कारण बड़े उत्साह से वह दूसरे पैर में चिमटा लगाने की भी सूचना देने लगा। इसी जोश-खरोश में वह हाथी के सामने से पीछे की ओर बढ़ रहा था। तभी पगले हाथी ने झटके से सूंड में पकड़े भाले को ऊपर उछाल कर फेंका, भाला ऊपर उड़ा और सीधा होकर सामने खड़े एक मावले की छाती में जाकर धंस गया। वह मावल वहीं ढेर हो गया। क्षण भर में वहां से तमाशबीनों की भीड़ छट गई। हाथी आगे बढ़ा और उसने उस नीचे पड़े जख्मी मावल की छाती पर पैर रखा। कड़-कड़कर उसकी हड्डी-पसलियां चूर-चूर हो गईं।

उस भयंकर दृश्य को देखकर वहां के लोग मारे डर के धड़ाधड़ पीछे हट रहे थे। यह देखकर मलंग हाथी के सामने खड़ा होकर चिल्लाने लगा—"अबे गधे, चुप। पागल हो गया है क्या!" उसको चिल्लाते देख हाथी ने क्षण भर में सूंड से मलंग को भी दबोच लिया। अब मलंग चिल्लाने लगा। ऊपर बैठा महावत हाथी के अंकुश को जोर-जोर से चला रहा था। हाथी के मस्तक से खून बहने लगा। पर उसने मलंग को छोड़ा नहीं। मलंग को दूसरे क्षण हाथी ने धोबी जैसे हवा में पछाड़ते हुए पैरों के पास जमीन पर लाकर टिकाया और उसकी छाती पर पैर रख दिया। मलंग की आंखें बाहर निकल आईं। शरीर पिस गया—हड्डी-हड्डी चूर-चूर हो गई। दूसरा भयंकर दृश्य देखकर कितनी ही ने आंखें बंद कर लीं।

इतना कहर उठाकर अब हाथी कुछ शान्त हुआ था। अब वह अपनी ही जगह पर शांत खड़ा था। कान फड़फड़ा रहा था। महावत ने कुछ सम्भलकर हाथी को भीतर चलने को कहा और मानो कुछ हुआ ही नहीं, ऐसी मस्ती में हाथी गढ़ी के बड़े दरवाजे में से भीतर पीलखाने की ओर चला गया।

दो मुर्दे, बाहर पड़े थे। हाथी के चले जाने पर दोनों मुर्दों के पास भीड़ इकट्ठी हो गई। मरा हुआ मावला कानंदी-घाटी का एक किसान था।

उसे देखकर एक बोला—"अरे···रे, यह तो बिगार में यहां आया था।"

"इसके साथी तो गए। यह यहां मरने के लिए ही ठहरा था?"

"हां और क्या! उसका मरना हाथी के पैरों से जो लिखा था।"

"पर, अब?"

"अब क्या! इसे दाग तो देना ही होगा।"

तभी एक ने डांटा—"अमीन साहब की इजाजत लिए बगैर! क्या तुम्हें भी भीतर बेड़ियों में बंधने की इच्छा हो रही है?"

यह यहां का नियम था। मौत किले की सीमा में हुई थी। अमीन को पूछे बिना मुर्दा जुर्म हो जाता। कुछ सोचकर दो-चार समझदार दरबान के पास गए। अब तक बड़ा दरवाजा बंद हो चुका था। उसकी खिड़की खुली थी। दरवाजे के पास कुछ अरब पहरे पर खड़े थे। उन्हें आदाब अर्ज किया। बोले—"यह मावला किसान हमारी बिरादरी का है।"

"तब! आगे बोलो। क्या चाहते हो?"

"इसे दाग देना है।"

"मतलब यह कि इसे नदी पर ले जाकर जलाएंगे।"

"इसका यहां कोई सगा रिश्तेदार है?"

"हमी हैं।"

"अच्छा! ए, इन सभी को बांध लो। इन्होंने उसे रुस्तमे-जंग के सामने आने ही क्यों दिया?"

यह उल्टी आफत आती देखकर उनमें से बहुत से पीछे से ही लौट

गए। दो-चार थे वे उन्हीं पहरेदारों की खुशामद कर रहे थे और मरे हुए को गालियां दे रहे थे।

तभी भीतर से सात-आठ सिपाही आए। उनके हाथ में हरा-सा कफन था। उन्होंने उसे मलंग के मुर्दे पर डाला और उसे उठाकर गढ़ी की बुरुज पर ले जाकर रख दिया। पहरेदारों के पूछने पर उन सिपाहियों ने बताया कि मलंग को यहीं दफनाने का हुक्म है। यहां कबर भी बनाई जाएगी।

"और उस बंदर का क्या होगा ?"

उन सिपाहियों ने उत्तर दिया—"उस कुत्ते की लाश नदी के किनारे फेंक दो।"

मावले आगे बढ़कर कुछ बोलने ही वाले थे तभी पहरेदार उन पर पिल पड़े, और चिल्लाए—"क्यों बे ! भीतर आदबखाने में सड़ना है क्या ?"

"भागो, हुक्म की तामील की जाएगी।"

तभी चार डोम आए और उस मुर्दे को पैरों से पकड़कर, घसीटकर नदी की ओर चल दिए। उसी समय सामने से घोड़ों पर सवार आसवली करों की भीड़ आ रही थी।

किले सुभान मंगल के पास पहुंचते ही सामने मुर्दे को देखकर सभी के मन उदास हो गए।

राणोजी घोड़े से उतर पड़ा। उसने आयदानजी से पूछा—"यह क्या ? कोई आदबखाने में मर गया है क्या ?"

"हो सकता है।"

बेशक खां और सावजी—दोनों कुछ पीछे थे।

घोड़ों को इन सभी के आगे ले जाकर, बेशक खां ने सावजी से कहा—

"चलो सावजी देशमुख, हुजूर की इजाजत लेकर आएं।"

राणोजी आसवली के लोगों के साथ गढ़ी में घुसा। गढ़ी के बड़े-से दरवाजे से भीतर घुसते ही बाईं ओर आदबखाने की एक मजबूत इमारत थी—लम्बी और डरावनी। उसमें दूर तक दोनों ओर कोठड़ियां दिख रही थीं। जिन पर कलाई-जैसे मोटे सरियों के दरवाजे लगे थे। पर कोठड़ी में एक कैदी था। उनके पैरों में बेड़ियां थीं। कैदी दरवाजे के सरियों को

पकड़े खड़े थे। कुछ रो रहे थे, कुछ घिघिया रहे थे। कुछ शान्त खड़े थे। कुछ पहरेदारों से मेलजोल कर चुके थे। उनमें से कुछ पहरेदारों से बातें कर रहे थे। कोई उनसे तमाखू मांग रहा था। दिन में भी पहरेदार कंधों पर भाले रखकर पहरा दे रहे थे।

पहरा देने वाले अरब थे—क्रूर और गन्दे। उन्हें कैदियों को डराने-धमकाने में मजा आ रहा था। बेचारे कैदी! दुबले, पतले, लंगोटी पहने, बाल बिखरे दीन-हीन खड़े थे। किसीके भी पास शरीर पर साबुत कपड़ा नहीं था। चिंधियां लटक रही थीं।

उस आदबखाने के बाहर के दरवाजे से आदबखाने का एक गलियारा भर दिखरहा था। वह दूर तक घूमता चला गया था। कितनी दूर? पता ही नहीं पड़ता था। दरवाजे के पास कितने ही प्रकार की बेड़ियां लटकी थीं। आदबखाने के दरवाजे के बाहर नंगी तेगें लिए अरबों का कड़ा पहरा था।

इसके आगे सामने ही सदर थी। दाएं हाथ की ओर पीलखाना था। उसी ओर घोड़ों की पागा थी। रुस्तम हाथी पीलखाने में खड़ा दिख रहा था। पागा में घोड़ों की कतार दिख रही थी। बड़ी सदर की भी एक अच्छी-सी मजबूत इमारत थी। उसकी बनावट आंखों में भर रही थी—सदर चूने से पुती थी। घाम में उसकी सफेदी चमक रही थी।

सदर के एक दालान में कलमनवीस चौकियों पर कागज रखे काम कर रहे थे। उनके बर्रु कुरु-कुरु बोल रहे थे। दूसरी ओर अमीन की कचहरी थी। आसबली के लोगों के साथ राणोजी यहां तक आ पहुंचा था।

कचहरी के दालान में एक ओर सामने बड़ी-सी चौकी थी। उस पर गद्देदार मसनद बिछी थी। पीछे लोढ़ था। दोनों ओर तकिये थे। पास में सुन्दर-सा हुक्का रखा था। लोढ़ से टिककर अमीन बैठा था। उसने सिर पर आदिलशाही पगड़ी पहन रखी थी। उस पर शिरपेंच था। शरीर पर मलमल का अंगरखा पहने था। उसकी अकड़ उसकी दाढ़ी और मूंछों में से दिख रही थी। उसके पास ही एक लौंडा हाथ में पंखा लिए खड़ा था। बीच-बीच में पंखा कर रहा था। एक ओर एक खोजा हाथ में हुक्के की

नली लिए अदब से खड़ा था। अमीन बड़ी नजाकत से हुक्का पीता। बीच में उसकी नली छोड़ता तो खोजा बड़ी अदब से झेलकर पकड़े रहता। राणोजी और आसवली के लोग अब तक अमीन के सामने पहुंच चुके थे। सदर का मुख्य हाकिम उन्हें देखकर आगे बढ़ा। उसने एक गोल कागज को खोलते हुए कुछ पढ़ा। बेशक खां और उसके साथ सावजी के लोग पहले ही वहां पहुंच चुके थे। उस हाकिम की बातें सुनते-सुनते अमीन हुक्का पी रहा था। बीच में ही उसने नली को एक ओर कर मुंह से धुआं छोड़ा और अपने हाथ से धुएं को झाड़ते हुए बेशक खां से बोला—"हां, समझ गए। सब वाक्या हम समझ गए हैं। तुम्हारा मतलब यह है कि देशमुखी इस शख्स की होते हुए टीका पहले इसे लगाया गया।"

"जी हां, पर इनके गुनाहों की फेहरिश्त···!!!"

"मुंह मत चलाओ।"

तभी सदर के भीतर दरवाजे से चिक का परदा एक ओर कर दूसरा खोजा खान के पास आकर धीरे से उसके कान में कुछ बोला।

अमीन खान साहेब ने एक बार आसवलीकर की ओर देखा और बोला—"बाकी काम कल देखेंगे।"

और वह भीतर जाने के लिए उठा—

कुछ रुककर उसने बेशक खां की ओर देखकर पूछा—"सुनो, क्या नाम है तुम्हारा?"

"जी! बेशक खां।"

"हां, तो बेशक खां, इस काम का फैसला हम कल देंगे। आज तुम बाहर की सराय में ठहरो।"

और वह भीतर जाने के लिए मुड़ा। तभी एक लौंड़े ने जूतियां जमीन पर रखीं। अमीन ने जूतियां पहनीं और वह जल्दी-जल्दी भीतर चला गया।

गढ़ी के बाहर दुमंजली सराय थी। उसीमें आसवली करों के दोनों गुट अलग-अलग टिके थे। बाहर यहां भी पहरा था। रात में बेशक खां सावजी को कुछ समझा रहा था। उस बात को राणोजी समझ नहीं पा रहा था। राणोजी ने उस ओर कुछ ध्यान भी नहीं दिया।

राणोजी के मन में विचार उठ रहे थे। उसने गढ़ी में भीतर जाते और लौटते हुए आदवखाना देखा था। बाजीराव इसी में हो सकता है। बाहर से दिख रहे थे वे कैदी मामूली। आदवखाने का बाहर से दिखा हुआ स्वरूप भी मामूली था। पर भीतर? वहां क्या-क्या होगा? वहां तंग करने के और परेशान करने के कैसे-कैसे साधन होंगे? चरक होगा, धानी होगी। और क्या-क्या नहीं!

बाहर तो कड़ा पहरा है। ये ऐसी ऊंची भीतें हैं। मजबूत परकोटे थे। तटों पर पहरे। इन सब में से बाजीराव को निकालना है! कैसे होगा यह सब! पर एक बात राणोजी को कुछ समाधान दे रही थी कि इस झगड़े के कारण उसे यहां तक आने का मौका मिला, यह भी अच्छा ही हुआ। नहीं तो यहां तक आने के लिए और आदवखाना देखने के लिए कितने ही ढोंग करने पड़ते। कैसी-कैसी जुगत-जुगाड़ करनी पड़ती। अब यहां तक आए हैं—तो आगे भी कुछ होगा ही, ऐसा सोचते-सोचते वह सो गया।

उतरती रात में वह आहट पाकर जगा। देखा कि बेशक खां सावजी को जबरदस्ती खींच-खींचकर कहीं ले जा रहा है।

सुबह हुई। सभी अपना काम निपटाकर भीतर के बुलावे की बाट जोह रहे थे। सावजी और बेशक खां अभी तक लौटे नहीं थे। सराय के सामने से घुड़सवारों की टोली बाहर आई—उसके पीछे एक मेणा था। उसके आसपास पहरेदार थे। थोड़ी देर बाद फिर से एक पालकी-ढकी-भीतर गई। दरवाजे के पहरेदारों ने झुककर सलाम किए।

दिन चढ़ रहा था। इधर आसवलीकर भी बेताब हो रहे थे। इस बीच में राणोजी—पूरी सराय को घूमकर देख आया था। दिन पहर भर चढ़ जाने पर भीतर से एक कामदार आया और उसने पूछा—

"अमां, ये आसौलीकर कहां हैं?"

तभी आयदानजी आगे बढ़ा और उसने कहा—"जी, हम हैं। पर हमारे सावजी नाना कहां हैं?"

"वे सभी सदर में पहुंच चुके हैं। चलो।"

अमीन की कचहरी में नवीन भेष में खड़े सावजी को देखकर राणोजी

चकित हो गया था। कल रात तक जो केवल बाराबन्दी पहने था, सिर पर मावलों की पगड़ी बांधे था कमर में तुमान पहने था भाल पर सुन्दर गंध लगाए था, कंधे पर मावले किसान की कमली डाले था, वही सावजी आज कुछ और ही बन गया था।

कमर में पठानी तुमान थी, ढीला-ढाला अंगरखा पहने था। टकुरे पर आदिलशाही पगड़ी टिकाए था, कमर में पुराना शेला कसा था। कपड़े किसीके उधार लिए थे—यह साफ दिख रहा था। इन बेतुके कपड़ों में सावजी एक बहुरूपिया के स्वांग-सा लग रहा था। राणोजी सब समझ रहा था, पर आयदानजी से रहा नहीं गया। वह पूछ बैठा—

"सावजी नाना ! यह क्या है ?"

तभी बेशक खां बरस पड़ा—"एं ! जरा अदब से पेश आओ।"

"क्यों जी ! यह तो हमारे···ना···ना"

"तुम्हारे नाना नाना-बाना गए जहन्नुम में, अब यहां पर जो खड़े हैं, वे मियां सलीम खां हैं।"

यह सुनते ही आवेश में भरकर आयदानजी ने सावजी के पास जाकर उसे झकझोर कर पूछा—"नाना ! यह सही है ?"

मरी-सी आवाज में सावजी बोला—"बेशक खां माना नहीं, मुझे काजी के सामने ले गया।"

आयदानजी ने माथा ठोंक लिया। बोला—"यह सब तुमने केवल टीके के लिए···।"

तभी दूर से आवाज आई—"बा आदब बा मुलाहिजा होशियार! ! !"

उसमें आयदानी के शब्द खो गए।

अमीन और उसका मस्लतगान दोनों सदर में आए। बड़ी ही नजाकत से दोनों अपनी-अपनी जगह बैठ गए।

अमीन बैठते ही बेशक खां ने बढ़िया कपड़े से ढका थाल अमीन के सामने रखा और सावजी को आगे करके बोला—"इन्शाल्ला सलामत रखे हुकूमते आलम को। इस नाचीज नये ईमानदार का नजराना कबूल हो।"

आश्चर्य से अमीन ने उनकी ओर देखकर पूछा —

"क्यों मियां ! क्या बात है ?"

"जी, कुछ नहीं। काज़ी साहब ने रहमदिल होकर कलमा पढ़ा, नाम जाहिर किया है—मियां सलीम खां।"

"क्या खूब!" मस्लतगार ने अपनी खुशी जाहिर की और बोला—"तो क्या देशमुखी का झगड़ा इसी नये, क्या नाम? हां,...। सलीम खां के बारे में था?" वेशक खां बीच में ही बोला—"हां,तभी तो तब सदरे अमीन का फैसला हमीं से सुनो। सलीम खां ने ईमान पसन्द किया है—तब सवाल ही नहीं उठता। जाहिर है कि बादशाह सलामत के अमल में चीजें पहले-पहल ईमानदारों पर बख्शी जाती हैं। अच्छा! ये तो बताओ कि झगड़ा किसके साथ था?"

वेशक खां ने राणोजी की ओर उंगली उठाई। बोला—"ये हैं वे लोग।"

मस्लतगार राणोजी की ओर देखकर उसे पहचानने का प्रयत्न कर रहा था। तभी सलीम खां सावजी आगे बढ़कर अमीन को आदाब अर्ज करके बोला—"हुजूर! इतने से क्या होगा? ये कहता है कि ये—वाकर्यात मावल के जागीरदार का दौलतबंकी है। और इरादे तो देखो इसके। कहता है कि पूना से सिपाही लाऊंगा और तोरना किला फतह करूंगा।"

यह सुनते ही अमीन ने लाल होकर पूछा—"क्या यह राजा शाहजी बेटे सिवा दौलतबंकी हैं?"

"जी हां?"

क्षण भर में अमीन के दिमाग में कोंढणपुर से लौटे तलवखान द्वारा बतायी बातें घूम गईं। तलवखान ने कोण्ढणपुर की बातें खूब बढ़-चढ़ कर बताई थीं। उस समय अमीन से उसे समझा-बुझाकर शान्त कर दिया था। थोड़ा डांटा भी था कि हमने तुम्हें उनका उर्स तोड़ने का हुक्म कब दिया था! पर उसी दिन वह समझ गया था कि ये मरे-से मावले अब आंखें खोलकर उठ रहे हैं। और 'बे' का जवाब 'क्यों बे' में देने की हिम्मत रखते हैं।

मस्लतगार ने राणोजी को कहा—"यहां आ बे कमीने!"

यह सब कुछ और ही था। राणोजी ने इसकी कभी कल्पना भी नहीं

की थी। यह मस्लतगार राणोजी को किले पर चढ़ते हुए मिला था। वह यहां भी आ धमका था। अब बहुत-सी बातें मिल-जुलकर यहां एक हो रही थीं। क्षण भर राणोजी के मन में डर उठा, पर दूसरे ही क्षण वह सम्भल गया। बोला—"जी ! यह सही है कि वंदा कर्यातमावल के जागीरदार का दौलतबंकी है। पर साहब का हुकुमते आलम के साथ, अमीन साहब के साथ दोस्ताना भी जाहिर है।"

मस्लतगार चिल्लाया—"इसे कैद किया जाए—यह बड़ा धोखेबाज है।"

राणोजी समझाने की गरज से बोला—"लेकिन सुनिये तो···"उस ओर ध्यान न देते हुए मस्लतगार बोला—"कल-परसों तोरना से खबर लेकर आए आदमी ने खबर दी है कि सरमुकादम के कहने के मुताबिक यह पाजी वहां की सुरंग देखने जा रहा था।"

इतना कहते हुए मस्लतगार ने ताली बजाई। तभी चार अरब तेगें लिए दौड़े आए और देखते-देखते राणोजी को उन्होंने कैद कर दिया।

पहाड़ी उतरते-उतरते ही दिन डूबने को हो गया था। दोनों ही थके थे। एक घुमाव उतरने पर चट्टान पर खड़े रहकर नौकर ने हाथ गांव की ओर बढ़ाकर बताया—"वह रहा आसवली गांव।"

"वही—आसवली है।"

"जी ! तब तो अब आ ही गया।"

"हां, जी ! अब थोड़ा ही चलना है। यह नीचे नाला दिख रहा है। उसे पार करने पर गांव शुरू होता है।"

"ठीक है ! तो तुम अब लौट सकते हो। नहीं तो तुम्हें लौटते हुए रात हो जाएगी।"

"नहीं जी ! मैं गांव तक आ रहा हूं।"

"नहीं ! मैं अकेला ही जाऊंगा।"

"मेरे मालिक मुझे···।"

"नहीं, वे कुछ नहीं कहेंगे। तुम जा सकते हो। जाओ।"

"तो मैं लौटूं ही ?"

"हां ! हां ! और सम्भल कर जाना।"

यह सुनते ही भाला कंधे पर रखकर वह मावला नौकर लम्बे डग भरता पहाड़ी पर चढ़ता गया और क्षण भर में ओझल हो गया। राजाई ने उसे ओझल होते देखा। और एक बार गांव की तरफ देखा और पगडंडी से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगी। नाला आया। पानी साफ था। ठण्डा था। दिन भर से थकी राजाई घुटनों पानी में खड़ी रही। थके पैरों को वह पानी आराम दे रहा था। रास्ते में कितने ही कांटे उसके गोरे-गोरे पैरों में चुभे थे। उसकी साड़ी में कितने ही कांटे घुसे थे। राजाई ने वहीं पानी में खड़े-खड़े कांटे निकाले। फिर अंजुरी भर-भरकर पानी पिया, चेहरा धोया, आंचल से मुंह और आंखें पोंछकर सुस्ताने के लिए पास के ही एक पत्थर पर बैठी। कमर में रखे बिछवे को एक बार हाथ से टटोल लिया और फिर निःसंकोच बैठकर वह सुस्ताने लगी। उसे गांव में जाने की जल्दी नहीं थी। वह जरा अंधेरे में ही गांव में घुसना चाहती थी। छोटे से गांव में नया कोई आया कि आसपास के कितनों की ही आंखें उस पर टिकती हैं। फिर पूछताछ नाम गांव व काम···। इस झंझट से वह बचना चाहती थी।

अब पहाड़ी पर से चौपाये लौट रहे थे। गौएं भरे पेट जुगाली करतीं आराम से उतर रही थीं। राजाई को वह सारा परिसर सुहावना लग रहा था। सामने मुरुमदेव की ऊंची भीत-सी पहाड़ी। उसके शिखर पर नीचे टिकता-सा सूर्य-बिम्ब। उसकी उतरती हुई धूप जंगली नाले के आसपास के ऊंचे पेड़ों पर टिकी थी। नीचे उतरते पशुओं से उड़ी धूल लाल चादर-सी हवा में छाई थी। उनमें से चलते पशुओं की कतार लाल-पीली लग रही थी। राजाई के सामने से ही पशु गांव में जा रहे थे। थोड़ी देर में सूर्य डूब गया था। अंधेरा पहाड़ी से नीचे उतरने लगा। राजाई उठी और उन पशुओं के पीछे-पीछे वह गांव में घुसी।। जानकी ने उसे गांव की माहिती ठीक दी थी। राजाई को कहीं कुछ पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। गांव में कतार में खड़े खपरैलों में से होती हुई वह जा रही थी। उसकी साड़ी पुरानी थी। उसकी चाल में भी सहजता थी। इस कारण किसीकी नजर उस पर टिकी नहीं। थोड़ी ही देर में वह ननावरे देशमुख के बाड़े के सामने जा पहुंची। उस बाड़े के पास ही जानकी का

छोटा-सा खपरैल था। उस खपरैल के एक ओर खूंटे पर गाय बंधी थी। जानकी गाय दुह रही थी। एक छोटा लड़का छोटे बछड़े को थामे था। वह छोटा बछड़ा खिंचकर दूध पीने को झपटता। जानकी उसे पुचकारती बोली—"बस, यह गड़वा भर दे—फिर सारा तुझे ही तो पीना है।" राजाई ने देखा तो वह उस लड़के के पास गई। बोली—"उसका जेवरा मुझे दे—यह बछड़ा तुझसे नहीं थमेगा।"

कुछ-कुछ पहचानी-सी आवाज सुनकर, चकित होकर जानकी ने राजाई की ओर आंख उठाकर देखा। अब तक कुछ अंधेरा हो गया था—राजाई को पहचानने का प्रयत्न कर रही थी। क्षण भर देखकर भी जब वह उसे पहचान नहीं सकी तब दूध दुहते हाथ को वहीं रोककर बोली—"कौन है ?"

राजाई बोली—"कौन क्या ? मैं हूं, सखू पार्वती।"

अब जानकी ने उसे पहचान लिया था।

उसने दूध दुहना छोड़ दिया और उठकर राजाई के पास जाकर बोली—"दैय्या री तू और इस समय ! और कैसे आयी ? क्यों ?"

"क्यों ? भाभी के घर आने के लिए भी कभी बुलावे की जरूरत पड़ती है या किसीका डर होता है ? या फिर किसी मुए खान को···।"

अब तक जानकी दूध का गड़वा एक ओर रखकर राजाई की दोनों हाथों से कसकर पकड़े उसे छाती से लगा चुकी थी। दूसरे ही क्षण उसने राजाई की आंखों में झांका—और उसकी छाती में चेहरा डुबोकर रोने लगी। राजाई उसकी कंपती पीठ पर हाथ फेर रही थी। थोड़ी देर रुककर राजाई ने जानकी से कहा—"ऐसा भी कोई करता है ?"

अभी भी जानकी का जी हलका नहीं हुआ था। वह अभी भी राजा के आंचल में मुंह ढांपे रोए जा रही थी। अब राजाई उससे बोली, "बस भी करो। मुझे भूख लगी है।"

जानकी ने ऊपर मुंह कर पूछा—"तुम कहां से आ रही हो ?"

"वह सब कथा फिर बताऊंगी···टुकड़ा खाते-खाते।"

"तो, दिनभर में तूने कहीं खाया-पिया नहीं।"

"ऐसा क्यों, पर अब संध्या के समय भी नहीं करूं ?"

अब तक जानकी सम्भल चुकी थी। उसने दूध का गड़वा हाथ में लिया और राजाई को भीतर ले जाती हुई बोली—"जरा आराम करो तबरोटी सेकती हूं।"

दोनों ही छोटे लड़के को भूल चुकी थीं। वह दोनों को अचरज से देख रहा था।

जानकी बोली—"तू बछड़े को छोड़ दे और अपने घर जा।" तभी राजाई ने कहा, "नहीं, नहीं। इसे भी रहने दे, यह भी हमारे साथ टुकड़ा खाएगा? क्यों रे? टुकड़ा खाएगा?" लड़के ने शर्माते हुए गर्दन झुका ली। राजाई ने उसे पास खींच लिया और प्यार करती हुई भीतर ले गई।

तीनों खपरैल में घुसे, भीतर जाते हुए जानकी बोली—"कितनी बड़ी हवेली थी, पर दावेदारों से देखी न गई। आज अब इस टूटे खपरैल में तुम्हें बिठा रही हूं—इसे···।" कहते-कहते जानकी का गला रुंध गया। पीछे आती हुई राजाई बोली—"मेरी प्यारी बहना! माउ साहिबा कहती हैं—मन बड़ा रहे तो झोपड़ी भी महल हो जाती है। पर मन ही छोटा हो और खिन्न रोता रहे तो महल में भी वह तरसता ही रहेगा।" अब तक जानकी ने राजाई के लिए एक गूदड़ी बिछा दी थी। और दीये की बाती को ठीक करती बोली—"और, मेरे भाई को साथ नहीं लाई?" हँसती हुई राजाई बोली—"उनका आना इतना सीधा है? उनके पैरों में बेड़ियां, हाथों में हथकड़ियां, सभी ओर कितने ही पहरेदार हैं। भीतें ऊंची-ऊंची। मजबूत सरियों के दरवाजे। फिर बड़ा-सा दरवाजा, उसपर बित्ते-बित्ते भर का ताला, वहां से बाहर आए तो फिर से किले की तटबंदी। यह सब लांघकर आना क्या सरल?"

जानकी कुछ समझ नहीं सकी। मटके में से चून निकालते-निकालते उसका हाथ रुक गया। वह राजाई को एकटक देखी जा रही थी। राजाई बोली—"तुम तो खड़ी कोई कहानी-सी सुन रही हो। जरा जल्दी करो, इसे भी भूख लगी है। इसका खाना हो जाने पर हम दोनों बैठेंगी। फिर रोटी खाते-खाते सब बता दूंगी।"

उसांसते हुए जानकी ने पथरौटे में चून डाला और चूल्हे में गोबरी का टुकड़ा डालकर फंका-तवा रखा। थप-थपकर चार जुनरियां सेंकी।

बच्चे को खिलाया। वह खाते ही सो गया। तब दोनों एक ही थाली में खाने लगीं।

राजाई बोली—"मैंने बच्चे को जानकर ही रोक लिया। घर जाता—कुछ बताता—और गांव में बातें होतीं, और मेरा आना पूरा गांव जान लेता।"

"अब बता भी दो। मैं अब नहीं रुक सकती।"

जरा उसांसते हुए राजाई ने कहा—"कुछ नया नहीं पर धनी किले सुभान मंगल के आदबखाने में हैं।"

सुनते ही जानकी के पेट में गड्ढा-सा पड़ा। हाथ छाती पर रखती हुई बोली—"अब क्या करूं ?"

"क्या करना है ? अभी तो खा पी लो—और कल सुबह सूरज उगने से पहले मेरे साथ चलना है।"

"कहां ?"

जानकी के कंधे पर हाथ रखकर राजाई ने कहा—"और कहां ! जहां धनी, वहीं हमारी गंगा और सरग। कहीं और हमें सरग नहीं, सुख नहीं।"

तेईस

आदबखाने का घुप अंधेरे से भरा एक छोटा-सा कमरा था। राणोजी शांत चित्त से बीती घटनाओं को सोच रहा था। वह अच्छी तरह समझता था कि उसके प्राणों पर हाथ उठाने का साहस अमीन का होगा नहीं। साथ में, मन में कहीं यह भी भरोसा जग रहा था कि बड़े महाराज शाहाजी राजे मुझे आदबखाने में पड़ा जानकर चिन्तित होंगे। दादोजी पन्त, इस खबर को जानकर तुरन्त घोड़े पर बैठकर दौड़ते-दौड़ते शिरवल के थाने पहुंचेंगे और हर प्रयत्न से मुझे छुड़ाएंगे।

पर छोटे सरकार !

वह छोटा राजा कुछ दूसरी ही माटी का बना है। छोटे राजा को यह मालूम होते ही उसकी छाती कौतुक से, अभिमान से भर जाएगी—

वे दादोजी के घोड़े की रास थामकर कहेंगे—"दादोजी ! ननावरे देशमुख को छुड़ाने का काम दौलतबंकी पर सौंपा है। वह उसमें खुद फंसा है। यह संभव नहीं। यह उसकी कोई जुगत होगी। उसे उसकी ही योजना के अनुसार काम करने के लिए समय दिया जाना चाहिए।

"···आज मैं यहां आ ही गया हूं, अब मुझे ननावरे देशमुख का पता लगाना चाहिए और हर जुगत से उसको साथ लेकर ही यहां से सही सलामत बाहर निकलना चाहिए। नहीं तो यह इतने दिन की दौलतबंकी क्या की ?"

राणोजी कमरे में खड़ा था। कमरे के मजबूत दरवाजे के सरिये को पकड़कर, बाहर के घने अंधकार में आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। धीरे-धीरे उसकी आंखें उस अंधेरे में भी कुछ-कुछ चीन्हने लगीं। दो ऊंची भीतों से बने घुमावदार गलियारे के ये कमरे थे। इन कमरों से होता हुआ, यह गलियारा भीतर दूर तक गया था। पूरे गलियारे में अनेक कमरे थे। उनमें मजबूत सरियों के दरवाजे लगे थे। इन कमरों में कहीं कोई खूंटी नहीं थी, खिड़की नहीं थी, न ही बड़ा या छोटा कोई झरोखा ही था। केवल छत के पास छोटे छेद थे। उनमें से दोपहर को कभी घाम की कोई भूली-भटकी किरण भीतर झांक जाती थी। इसके अलावा सारे कमरे कैदियों के मनों-जैसे ही अंधकार से भरे-भरे रहते थे। यह गलियारा भीतर बहुत दूर तक गया था। उसके सिरे पर दालान में एक तेल की घानी थी। घानी के बीच का मोटा डंडा ! उसे गौर से देखने पर उसमें चिपके मांस और हड्डियों के महीन टुकड़े सहज ही दिखते। अच्छी तरह देखने पर कहीं-कहीं बाल भी चिपके दिखते, उसे देखकर शरीर भय से सिहर उठता था। उसके पास ही दूसरे दालान में दूसरा यंत्र रखा दिखता। इसमें बल्लियों-जैसे मोटे दो लोहे के सरियों में आरे लगे थे। उनको घुमाने की व्यवस्था थी। उसमें फंसकर कैदी का क्या होता होगा, इस कल्पना मात्र से मन कांप उठता था।

'यहीं पर दोजख भुगतवाएंगे' हर कैदी को यह जो धौंस दी जाती थी, वह एकदम सही प्रतीत होती थी। प्राण भय से रोते-चिल्लाते कैदी को उठाकर, उन घानियों में डाल दिया जाता। दो मजबूत सिपाही घानियों के डंडे घुमाते। उस दुर्दैवी कैदी की चीत्कार उन भीतों में जब्त हो जाती।

गलियारे के कमरों में बंद कैदियों के मन उन चीत्कारों से फड़फड़ाने लगते। देखते-देखते घानी में मांस और हड्डियों के चूरे का एक लोथरा बनकर नीचे गिर जाता। और नीचे के पानी के बहाव में बह जाता। दुनिया से बेखबर उस घानी में रहती केवल उस कुकृत्य की-सी दुर्गन्ध। उस भाग में जाना भी औरों को कठिन होता। इन दो दालानों से होकर वह गलियारा और आगे गया। उसके छोर पर एक कुआं था। इसमें से पानी बहने की आवाज आती थी। यह भाग, उस किलेनुमा आदबखाने का आखिरी छोर था। इसके बाद आखिरी परकोट था।

राणोजी देर तक आंखें फाड़कर उस अंधेरे को देख रहा था। धीरे-धीरे उसे उस अंधेरे में भी कुछ-कुछ दिखने लगा। बीच-बीच में कोई पहरेदार किसी कैदी की मुस्कियां बांधें भालों का डण्डा जमीन पर पटकते भीतर आता। उसके आगे-आगे कोई कैदी बेड़ियां बजाता मशाल लिए आगे आगे चलता, केवल उस समय घने अंधेरे से भरे उन कमरों में प्रकाश को किरणें घुसतीं, पर वह भी क्षणभर। दूसरे ही क्षण वहीं घुप अंधेरा छा जाता। पीछे रहती केवल भाले के डण्डे की ठक्-ठक्, बेड़ियों की खनखनाहट। थोड़ी देर बाद किसी दरवाजे के खुलने की कर्र-कर्र आवाजें आतीं, उसके पीछे कैदी को धकेलने की धप् आवाज आती।

उन डरावने कमरों में अनेक कैदी भरे पड़े थे। किसी एक कमरे में एक कैदी बीमार था, तेज बुखार था। वह बुखार से बेहाल हो-होकर रो रहा था। दूसरा एक कैदी उस असीम अंधेरे से और उन यातनाओं से पागल हो गया था। राणोजी के पास के कमरे में एक ऐसा ही कैदी था—आंखें भीतर धंसी थीं, दाढ़ी बढ़ी थी, चेहरा भयंकर हो गया था। वह हमेशा दरवाजे के सरियों को पकड़कर खड़ा रहता। रात-बरात कोई कैदी मशाल के उजाले में भीतर आता, तब वह दांत किट-किटाता, हँसता। उस हँसने में वहां की सारी दयनीयता और भयंकरता उस दयनीय पर हँसती-सी लगती।

मुगलों के अमीन के एक थाने का वह आदबखाना था, भयंकर उदासी से भरा। मन पर काबू न कर सकने वाला व्यक्ति वहां पहुंचते ही बिन किए, बिन सोचे, बिन देखे ही अपराध कबूल करता था, हर दण्ड को भागने को

तैयार होता था। कभी कोई पहरेदारों की खुशामद करता। अनेक ने इसी भयंकरता से डरकर अपना धर्म और ईमान तक छोड़ दिया था। यह सब न हो पाने पर अनेक ने उन्हीं मजबूत सरियों पर सिर पटक-पटककर प्राण छोड़ दिए थे।

इसी सोच-विचार में राणोजी ने तीन दिन बिता दिए। एक कैदी उसका भोजन लाया करता था। दो मोटी रोटियां वह बाहर से ही राणोजी के कमरे में डाल देता। बाहर से ही उसके लोटे में पानी डाल दिया जाता। उतना अन्न और वह पानी—राणोजी जैसे-तैसे मले के नीचे उतारता और फिर से वहां से निकल-भागने के उपायों को सोचते-सोचते बाकी का दिन बिता देता।

राणोजी को अकेले छूटना नहीं था। बाजीराव का पता लगाना था और उसे भी अपने साथ बाहर निकालना था। यह काम कठिन था। आदबखाने के हर दरवाजे पर नंगी तेंगे लिए अरब पहरेदार खड़े होते थे। कमरे के हर दरवाजों से निकले भी तो बड़े दरवाजे पर कितने ही अरब पहरेदार थे। उनकी मदद के लिए हमेशा कडाबिन तैयार किए, हाथ में जलता तोड़ा लिए, दो बंरकंदाज तैयार खड़े रहते थे। इस अमोघ व्यूह से छूटना था। 'क्या जुगत हो ? कैसा हो ?' राणोजी दिन भर सोचते-सोचते थक जाता।

चौथे दिन एक अनोखी घटना घटी। जवारी की रोटियों के बदले कुटे गेहूं की, गुड़ की खीर उसको खाने में दी गई।

राणोजी ने परोसने वाले कैदी से पूछा—"राम-राम, भई ! आज यह खासा खाना कैसे आया ?"

राणोजी के खप्पर में थोड़ी और खीर डालते हुए ही उसने उत्तर दिया, "क्यों, आज ईद नहीं है ?"

"ठीक ! ठीक !! पर भई, तुमने यह गुड़ की खीर मुझे यों ही दे दी है।"

"क्यों क्या हुआ ?"

"हुआ क्या ? मैंने एक गुरु से गंडा बंधवाया है। तब से मैं गुड़ नहीं खाता। खैर ! अब यह खीर तुम्हीं खा लो। न हो तो किसी दूसरे कैदी

को दे दो।"

इन दोनों की ये बातें हो रही थीं, तभी साथ के पठान ने डपटकर पूछा—"क्यों जी ! क्या बातें हो रही हैं ?"

कैदी ने उत्तर दिया—"यह आदमी खीर नहीं खाता।"

"नहीं खाता तो मरने दो। उठ, बढ़ आगे।"

परोसदार कैदी खीर का बड़ा बर्तन उठाकर आगे बढ़ने लगा। तभी राणोजी ने उसे लंगड़ाते देखकर पूछा, "च् च् च्···तुम लंगड़ाते क्यों हो?"

"पैर में बड़ा-सा फोड़ा हुआ है। रात-रात सो नहीं पाता।" पहरेदार दूसरे किसी कैदी से बात कर रहा था।

राणोजी ने उतने में उस कैदी को अपनी कुठलिया के पास बुलाया और उसके फोड़े को दबाकर देखा। फोड़ा अभी पका नहीं था। राणोजी उससे बोला—"फोकट की दवा है, करो तो दो दिन में ठीक होगा। तीसरे दिन दौड़ने लगोगे।"

"अकउओं के पत्ते मिलेंगे ?"

"क्यों नहीं, खूब ! किले में अकउआ खूब हैं।"

"फिर भी तुम बाहर जाकर ला कैसे सकोगे ?"

"ला सकता हूं। अमीन के घर रोज कुछ कैदी काम-धाम करने भेजे जाते हैं। कल खुशामद, मिन्नतें कर चला जाऊंगा। लौटते हुए ढेर-ढेर अकउआ के पत्ते लेता आऊंगा और डाल दूंगा तेरे पास।"

"ठीक है पर वह सारा ढेर मेरे पास डालकर क्या करोगे ? मेरी क्या पूजा करनी है ?"

इस पर दोनों ही कैदी हँस पड़े। हँसने की आवाज सुनकर पहरेदार इनके पास आया।

परोसदार कैदी बोला—"यह बाबा मेरे फोड़े की दवा देंगे।"

पहरेदार बोला, "कैसी दवा ?"

राणोजी ने बताया—"अकउआ होता है। जानते हो ? उसके पत्ते सेककर इस पर बांधो, तुरन्त आराम पड़ेगा।"

"बस ! दवा तो आसान है। ठीक है। उठो आगे बढ़ो।"

दूसरे दिन पहरेदारों का मुखिया ही राणोजी को पूछते-पूंछते वहां

आया—

"अरे, यहां हकीम कौन है ?"

राणोजी दरवाजे पर ही खड़ा था। बोला—"आदाब-ए-अर्ज ! जनाब ! वैसा कोई बड़ा हकीम तो नहीं हूं। हां, कुछ जड़ी-बूटी का इलाज जानता हूं।"

"अरे, मेरी आंखें लाल हो गई हैं—जरा देखो। ए पाजी, मशाल जरा आगे कर। हकीम जी को मेरी आंखें देखने दे।"

राणोजी बोला—"जनाब, यह खराबी तो आठ-दस दिन की दिख रही है।"

सिपाही ने सिर हिलाया। बोला—"खूब ठीक फर्माया जनाब ने ! आठ दिन से तड़फ रहा हूं। कुछ दवा बताओ।"

"देखिए साहब ! कल तो नहीं, लेकिन परसों आपको आराम मिलेगा।"

"ठीक है। बताओ, बताओ।"

"तो सुनो। हर्र, बेहड़ा और आंवला को कूटो। रात-भर पानी में पड़ा रहने दो। सुबह उसी पानी से आंखें धो डालो। शहद जानते हो ?"

"हां, जानता हूं।"

"दिन भर में दो-चार बार आंखों में शहद लगाओ।"

"कैसे ?"

"सुरमा लगाते हो ! उसी सलाई से आंख में शहद भी लगा लो। अच्छे हो जाओगे।"

"चलो भई ? मालिक तुम पर रहम करें। पाजी उठ। मशाल जरा दूर रख। आंखों को ये उजाला भी नहीं सहा जाता।..."

एक दिन सायं को राणोजी से कुछ दूर कमरे का कैदी मर गया। उसे दस्त हो रहे थे। उसके नरक की सडांध फैली थी। रात में ही चार चमार कैदी आए। उन्होंने उस कमरे को खोलकर, उस कैदी के मुर्दे को उठाया। एक बड़े से पिछोरे में उस लाश को ढका और बाहर ले गए।

थोड़ी देर बाद उनमें से एक लौटा और उस कमरे को साफ करने लगा। उसकी आंखें पहरेदार की ओर थीं। उसके कुछ दूर जाने पर उसने दीया, कुछ परे रख दिया और धीरे से राणोजी के कमरे के पास आया।

बोला—"दादा ! दादा रे !!"

राणोजी जाग रहा था, वह अपने कम्बल पर पड़े-पड़े बाहर हो रही बातों को सुन रहा था। उसका विचार-चक्र जोर से घूम रहा था, हकीम के रूप में उस आदबखाने में जो साख बढ़ रही है, उसका क्या उपयोग हो। राणोजी इसी का विचार कर रहा था। तभी उस चमार की आवाज उसके कानों पर पहुंची। वह उठकर उसके पास आया—

"कौन है, जी?"

"जरा धीरे बोलो। पहरेदार के कान तेज हैं।"

अब राणोजी धीमी आवाज में बोलने लगा—

"क्या काम है बाबा ?"

"मुझे बाबा मत कहो। मैं चमार हूं शिद्दू।"

"ठीक है, पर काम क्या है वह तो बोलो !"

"दाद के खता हो गए हैं।"

"कहां है, देखूं जरा !"

"मुझे नहीं।"

"तब किसे ?"

"मेरी घरवाली को।"

"अरे, वह कहां है ?"

"मुझे यहां डाल रखा है। तभी से वह यहां इस गांव में मजदूरी करती है। आदबखाने में कोई कैदी मरता है, इसकी बाट देखती रहती है। जब कोई यहां मरता है तब यहां के कैदी उस मुर्दे को बाहर निकालते हैं। तब बाहर के चमार उस मुर्दे को खींचकर नदी पर ले जाते हैं, वहीं पर उसको गति देते हैं। कभी-कभी बाहर के चमारों को भीतर कमरे तक भी आना पड़ता है—मेरी घरवाली इस मौके की ताक में रहती है। तब उससे भेंट भी हो जाती है।"

राणोजी उस चमारिन की हिम्मत पर ढंग था। बोला—"जमादार जी ! तुम पर तुम्हारी घरवाली की मुहब्बत न्यारी ही है।"

"कहां की मुहब्बत जी ! पर मेरे पीछे बेहाल है। यह सही है।"

इसी बीच में, दूर से किसी पहरेदार के डण्डे की आवाज कानों में

आयी। शिद्दू फुर्ती से वहां से खिसककर उस कमरे में गया और अपना काम करने लगा। धीरे-धीरे वह आवाज दूर जाकर खामोश हो गयी—तब शिद्दू फिर से राणोजी के कमरे के पास आया।

राणोजी ने उससे पूछा—"तुम्हें यहां क्यों लाए हैं?"

शिद्दू ने डरते-डरते बताया—"वैसे कोई बड़ा कारण नहीं है।"

"तब भी, कुछ तो हुआ ही होगा?"

"एक दिन मेरी घरवाली सिर पर घास की गठरी लेकर आ रही थी। गांव के अमीन ने उसके बाल पकड़ लिए। मुझे मालूम होते ही, मैं वहां पहुंचा। मैंने उसका हाथ ऐसा खींचा कि उसका हाथ ही उतर गया। आस-पास के लोग दौड़कर आए, उसे बचाया, नहीं तो मैं उसकी गरदन मरोड़ देता।"

राणोजी उसकी हिम्मत पर खुश होकर उसको पास खींचकर उसकी पीठ पर हाथ थपथपाने लगा। शिद्दू चमार को संकोच होने लगा।

राणोजी समझ गया कि शिद्दू की घरवाली उस पर क्यों कर इतना जी लगाती है। वह शिद्दू से बोला—"शिदानाक! तेरी घरवाली तो शेरनी है।"

"जी! मुझे शिदनाका—मत कहो।"

"क्यों?"

"यह तो मेरे बाबा का नाम था।"

राणोजी को कुछ याद आया।

"क्या शिदनाक तेरे बाबा का नाम था?"

"जी!"

"कौन-सा गांव है तेरा?"

"कानन्द-घाटी में आसवली गांव का हूं मैं।"

राणोजी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसे उसीके गांव का आदमी मिला था। आवेश में राणोजी ने उसके कंधे पर अपना हाथ कस लिया। इतने में दूर पहरेदार के भाले की ठक्-ठक् सुनाई दी। शिद्दू अपने काम की ओर जाने को मुड़ा।

राणोजी ने उसे कहा—"शिदबा, फिर से आओगे। तब तुझे दवा भी

बताऊंगा।"

"जी, कहते हुए शिदवा काम पूरा करने पास के कमरे में घुस आया। एक बार फिर से उसके सफाई के काम की आवाज आने लगी। तभी मशाल हाथ लिए पहरेदार आया--"क्यों बे ! क्या रेंग रहा ? जल्दी काम निपटा। जरा से काम के लिए इतनी देर। पाजी कहीं का !"

शिदवा नीचे गर्दन झुकाए चुपचाप अपना काम करता रहा।

चार दिन और बीत गए। इन चार दिनों में कितने ही लोग राणोजी के कमरे के पास आते, अपने दुःख बताते, राणोजी मुंह में आई दवा का नाम बताता, लोग दवा की खुशी में वहां से टरक जाते।

राणोजी कम्बल पर पड़ा-पड़ा सोच रहा था—

'शिदवा ! राणोजी के चाचा ने और चित्राव बामन ने उसे आसवली गांव की पुरानी कथाएं सुनाई थीं। उनमें शिदवा का नाम कई बार आया था। यह शिदवा उसका नाती। कितना भाग्य ! ऐसे आड़े समय में अपने गांव का एक आदमी मिला। उसे बाहर जाने का मौका मिलता है, बाहर के लोगों से वह मिल सकता है, बोल सकता है—यह कितना सुखद संयोग। शिदवा भी हिम्मती है, अमलदार का हाथ तोड़कर यहां आया है, कोई चोर नहीं है। अब चिन्ता यही है कि उससे फिर से मिलना कैसे हो ?'

आज पांचवां दिन। सूर्य ढलने लगा। राणोजी की कोठरी के छेदों ने आंखें बंद कीं। तभी आदबखाने के गलियारे में से चार-पांच पहरेदार आए। उनके साथ रोता, चिल्लाता, मिन्नतें करता--आ, आ, करता एक कैदी खींचा जा रहा था। उसकी उस दीनावस्था को देखकर, राणोजी की छाती भी धक् धक् करने लगी। वह कोठरी के दरवाजे के सरियों को थामे उस नाते दुर्दैव को देख रहा था। गलियारा आगे घूम गया था। राणोजी को अब कुछ भी नहीं दिख रहा था। तब भी राणोजी की आंखें उस ओर थीं। कान दूर तक सुनने की कोशिश कर रहे थे। तभी भीतर से लोहे के रहट के घूमने की घर्र-घर्र सुनाई दी। साथ ही दीन, प्राणों को थर्रा देने वाली, एक चीख। दूसरे ही क्षण सब शांत। उस गलियारे में अब केवल उस रहट की घर्र-घर्र घूम रही थी। थोड़ी देर में पहरेदार लौट

गए। राणोजी उस घटना से भूला-बिसरा, अभी भी उसी अवस्था में खड़ा था। तभी उसे आवाज सुनाई दी। चकित होकर उसने ऊपर देखा।

हाथ में मशाल लिए शिदवा खड़ा था, बोला—"हुजूर, मैं आ गया हूं।"

राणोजी ने सरियों में से हाथ निकालकर उसकी बाजू पकड़ ली।

पूछा—"क्या मर गया ?"

"जी !"

"कौन था ?"

"पता नहीं।"

राणोजी उस विचित्र संवेदना में खोया क्षण भर चुप रहा। दूसरे ही क्षण सचेत होकर बोला—"शिदवा ! आज तुम जाओ। आज मेरा मन इस घटना खराब से हो गया है। मैं आज कुछ नहीं बोल सकता और कोई पहरेदार भी आएगा।"

शिदवा बोला—"हुजूर, आज इधर कोई भी आएगा नहीं। उस घानी में से सारा कचरा और मांस धोने के लिए बहुत समय लगेगा, यह सभी जानते हैं। और यह काम मुझे ही करना है। मेरी घरवाली दरद से बेहाल हो रही है।"

यह बात राणोजी के कानों तक पहुंची ही नहीं।

राणोजी ने शिदवा से पूछा—"शिदवा, वह कुआं कितना गहरा है ?"

"हुजूर ! वह कुआं नहीं है। वह एक गहरा गड्ढा है। नदी की एक छोटी नहर नीचे से यहां तक लाई गई है। वह आगे फिर से गढ़ी के उस पार नदी से जोड़ दी गई है। यह मांस और हड्डियों का लोथरा उसमें से नदी में बह जाता है।"

"उसमें नीचे उतरने के लिए कोई रास्ता भी है ?"

"है तो, नीचे एक लोहे की जाली है। भीत में मजबूती से जमाई गई है।"

क्षण भर राणोजी कुछ सोचने लगा। फिर बोला—"शिदवा ! तुमने मुझे पहचाना नहीं।"

"नहीं जी ! पर तुम कोई बड़े कैदी हो, इतना सभी जानते हैं।"

"तुम आसवली के सुलतानजी देशमुख को जानते हो ?"

"क्यों नहीं, वे तो कभी के मर गए। तब मैं छोटा सा बच्चा था ! सुना था कि अब तो उसका घर पूरा ही टूट गया है। उसके भाई को लोगों ने खतम कर दिया। उसकी घरवाली पता नहीं कहां, किसके घर गई। खाता-पीता घर राखकर दिया इन भड़ुओं ने मेरे बाबा और सुलतानजी गहरे दोस्त थे।"

राणोजी ने शिदबा की बाजू कसकर धीरे कहा, "शिदबा! मैं कर्यात-घाटी के जागीरदार का दौलतबंकी हूं और उस सुल्तानजी का पूत हूं।"

"हे भगवान ! तो वे तुम्हीं हो।"

चकित होकर शिदबा ने मशाल दरवाजे के पास की और राणोजी को गौर से देखने लगा और उस निर्जीव सरियों पर सिर पटक-पटककर रोने लगा। राणोजी ने उससे कहा, "पगले ! यह क्या कर रहा है ?"

उन सरियों में से राणोजी की ओर देखकर, शिदबा बोला—"हुजूर, मेरे जीते जी आपकी यह दशा !"

"चुप ! चुप ! ! तुझे घरवाली के लिए दवा नहीं चाहिए ? आप—पर सारा घर कुर्रबान है।"

"अरे ! अरे ! ! गड़बड़ मत करना। अभी कुछ-का-कुछ कर बैठोगे तो सारी बातें खत्म हो जाएंगी।"

"ठीक है हुजूर ! अब आप जहां हुकुम देंगे, वहीं में अपनी कुरबानी का कर दूंगा।"

"ठीक है, पर जरा सबर। यहां अवसरी गांव का कोई बाजीराव ननावरे है क्या ! इसका पता लगाना है।"

"पता लगाता हूं।"

"और, उसे यह भी बताना है कि तैयार रहो यहां से निकल भागना है। और सुन ! अपनी घरवाली को बता दे कि अभी तो करंजी का तेल लगाती रहे। उससे कुछ-कुछ ठीक हो जाएगा। बाद में उसकी दवा माउ साहिबा करेंगी।"

"माउ साहिबा ?"

"हैं ? फिर कभी बताऊंगा। भाग ! भाग ! भाग जा ! !

चौबीस

राजाई और जानकी शिरवल गांव के पास आ पहुंची थीं। अब सूरज नीचे उतर रहा था, उसकी अलसाई किरणें इधर-उधर पेड़ों पर अटक-अटक रही थीं। गांव की डगर पर घर लौटते लोग दिख रहे थे।

घास की गाड़ियां सुभान मंगल की गढ़ी की ओर जा रही थीं। उनकी एक लम्बी कतार धीरे-धीरे रेंगती आगे बढ़ रही थी। बरसात के लिए गढ़ी में घोड़ों के लिए घास की गंजियां रची जानी थीं। आए दिन उत्तर की सेना इधर से आती-जाती रहती, उनके लिए भी चारे की व्यवस्था करनी होती। इसीलिए सुभान मंगल की गढ़ी में चारों ओर से घास लाया जा रहा था। वे घास की गाड़ियां उन्हीं में से थीं। इन गाड़ियों के पीछे गढ़ी के आठ-दस सिपाही भी थे।

सिपाही ही गढ़ीवालों को गालियां दे-देकर गाड़ियों को जल्दी-जल्दी बढ़ाने के लिए कहते। गाड़ी वाले गालियों को सुनने के आदी हो गए थे। वे मुस्कारा रहे थे, उनकी गाड़ियां उसी टेक में चल रही थीं।

गाड़ियों की यह कतार रेंगती इन दोनों के पास आई। दोनों ही डगर पार कर एक खेत की मेड़ पर, खेत की ओर मुंह करके खड़ी हो गईं। गाड़ियां उनके पास से धूल उड़ाती चली गईं। उनके पीछे-पीछे सिपाही भी गंदी-फूहड़ बातें कहते चले गए। अब उनका रास्ता साफ हो गया था। वे नीचे उतरने ही वाली थीं कि खेत की एक घटना ने उन्हें चौंका दिया।

सामने एक खेत में एक सुन्दर स्वस्थ लड़की सूखी लकड़ियों का गट्ठर बांध रही थी। पास के खेत की छोटी-सी बाड़ पर दूसरी एक गोरी एक हाथ पीठ पर मोड़कर, दूसरे हाथ की अंकड़ी से ऊंचे बमूर की सूखी टहनी खींच रही थी। वे दोनों ही सुन्दर थीं। दारिद्रय ने उनके शरीर पर अपना भरा पूरा हाथ फेरा था। उनका सलोना सुन्दर शरीर चिन्धियों से ढका था। उन्हीं चिन्धियों को जैसे-तैसे जोड़कर वे अपनी आबरू ढके थीं। फिर भी इधर-उधर से उनका उफनता शरीर बाहर निकल-निकल आता। पर

दोनों ही अपने कामों में इतनी उलझी थीं कि उनके शरीर को कोई ललचाई नजरों से देख रहा है, इस ओर उन दोनों का ही ध्यान ही नहीं था।

तभी घास की गाड़ियों के साथ के एक जवान सिपाही ने डगर छोड़कर अपना घोड़ा उस खेत की ओर बढ़ाया। देखते-देखते वह उन दोनों के पास जा खड़ा हुआ। उसे आया देखकर, गट्ठर बांधकर एक लड़की जल्दी-जल्दी पैर उठाकर आगे बढ़ने ही वाली थी, तभी उसका आंचल छाती से नीचे गिरा।

उस सिपाही ने उसे रोका। बोला—"प्यारी इतनी भी क्या जल्दी है! बेचोगी भी?"

डरी सहमी, उस लड़की ने बुदबुदाते हुए कहा—"नहीं, मुझे बेचना नहीं है।"

वह सिपाही घोड़ा रास्ते में अड़ाकर बेशरमी से बोला—"खैर, वह नहीं तो और तो तेरे पास बहुत है। बोल बेचेगी कि···"

इधर लड़की डरकर जमीन में गड़ी जा रही थी। उसने इधर-उधर देखा। आसपास कोई भी आसरा देने वाला, बचाने वाला आदमी उसे दिखा नहीं। अब वह कांपने लगी थी।

सिपाही ने घोड़ा उससे सटा दिया। बोला—"अरी, जवान हुस्न वाली! कुछ तो बोल।"

यह कहते-कहते वह घोड़े से नीचे उतर पड़ा और झटके के साथ उसने उसका हाथ थाम लिया।···इधर राजाई इस घटना को देख रही थी।

उस सिपाही को उस लड़की का हाथ पकड़ते देखते ही वह गरज उठी और बिजली की फुर्ती से कमर का बिछवा खींचती हुई दौड़ती-दौड़ती उस ओर भागी और चिल्लाई—"तेरा मुर्दा गाड़ूं भड़वे!"

राजाई के उस भयंकर रूप को देखकर पहले तो वह सिपाही घबरा उठा फिर सम्भलकर राजाई से बोला—"या खुदा! यह भी खूब! आज, आसमान फाड़कर हूरों की टोली ही उतर आई है क्या? यह तो छड़कती-गरजती आ रही है!"

पर राजाई ने उसके इन शब्दों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया

और आगे बढ़कर उसको झकझोर दिया। सिपाही एक ओर जा गिरा। उसे गिरा देखते ही राजाई ने उसको कसकर पकड़ लिया और उस जवान लड़की से बोली—"पैर में जूतियां हैं या नहीं! निकाल, मैं पकड़े हूं और मार इस कलमुंहें की नाक पर। चल, उठा। उठा अपनी जूती! चलने दे अपने हाथ।"

राजाई की आवाज में ऐसा जोश था कि वह लड़की भी हिम्मत से आगे बढ़ी और उसने पैरों से जूतियां निकालकर हाथ उठाया।

तभी सहमा-डरा वह सिपाही बोला—"क्या कर रही है डायन!" उसकी इस बातों से वह लड़की भी थोड़ी रुकी तभी राजाई बोली—"तू सोच मत। मार-मार।"

तब तक दूसरी गोरी भी खेत की बाड़ से उतरकर दौड़ी-दौड़ी पास आ गई। अब क्या था! वहां अब ये चार थीं और वह सिपाही अकेला। और फिर उस लड़की ने दांत-ओंठ खा-खाकर उस सिपाही पर जूतियों की मार लगाई। तभी दूसरी गोरी ने हाथ की आंकड़ी का डण्डा उसके सिर पर दे मारा और बोली—

"धत् तेरी! अकेली स्त्री को देखकर उसे छेड़ते हो···। मेरा दूसरा हाथ खतों से भरा है, नहीं तो तेरी यह मनहूस सूरत दोनों हाथों से नोंच लेती। और ये तेरी दाढ़ी खींचकर उखाड़ देती, भड़ुआ कहीं का!"

उन दोनों ने उस सिपाही को ऐसी मार दी कि वह अधमरा और बेहाल हो गया। उनकी उस गड़बड़ को, हल्ले और ऊधम को सुनकर दूर-दूर खेतों में काम करते कुछ आदमी दौड़े आए। उन्हें देखकर राजाई उनसे बोली—

"ले जाओ, इस बन्दर को, अमलदार की कचहरी में। इसकी यह मनहूस सूरत भी दिखाओ और बताओ कि इस लड़की ने इसे मारा है। तू भी जा इनके साथ। और सब बताना क्या-क्या हुआ है।"

राजाई की बातों में ऐसा आवेश था कि उसे सुनकर उन आदमियों ने उसकी मुसकिया बांधी और तब वे सब गांव की ओर चल पड़े।

राजाई अपना बिछवा अपनी कमर में खोंसती हुई बोली, "मुर्दार, मुए!"

दूसरी लड़की राजाई को देखकर हैरान थी। वह राजाई से बोली—"क्यों री! तू है कौन? कहां की है! तू भी खूब आई समय पर।"

राजाई उसी गुस्से में बोली—"है उस ओर ऊपर पहाड़ पर असावली गांव की।"

उसके उस उत्तर को सुनकर गोरी अंकड़ी जमीन पर ठेककर राजाई को गौर से निरखती रह गई।

आसमान में बादल छाए थे। सारा वातावरण हुमस से भरा था। पेड़ों के पत्ते भी हिलडुल नहीं रहे थे। राणोजी अपनी कोठरी में कम्बल पर पड़े-पड़े सोच रहा था—'आगे?'

तभी पहरेदारों का जमादार की कोठरी के पास आकर राणोजी से बोल—

"अरे भई, उस कैदी को देखो, कुछ जड़ी-बूटी दो।"

वह रोगी मरणासन्न था। उसकी ऊपर की सांस चल रही थी। राणोजी सहज ही बोला—"नहीं खान साहब! बिना देखे यह नहीं हो सकता उसकी नब्ज देखनी होगी। तब बता पाऊंगा।"

"उं! मरने दो साले को। इतनी दिक्कत कौन उठाए!"

पहरेदार के बोल सही हुए। वह कैदी दूसरे दिन के उगते-उगते ही ठण्डा हो गया।

आदबखाने के उन कमरों की चाबियों का गुच्छा उसी हवलदार के पास रहा करता था। उसे वशीकरण की जड़ी-बूटी की जरूरत थी। वह राणोजी को खुशकर उसी से यह काम निकालना चाहता था। इस दृष्टि से उसने शिद्दू को राणोजी के पास भेजा। कहा था—

"तू हमारा इतना काम कर। कभी हम भी तुम्हारा काम करेंगे।" शिद्दू हवलदार के उस नाजुक काम के लिए राणोजी के पास पहुंचा।

आज राणोजी का मन उदास था। उसके सामने एक निरपराध कैदी दवा-दारू के अभाव में मर गया था। तभी शिद्दू कोठरी के दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ। आज उसे किसी पहरेदार की दुत्कार का भय नहीं था। उसे हवलदार ने जो भेजा था अपने काम के लिए।

शिद्दू ने खड़े-खड़े ही राणोजी को सारी बातें समझा दीं। राणोजी ने

पड़े-पड़े ही उत्तर दिया—"उसे कहो कि मैं ऐसा खराब काम नहीं करता।"

शिद्दू ने राणोजी को समझाया—"उसका यह काम करो। उसे कुछ जड़ी-बूटी दो तो वह भी हमारा कुछ काम जरूर करेगा।"

राणोजी ने कुछ सोचा। फिर बोला—"शिद्दू जी वह कैदी तो मर गया। उसे कब उठाया जाएगा ?"

"यहां चमार चार-पांच ही हैं। और वे इस समय थानेदार के घर पर काम करने गए हैं।"

"तो वह यहीं सड़ेगा क्या ?"

"नहीं जी ! बाहर से कुछ आएंगे।"

"चमार ही।"

वे नहीं तो उनकी घरवालियां।"

"पर शिद्दू तेरी घरवाली भी तो है बाहर !"

"है, पर···।"

"पर क्या ? अरे, उसे ही क्यों नहीं बुलाता भीतर ! भाग, देख, कुछ-कर बाहर जा सके तो जा, उसे बता कि खुद ही आ।"

शिद्दूजी ने भी कुछ सोचा। बोला—"देखता हूं।"

"पर इसका काम ?"

"उसे भी बता दे कि कल बताऊंगा।"

उस दिन दिन भर वह मुर्दा उसी कमरे में पड़ा रहा। दीया-बत्ती हो जाने पर आदबखाने में कुछ लोगों की बातचीत की आवाज आने लगी। पीछे कुछ प्रकाश दीखा, साथ ही पद-चाप भी सुनाई दिया। इस हलचल को सुनकर राणोजी अपने कम्बल से उठा और दरवाजे के सरियों को पकड़कर बाहर झांकने लगा।

तीन स्त्रियां घुमावदार गलियारे में आ रही थीं। उनके साथ दो धेड़ भी थे। ये पांचों ही उस मुर्दे को उठाने आए थे। उनके पीछे बेड़ियों की झनझन करता शिद्दू चमार भी आ रहा था। इन सबके पीछे दो पहरेदार थे। एक पहरेदार शिद्दू पर बरस रहा था—

"तू तो निकम्मा ही रहा, साल्ला ! इन औरतों को लाया है। ये मुर्दे को क्या उठाएंगी !"

"उठाएंगी। आदमी मिले ही नहीं तो किसे लाता! अब रात भी तो उतर आई थी।"

अब तक ये सभी राणोजी के कमरे के पास से होकर आगे बढ़ रहे थे। राणोजी उनको देखकर अवाक् रह गया। उसकी अपेक्षा से भी कुछ और अधिक हो रहा था। उसका मन खुश हो उठा।

राजाई को देखकर उसका गला भर आया।

बड़े जतन से उसने अपने पर काबू किया। क्षणभर सोचकर उसने निर्णय लिया।

उसके पास से जाने वाले पहरेदार से उसने पूछा—"क्यों मिया साहब! उसको अभी ही ले जाएंगे ना?"

"हां भई, हां। अब गंदगी हट जाएगी। अब तो खुश हो। नाचो, गाओ, और खुश रहो।"

राणोजी हाथ के चांदी के कड़े को सरिये पर बजाते हुए ताल देकर गाने लगा—

" कोई छैल छबीली, गांव की
गोरी नवेली प्यार की
आई अमां की रात में
मिलने,सजन से रे ऽ ऽ! आधी रात रे···रे···रे।
जमुना के तीरे, रे···रे···रे।"

उसका गाना सुनकर—दूसरे कमरे के बंदी भी झूम-झूम उठे। उन्होंने आवाजें दीं—"वाह! वाह!! होने दे रे एक बार और।"

राणोजी गा रहा था—

"बाट जोहती खड़ी, खड़ी।
किसी निठुर सजन की रे···रे···रे "

तभी पहरेदार चिल्ला उठा—"ए, ज्यादा शोर नहीं।"

थोड़ी देर में वह भीड़ वापस लौटी। अबकी बार उनके बीच में एक टूटी खटिया पर वह मुर्दा भी था। राणोजी के कमरे के पास से वे सारे ही धीरे-धीरे गुजरने लगे। तब फिर से राणोजी गाना गाने लगा—

" रात अमां की छाई रे

फिर भी खड़ी वह गोरी रे !

वाट जोहती निठुर सजन की रे···रे।"

अब तो पहरेदार भी दाद देने लगे। बोले—"वाह रे, इश्कबाजी तो तुम भी जानते हो !"

इस हल्ले में, उन स्त्रियों में से एक ने राणोजी की ओर देखकर गर्दन झुकाकर संकेत दिया था !

अमावस की सुबह शिदबा ने आकर राणोजी से पूछा—"तो उस गधे को क्या बताऊं ?"

"उसे बता दे कि आज अमावस है। आज एक नीबू, कुछ लाल मिरची, कुछ उड़द यह सब सामान लेकर आओ। रात को पहले पहर मुझे खुले आकाश के नीचे जाकर मंत्र-जाप, पूजा करनी पड़ेगी, फिर काम हो गया समझो।"

"दादाजी ! एक और बता दूं ?"

"इस काम से जुड़ा न हो तो अभी बताने की जल्दी नहीं है। फिर कभी बताना। मैंने बताया है, वैसा सब होना चाहिए—रात का पहला पहर न चूके, और यह सब होशियारी से करना है। ननावरे देशमुख का पता लगाया क्या ?"

"जी !"

"तो फिर, अब उस उल्लू खान को बता दो कि साथ किसी दूसरे को न लाएं। लाया तो मेरा मंत्र और पूजा सारी बेकार जाएगी।"

"ठीक, यह भी बता दूंगा।"

शिदबा लौट गया।

अब राणोजी अपने कम्बल पर पड़े-पड़े योजना बना रहा था। पहर बीते वह उल्लू पहरेदार आएगा। उसे चुप कर सुलाना कुछ कठिन नहीं होगा। यह सब जम गया तो आगे का काम करते-करते आधी रात बीत जाएगी। नदी पार पहुंचते ही बिना रुके, पूना की ओर दौड़ चलेंगे। नदी के पार चौकियां-पहरेदार भी हो सकते हैं। खैर, जो भी हो। देखा जाएगा। नदी पार करने पर उधर शिवापूर सात-आठ कोस रहा। घोड़े होते तो ठीक होता। नहीं हैं यह भी ठीक ही है। घोड़ों की टापों की आवाजों से काम

खराब ही होता। दौड़ना ही ठीक रहेगा। सवाल है— बाजीराव का। वह बीते कितने ही दिनों से आदबखाने में पड़ा-पड़ा बेहाल हो गया होगा।

'वह दौड़ सकेगा कि नहीं ?'

—यह सोचते-सोचते ही वह दिन डूब गया।

राणोजी अब सजग हो गया था। रात का खाना आ चुका था। राणोजी ने रोटियां बांध लीं, रास्ते में उनका उपयोग हो सकता है। बीते कितने ही दिनों से कमरे में पड़े रहने के कारण सारा शरीर जकड़ गया था। धीरे-धीरे पहरेदारों का आना-जाना रुक गया। अब राणोजी ने अपने कमरे में ही, दण्ड-बैठकें लगाना शुरू कीं। सामने के कमरे के बंदी को उसकी जोर से चलती और फूली सांस सुनाई दी तो बोला—"भई वाह ! आज क्या जोर निकाल रहे हो ?"

राणोजी ने भी उत्तर दिया—"हां भई ! इस अमीन के हाथी से कुश्ती तय की है। उसकी कुछ तो तैयारी करनी ही चाहिए। क्यों ?"

"हां भई ! यह भी ठीक ही है। चलने दे मेरे शेर !"

रात का पहर हो गया। राणोजी अब तैयार था। वह अपने कम्बल पर पड़े-पड़े बाहर की आहट ले रहा था। थोड़ी ही देर में हाथ में छोटा-सा दीया लेकर शिदबा और उसके पीछे पहरेदार आए। राणोजी ने जानकर उस ओर ध्यान नहीं दिया।

पहरेदार ने उतावली में—राणोजी को आवाज दी—"क्यों भई, उस्ताद, चलोगे नहीं ?"

"खान साहब ! यह इश्कबाजी का काम पूर्णमासी को ठीक होता है। पन्द्रह रोज और ठहर जाओ तो···"

"देखो यार ! इतना सबर नहीं है—कहीं तब तक वह चिड़िया उड़ गई तो ? उठो आज ही···"

राणोजी अनमन दिखाते हुए उठा।

"अच्छा भई, तुम्हारी बात सही। पर सब सामान तैयार है ? आज तुम हमारा भी इलम देखो।"

"हां, भई देखूंगा—उठो तो···।"

राणोजी उठ खड़ा हुआ। राणोजी के देखते-देखते पहरेदार ने चाबियों

का गुच्छा निकाला और उसमें से ढूंढ़कर एक चाबी लगाकर, राणोजी का कमरा खोल दिया, राणोजी आगे बढ़ते-बढ़ते रुक गया। बोला—"ये बेड़ियां ?"

पहरेदार चकित होते हुए बोला—"ये तो रहेंगी ही !"

"तो रहने दो। लोहा पहनकर यह काम नहीं किया जाता। करूं भी तो इसमें से सारे-का-सारा इलम खतम।"

उल्लू बने हुए पहरेदार ने कुछ सोचा और कमर में से दूसरी चाबियां निकालकर राणोजी की बेड़ियां खोलने लगा। बोला—"मालिक के नाम पर ये उतार रहा हूं। पर फिर से पहननी होंगी।"

अब तक राणोजी के हाथ-पैर खुल चुके थे। उसने बेड़ियां निकलते ही चीते की-सी फुर्ती से उस पहरेदार को दबोच लिया—उसकी पगड़ी को ही खोलकर उसके मुंह में ठूंस दिया—उसकी गठरी बांध ली और कम्बल पर पटक दिया—बेड़ियों का एक जमकर प्रहार किया—अब वह पहरेदार चार-छः घण्टों के लिए सो गया था। ध्यान रखने पर भी इस-सब गड़बड़ी की कुछ तो आवाज हुई ही। तभी पास की कोठरियों में से किसी कैदी ने पूछा—"क्या बात है खानसाब ?"

राणोजी ने आवाज बदलकर कहा—"कुछ नहीं। गड़बड़ करता था सो साल्ले को जरा सबक दे दिया। सोओ, तुम भी।"

"हां हां, हां—ठीक किया।"

शिदबा और राणोजी उस घुमावदार गलियारे के घने अंधेरे में आगे बढ़ रहे थे। एक घुमाव के बाद टिमटिमाता एक दीया दिखा। उसके प्रकाश में ये दोनों आगे बढ़े।

राणोजी ने शिदबा को पूछा—"ननावरे की कोठरी कहां है ?"

"उस दीये से चौथी।"

"दाएं या बाएं—"

"दाईं···नहीं···"

राणोजी ने दाईं कोठरी में आवाज दी—"ननावरे!" अनपेक्षित उत्तर मिला—"यहां कोई ननावरे नहीं है।"

राणोजी ने तुरन्त बाईं कोठरी में आवाज दी—"ननावरे !"

बाजीराव, जग रहा था। यह सब इतना अजीब घट रहा था कि इस पर बाजीराव को विश्वास ही नहीं हुआ। पहर रात बीत चुकने पर अब कोई आएगा, ऐसा उसका विश्वास नहीं था। पर, राणोजी की आवाज सुनते ही वह उठ खड़ा हुआ। बोला--"मैं यहां हूं जी ! कौन ?"

अब तक राणोजी चाबियों के गुच्छे में से एक चाबी लगाकर कमरे का दरवाजा खोल चुका था। तभी गलियारे में दूर कहीं दण्डे की ठक्-ठक् सुनाई दी। झटके से राणोजी कमरे में घुस गया। बाजीराव कुछ बोलने ही वाला था, तभी राणोजी बोला—"मैं मित्र हूं। बस, अब चुप रहना है।"

शिदबा की बेड़ियों की आवाज हो रही थी। उसे सुनकर दूर किसी ने पूछा—"कौन है उधर ?"

तभी दूसरे ने आवाज दी—"आज अमावस है। यहां इधर आज भूत भागते हैं। चुपचाप अपना काम देख।" दोनों ही रात के नशे में थे। कुछ देर ठक्-ठक् कर लौट गए।

अब तक शिदबा, ननावरे और राणोजी उस भयंकर कुएंनुमा बने गहरे खड्ढे में उतर चुके थे। बाहर जाने की दृष्टि से तल में लगी लोहे की जाली निकालने का काम था। तीनों में राणोजी ही योजक था। ताकत भी थी। वही आगे बढ़ा। उसने सारी ताकत लगाकर वह जाली उखाड़ ली। अब नीचे उतरना था। आगे की किसी को भी जानकारी नहीं थी। केवल कल्पना के सहारे ही आगे बढ़ना था। नीचे बहते पानी की आवाज आ रही थी। घने अंधकार में, उस अनजान जगह अथाह पानी में नीचे उतरना एक भयंकर परीक्षा थी। सोचने-विचारने के लिए समय नहीं था। ऊपर के पहरेदार के होश में आने के पहले बहुत दूर निकल जाने की जल्दी थी। राणोजी बोला—

"शिदबा ! सुनो। तुम पीछे हटो, मैं आगे होता हूं।"

"नहीं जी ! मैं···"

"देखो, तुम सुनो। मैं नीचे उतरकर पानी की थाह लेता हूं। तुम बाजीराव को धीरे से नीचे छोड़ दो। सबके पीछे तुम्हें उतरना है।"

उस जाली की खाली जगह में एक छेद बना था।

मुश्किल से एक आदमी ही नीचे उतर सकता था। राणोजी ने

भगवती का नाम लिया और नीचे पैर छोड़ दिए। ऊपर के एक सरिये पर लटकते रहते हुए उसने पैरों से जल छूने का प्रयत्न किया। पर पानी का कहीं पता नहीं था। अन्त में भाग्य के भरोसे राणोजी ने ऊपर से हाथ छोड़ दिए। अब राणोजी नीचे, पानी में था। पानी में कमर तक ही था। पर पानी का बहाव काफी था। नीचे की जमीन, काई से फिसलनी बनी थी। राणोजी बहुत प्रयत्न के बाद कमर तक पानी में खड़ा रहा। उस अंधेरे में वह कदम गिनकर आगे-पीछे चला। रास्ते की कल्पना कर ली। फिर कदम गिनकर अन्दाज से उसी छेद से नीचे आया और उसने ननावेरे को आवाज दी—-

"ननावरे ! नीचे उतरो, मैं यहां हूं।"

इधर-उधर टकराते ननावरे भी नीचे कूदा। उसके पीछे शिदबा भी कूदा। दोनों ने आवाज के अनुसार राणोजी का अन्दाज लिया। अब तीनों हाथ पकड़कर बाहर निकलने के लिए चल पड़े। नीचे भी दूसरे सिरे पर सरियों की जाली लगी थी, सालों पुरानी। उस जाली को उखाड़ना कुछ कठिन नहीं था। अब वे तीनों बाहर थे। बाहर खुला आकाश था। कितने दिनों बाद वे खुले आकाश के नीचे खड़े थे। पहले कुछ पल तक तीनों आनन्द विभोर थे। पूर्व की ओर शुक्र उगता दिख रहा था। अब उसका कुछ-कुछ प्रकाश पड़ रहा था। उसी प्रकाश में राणोजी ने शिदबा की पगड़ी खोलकर, उससे शिदबा और ननावरे दोनों की बेड़ियां बांध दीं। अब शिदबा खुश था। उसी खुशी में वह कुछ कहने ही वाला था कि राणोजी ने उसके मुंह पर हाथ रखकर उसे चुप किया और उसे ऊपर की ओर इशारा किया।

गढ़ी की दीवार पर से मशाल लिए एक पहरेदार उनके ठीक सिर पर से जा रहा था।

वह मशाल वाला पहरेदार कुछ दूर चले जाने के बाद, तीनों ही उस ऊबड़-खाबड़ खंदक से बाहर आये। अब उन्हें नदी तक पहुंचना था। ऊपर के पहरेदारों की नजर भी बचानी थी। तीनों जमीन पर पसरकर घिसटते-घिसटते आगे बढ़ रहे थे। जंगली, कांटेदार झाड़ियों के कांटे शरीर को बेंध रहे थे। पर इस समय उस सबकी ओर ध्यान देने की तीनों को

फुर्सत ही नहीं थी।

कुछ ही समय में तीनों नदी तक पहुंच गए। राणोजी ने पास की चाबियों से दोनों की बेड़ियां खोल दीं और लोहे के उन टुकड़ों को एक झाड़ी में छिपा दिया।

अब वे तीनों नदी के प्रवाह में घुटनों पानी में खड़े थे। अब तक बाजीराव, उन दोनों के साथ खिंचा-सा आ रहा था। 'मैं आदबखाने से से बाहर हो रहा हूं' इतना ही वह जानता था। पर उपकार करने वाले को वह जानता नहीं था। यहां अब उसने राणोजी का हाथ कसकर पकड़ा और पूछा—"भई तुम कौन ?"

उसकी पीठ पर थपथपाते हुए राणोजी ने कहा—"अभी थोड़ा और सबर करो। समय पर यह भी जान लोगे। अब तुम दोनों, नदी पार करो और वह बड़ा-सा बरगद का वृक्ष दिख रहा है—वहां रुको। मैं अभी वहीं आता हूं।"

शिदबा ने उतावलेपन से पूछा, "और तुम हमारे साथ नहीं आ रहे हो।"

"कुछ काम और भी है।"

इन शब्दों में कुछ ऐसा रौब था कि शिदबा को आगे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। दोनों ही नदी पार कर उस बरगद की घनी छाया में छिप गए।

मध्य रात हो चुकी थी। ऊपर आकाश में नक्षत्रों-ग्रहतारों का मेला पश्चिम की ओर उतरने लगा था। नदी का सारा किनारा सोया और शांत था। आदबखाने को गढ़ी के पहरेदार भी अब ऊंघने लगे थे।

राणोजी नदी की कछार चढ़कर गांव की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहा था। उसने गाने में अमावस का संकेत राजाई को दिया था। राजाई इतनी रात इस ओर आयी ही होगी, यह उसे विश्वास था। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता, बीच-बीच में इशारा देने के लिए रात के पक्षियों की-सी बोली बोल रहा था।

अब तक गांव के और गढ़ी के बीच की नीम की राई उसे दिखने लगी। वहां पहुंचकर उसने इशारे की सीटी ऊंची आवाज में लगाई।

तभी उसके इस इशारे का उत्तर मिलने लगा। नीम की राई में से म्यांऽऽव-म्यांव की मोर की-सी आवाज आई। अब राणोजी रुक गया। थोड़ी-थोड़ी देर रुककर वह भी मोर की आवाज देता। कुछ ही देर बाद तीन आकृतियां नीम की राई में से उसकी ओर आने लगीं। राणोजी नदी के कछार में दुबक गया। वे तीनों उस कछार के ऊपर पहुंची। राजाई ने फुसफुसाते हुए राणोजी को पूछा—"हो कहां तुम ?"

"यहां हूं।"

राजाई नीचे कूदी।

उसे ऊपर हाथों पर झेलते हुए राणोजी बोला—"जरा धीरे। और, वे दोनों कहां हैं ?"

"मैं उन दोनों को नीचे लेती हूं। पर, तुम अकेले ? और वे दोनों कहां हैं ?"

राणोजी को मजाक की इच्छा हुई थी। पर उसने जानकी का विचारकर अपना विचार बदल लिया। बोला—"वे भी हैं। तुम चलो।"

राजाई के हाथ के सहारे वे दोनों नीचे उतरीं।

राणोजी आगे नदी की ओर बढ़ रहा था, तभी जानकी ने छाती पर हाथ रखकर, कातरता से पूछा—"वे कहां है ?"

राणोजी ने विश्वासपूर्वक कहा—"तुम चलो, वे भी हैं।"

अब तक वे चारों नदी के पास आ पहुंचे थे। चारों नदी के पानी में उतरे। बहते कुनकुने पानी का स्पर्श पैरों को सुख दे रहा था। उस पार उसी बरगद के पास पहुंचे। इधर बाजीराव ने दूर से ही जानकी को पहचान लिया। उसने उत्सुकता के स्वर में आवाज दी—"कौन ? जानकी !"

पगली की भांति, जानकी उस अंधेरे में ही आवाज की ओर गिरती पड़ती, बरगद के नीचे पहुंची। शिदबा को राणोजी ने बाहर बुला लिया। बायजी महारन के पास शिदबा को छोड़कर राजाई के साथ उस कछार की एक आड़ में वह बैठ गया।

वह बोला—"मैं सोच रहा था कि तुम आती हो या नहीं।" उसकी छाती पर अपना सिर रखती राजाई बोली—"बहुत ढूंढ़ना पड़ा।"

"पर, उस दिन तुम, आदबखाने में कैसे आयीं ?" "महारन बनाकर

बायजी मुझे भी वहां ले आई। जानकी को उसीके घर बिठाकर मैं आई थी।"

राणोजी ने उसे अंक में भर लिया। क्षण भर में वह में सचेत हुआ।

"राम-जानकी की भेंट हो चुकी होगी ?" हँसकर राजाई बोली—"ठहरो भी जरा ! बहुत दिनों बाद मिले हैं, रुको।"

"और उधर से गढ़ी के सिपाई आ जाए तो ··"

"तो क्या अभी ही जाना है, और कहां ?"

राणोजी ने बरगद की ओर बढ़कर हलके ही आवाज दी--"नाईकजी !"

तभी बायजी को छोड़कर, शिदबा फुर्ती से अंधेरे में से बाहर आया। बोला—"जी !"

"शिवापुर का रास्ता जानते हो ?"

"हां, हां ! चलो चलें।"

"पर, हमें आम रास्ता छोड़कर चलना है।"

तभी ननावरे और जानकी बाहर आ चुके थे।

सभी शिदबा के पीछे दूर अंधेरे में ओझल हो गए।

पच्चीस

लालमहल की कचहरी में माऊसाहिबा बैठी थी। सामने एक ओर कारिन्दा पत्र लिख रहा था। पत्र लिखकर वह पढ़ने लगा—

'स्वस्ति श्री प्रभवनाम संवत्सरे पूसवद्य ग्यारस तद्दिने बाबलभट्ट-मुकाम खेड़, परगना चाकण, इन्होंने, आशीषपूर्वक विज्ञापना की थी कि हम क्षेत्रस्थ ब्राह्मण भीमा नदी के तीर पर स्नान-संन्ध्या कर विद्यार्थियों को वेदाध्यापन करते हैं तथा स्वामी के यश और कुशल का चिन्तन किया करते हैं। यह पवित्र कार्य आगे भी चलता रहे, इसी दृष्टि से राजेश्री शिऊवा भोंसले जिन्होंने सकलसौभाग्यालंकृत वज्रचूड़े मण्डित जीजाबाई माऊसाहिबा और दादोजी पन्तजी कोण्डदेव इनकी आज्ञानुसार अपने अभ्युदयार्थ श्री भगवान सूर्यनारायण के प्रीत्यर्थ प्रति वर्ष सूर्य का अनुष्ठान

करने की विनति की है—इस निमित्त नख्त होने पचास और खण्डी भर धान्य और पूजा-सामग्री देने की तजबीज की मान्यता इस पत्र के द्वारा दी गयी है। इस कार्य को वंशपरम्परानुसार चलाया जावे। इस कार्य का निर्वाह करें। श्री शंभूमहादेव की शपथ लेकर करें। लेखनालंकारे—मुहर…'

पत्र को पढ़कर कारिन्दा रुका—

माऊ साहिबा ने हँसते हुए अपनी खुशी जाहिर की और कहा—

"यह पत्र आज ही जाने दीजिए।"

कारिन्दा अदब से उठकर बाहर चला गया।

तभी माऊ साहिबा ने दाईं ओर बैठे महादू की ओर देखा। बोली—"महादू ! इन गहनों में से कुछ पसन्द किया नहीं। बेटे पास आ। देख, तेरे सामने सभी तो रखा है मन में सकुचाने की आवश्यकता नहीं है।"

महादू अवाक् खड़ा था।

उसके सामने एक बड़ी-सी चांदी की पेटी थी। उसमें से गहने का एक-एक नग सामने कालीन पर रखा जा था, उसमें सभी प्रकार के गहने थे। उन्हें देख-देखकर महादू ठगा-ठगा खड़ा था। तभी माऊ साहिबा उस ओर देखकर बोली—"अरे, तू तो ठगा-सा खड़ा है। अरे, इनमें से तुझे जो अच्छे लगें, उन्हें उठाओ।"

महादू दोनों हाथ हिलाते और बड़े संकोच से बोला—"माऊ-साहिबा ! मैं एक गरीब नौकर ठहरा। मुझे इनमें से कुछ भी नहीं चाहिए। ये सोना मेरी बहन को शोभा नहीं देगा।"

माऊ साहिबा ने कहा—"अरे पगले ! शोभा न देने को क्या हुआ ? बिटिया नक्षत्र जैसी है।"

हाथ जोड़कर महादू बोला—"माऊ साहिबा नक्षत्र है वहां आकाश में। मेरी बहन है किसान की बेटी, बहू बनेगी किसान की। इसका आदमी आपकी सेना में बनेगा सिपाही। उसके पीछे घोड़े पर बैठकर लड़ाई के मैदान पर तो जाना नहीं है। घर पर रहकर माटी में काम करना है। ढोरों के साथ खेत-खेत, जंगल-जंगल घूमना है। तब वह इन गहनों का क्या करेगी ? ना ! ना !! ना !!!—"

"इनमें से मैं कुछ भी नहीं लूंगा।"

अब बनावटी नाराजी से आऊ साहिबा बोलीं—"रहने दो। उसने जन्म-भर दरिद्री रहने की कसम तो खाई नहीं है। अब तक उसने खूब कष्ट भोगे हैं। अब कहीं सुख के दिन आए हैं तो तुम खुद ही इसमें, बीच में हाथ मत रोको। वह इस सबको गांव में सम्भाल नहीं सकी तो अथवा यह स्त्रीधन, वह यहां लाकर सुरक्षित रख सकती है। हम जतन करेंगे। अब बहुत हो गया। अब मना नहीं करना है।"

अहादू गदगद हो गया। आंखों से आंसू बह रहे थे। बोला—"आऊ-साहिबा! वह आपकी बेटी है। आप जो भी ठीक करो। अब एक ही बिनती है।"

"अब और क्या रहा!"

"यह आपकी बेटी है। शादी की सारी रस्मे आपको ही करनी हैं।"

आऊ साहिबा ने आत्मीयता से कहा, "क्यों नहीं! सभी होगा। हम सभी करेंगे।"

"तभी एक हुजरे ने आकर बताया—"दोलतबंकी मुजरे के लिए आए हैं।"

चिर प्रतीक्षित सूचना मिलते ही खुश होकर आऊ साहिबा बोली, "क्यों अकेला ही!"

"नहीं। उसकी घरवाली हैं। दो आदमी और दो औरतें और हैं। उनके तन के सभी कपड़े फटकर चिन्धियां हो गए हैं। एक आदमी की कमर में तो एक लंगोटी ही है और सिर पर एक ही चिन्धी। रातभर शिवापुर से यहां तक चलकर आने के कारण उनकी बड़ी दुर्दशा हो गई है।"

आऊ साहिबा ने सुना और उनकी आंखों में आंसू उमड़ पड़े। वैसे ही वे उठीं और उठकर बाहर महल के आंगन की ओर बढ़ीं। बीच में खड़े नौकर-चाकर चटपट एक ओर हट-हटकर झुक-झुककर मुजरे कर रहे थे।

सभी के मुजरों को लेती हुई आऊ साहिबा आगे चौक में आ गईं। उनके देखते ही राणोजी और ननावरे ने झुककर मुजरा किया। शिदवा ने चकित होकर जोहर किया, वह आऊ साहिबा को ठगा-सा देखता रहा।

राजाई और जानकी ने आगे बढ़कर आऊ साहिबा के चरण छू

लिए। आऊ साहिबा दोनों को एक-साथ अंक में भरने ही वाली थीं कि तभी आनन्द विभोर जानकी उनके चरणों में लुढ़क गई। आऊ साहिबा नीचे बैठ गईं और उनका सिर गोद में रखकर उसे सहलाते हुए बोलीं—"मेरी बेटी ! पगली !! अब क्यों रो रही है, अब तो तेरा पति आ गया।"

जानकी विभोर थी। ऐसी माया उसने कभी भोगी नहीं थी। उसने गर्दन झुका ली। बायजा शिदबा के पीछे खड़ी थी। वह कुछ समझ ही नहीं पा रही थी। ऐसा घर, ऐसा वातावरण ऐसा व्यवहार, उसने कभी देखा-सुना नहीं था। उसे ऐसी ठगी खड़ी देखकर शिदबा ने उसे पीठ थपथपाकर जगाया। बोला—"जौहर नहीं बोलेगी।" वह कुछ जगी और दो कदम आगे बढ़कर मुश्किल से, जौहर बुदबुदा पायी थी। आऊ साहिबा ने उसे भी अपने पास बिठा लिया और सभी की ओर देखकर बोली—

"हमारा राणोजी शेर है। गया तो काम फतह करके ही आया।" इस पर राणोजी महादू की ओर देखकर कुछ बोलने ही वाला था। तभी आऊ साहिबा ने उसे रोक दिया। बोली—"अभी कुछ नहीं। अब नहाओ, कपड़े पहनो, खाओ भरपूर आराम करो। क्या दशा हो गई है ! हम तब तक प्रतीक्षा कर सकती हैं फिर सब सुनूंगी और यह कंधे पर क्या हो गया है ?"

"कुछ नहीं है, आदवखाने से बाहर निकलते खरोंच आ गई थी।"

चकित होकर आऊ साहिबा ने पूछा—"ऐसे कहां से निकले ?" राणोजी ने अवसर देखकर, शिदबा की ओर इशारा कर कहा—"यह हमारे गांव का है शिदबा ! इन्होंने गढ़ी के कोट के झरोखे में से बाहर निकाला। खाई के पानी में उतरते समय जरा···।" तभी आऊ साहिबा ने पीछे मुड़कर, किवाड़ की ओट में खड़ी दासी को कहा—

"सुन ! औषधशाला में जा। वहां वैद्यजी बैठे हैं। उनसे गाय के घी का मरहम लाकर इसे दे। अब जाओ—नहाना, खाना-पीना करके आओ। तब तक मैं यहां बाट जोह रही हूं।"

आऊ साहिबा अपने दीवान खास में मसनद पर बैठी थी। सामने

कालीन पर राणोजी बैठा था। अपने मुहीम का लेखा-जोखा आऊ साहिबा को सुना रहा था। आऊ साहिबा अविचल हो सुन रही थीं। उनकी आंखें बीच-बीच में छलछला जाती थीं।

राणोजी की कथा समाप्त हुई तब आऊ साहिबा ने उसांस ली। बोली—

"बेटा राणोजी ! तूने खूब ही यश पाया। आदिलशाही से जूझकर काम फतह किया।"

कुछ क्षण रुककर वे भरे हुए स्वर से बोलीं—

"दया, माया उनको छूकर भी नहीं गई है। उन्हें चाहिए केवल भोग। यहां की सम्पति का, यहां की लक्ष्मी का। वे भोग रक्त से सने हों, आंसुओं से भीगे हों, करुणा या क्रन्दन से द्रवित हों, उन्हें उसकी क्या चिन्ता ! उन भोगों के लिए वे कुछ भी करने को तैयार हैं।"

आऊ साहिबा दूर शून्य में देख रही थीं। कोई घटना उनके मन में आकार ले रही थी। बोली—"राणोजी तुम्हें याद है—कर्नाटक में रहते एक बार स्वामीजी के साथ विजयनगर को हम गए थे।

"नगर पर विध्वंस की छाया थी, उस नगरी का वह रूप देखकर स्वामी ने उस दिन रात का भोजन नहीं किया था। हमारा तम्बू एक खण्डहर बने महल के पास लगाया था। शिऊबा, उस समय छोटा-सा बालक मात्र था। दिन भर उन खण्डहरों में घूमता, बार-बार पूछता—ये यहां खण्डहर क्यों ? यहां क्या था ? ये किसने-किसने गिरा दिए हैं !

"स्वामी उस बालक को सारी कर्म-कहानी सुना रहे थे। दोनों ही खिन्न थे। स्वामी की आंखें से आंसू झर रहे थे। रात में हम सभी अपने मुकाम पर पहुंचे, पर शिऊबा का मन उन्हीं खण्डहरों में, उनकी दुर्दशा की कहानियों में घूम रहा था। उसके मन की उदासी दिख रही थी। भोजन की थाली उसने भी दूर सरका दी थी। समझा-बुझाकर जैसे-तैसे दूध पिलाकर उसे सुलाया था।

"पर स्वामी ? उन्हें नींद कहां ? मैं खुद पंखा कर रही थी, पर उन्हें जरा भी शान्ति नहीं थी। मन की बेचैनी मुख पर दिख रही थी। आधी रात बीत चुकी थी। मैं उनके पैताने, हाथ का तकिया बनाकर पड़ी ही थी कि स्वामी उठकर खड़े हुए। मैंने तत्परता से उठकर पूछा था—

'पानी दूं ?'

"स्वामी चुप खड़े थे—तम्बू की कनात में तलवार टंगी थी। उसे स्वामी ने उतारा, कमर में खोंस लिया, मेरे पास आकर बोले—

'रानी साहिबा ! बाहर देखिए। चांदनी छिटकी है। इस दुग्ध-धवल पवित्र ज्योत्स्ना में घूमने की इच्छा है। आप चलेंगी ?'

"मैं उठी, दुशाला से शरीर लपेट लिया।"

राणोजी बोला—"जी ! आऊ साहिबा मुझे वे सारी बातें आज भी याद हैं। मैं भी उस समय तक जग चुका था। बाहर ही छोटे डेरे में सो रहा था। मै भी पीछे-पीछे आने लगा तब महाराज ने मुझे मनाकर रोक दिया था।"

आऊ साहिबा अब तक मन पर काबू कर चुकी थीं। बोलीं—"तुम ठीक कह रहे हो···तो मैं क्या बता रही थी ?"

"तभी राजाई बोली—"शाल लपेटकर···"

"हां, तो हम दोनों ही···खास हुजरा आ रहा था। उसे भी स्वामी ने उस दिन रोक दिया। हम दोनों ही उन खण्डहरों में से चलने लगे। स्वामी आगे थे। मैं उनके चरण-चिह्नों पर पैर रखती चल रही थी। उस खण्डित वास्तु का कितना विशाल विस्तार था। उसके सामने हम कितने छोटे प्रतीत हो रहे थे ?

"कितने बड़े और विशाल दरवाजे थे। कितने बड़े-बड़े प्रासाद होंगे वे। बड़े-बड़े चौक, बड़ी-चौड़ी फरस बंदियां, चौड़े-चौड़े रास्ते। ऊंची-लम्बी भीतें, बीच-बीच में बने देवालय, शिवालय, सारा-सारा कितना वैभवशाली और कितना सम्पन्न ! उस उध्वंस्तता को देखते-देखते हर क्षण मन उदास हो रहा था। पद-पद पर मन विमूढ़ हो रहा था। आज उस वास्तु में जंगली पशु—सियार, गीदड़ भी घुसते हुए डरते थे। पर फिर भी उस वास्तु के भीतर प्रासादों की भीतों पर, कला के स्पर्शों की अमिट छाप जहां-तहां दिख रही थी। शुभ्र श्वेत पत्थरों में, कहीं गुलाबी पत्थरों में। काल के गर्त में भुलाए कितने ही कारीगरों ने कला को वहां उतारने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी, कहीं कुछ भी कमी नहीं छोड़ी थी। वे तो बनाते गए और बनाते ही गए।

"सब कुछ ध्वस्त हो जाने पर भी इनमें आज भी इतना सौष्ठव है। जब-जब यहां कृष्णदेव राय की राजसत्ता विराज रही थी, तब तक की उस शोभा पर तो स्वर्ग की शोभा ने लजाकर मुख छिपा लिया होगा।"

क्षण भर रुककर आऊ साहिबा ने आगे कहा—

"कृष्णपक्ष की तृतीया थी। उस समय केवल हम दोनों ही उन खण्डहरों में घूमते रहे। बीच में ही स्वामी रुककर खड़े हो गए, पीछे मुड़कर बोले—'रानी साहिबा डर तो नहीं लग रहा है?'

"मैंने उत्तर दिया था—'शहाजी भोंसले, तलवार के धनी तेगबहादुर, उस महान व्यक्ति की मैं पत्नी हूं, ऐसा ही मुझे सारा संसार जानता है—ऐसे मेरे स्वामी, मेरे साथ हैं। तब भय भी मेरे पास कैसे फटकने का दुःसाहस कर सकता है? पर यहां घूमते हुए उदासी छा रही है। जो कभी यहां पूतों-पोतों के साथ सानन्द रहे वे सब कुलवन्त, श्रीमन्त, कीर्तिवन्त आज कहां गए?'

"स्वामी चुप ही रहे—कुछ आगे बढ़कर, एक चबूतरे पर चढ़कर उसांस लेते हुए बोले—'आइए रानी साहिबा! यह एक देवालय का चबूतरा मात्र बचा है। यहीं बैठें। यह पवित्र स्थान है। यहां बैठकर ही इसकी कहानी सुनाता हूं।'

"मुझे स्वामी ने हाथ बढ़ाकर उस चबूतरे पर चढ़ा लिया। तभी पीछे छिपा एक सियार हमारी ओर देखकर भागा। चबूतरे पर एक शिला पड़ी थी। क्षण भर उस ओर देखकर, कोई कथा मन में क्षण भर के लिए जागृत हो उठी। उस सती का स्मरण कर, मैं उस शिला पर शाल ओढ़कर बैठ गई। वहां से आसपास का सभी दृश्य दिख रहा था। चौक के परे ऊंची भीतें—उनमें बने सुन्दर आले, अलमारियां—उनमें बने सुन्दर चित्र! बीच में कारंज के अवशेष कभी के सुन्दर बाग के चिह्न! वहां उस अतीत के सुन्दर राजप्रासाद का क्या-क्या नहीं था! पर था—बीराना ढहा हुआ, ढहाया हुआ—ध्वस्त—नीरव—श्मशान-सा भयावह।

"स्वामी मेरे सामने ही बैठे थे, उदास! उन्होंने अपना खड्ग घुटनों पर आड़ा रख लिया। उस पर हाथ रखकर क्षणभर शांत रहकर उसांसते बोले—"राणी साहिबा! इन विशाल राजप्रासादों की कथा बहुत

पुरानी है।—तब भारत मां की पावन नर्मदा के इस ओर दक्षिण में अभय था। इधर यवनों के आक्रमण नहीं हुए थे। अभी क्षणभर पूर्व आपने जिन-जिन कुलवन्त कीर्तिवन्त, गुणवन्त लोगों का स्मरण किया था वे यहां राज्य करते थे। उनकी यहां सत्ता, यहां आवाद थी। उनकी सन्तान यहां फूली-फली थी। यहां सातवाहनों का दुर्दम्य यश फैला। यहां राष्ट्रकूटों का पराक्रम चमका। यहां शिलाहारों का यश अनेक शिला-लेखों में लिखा गया। यहां चालुक्यों की कीर्ति फहराती रही। यहां यादवों का यश-वैभव-कीर्ति नित नित बढ़ती रही। इनके राज्य में राज्य-लक्ष्मी बहू-जैसी घर-घर की लाड़ली होकर घर-घर बरसती रही।

'इनमें भी सातवाहनों के यश को क्या बताऊं। किसी कवि ने गोदावरी नदी को पूछा,—पूतसलिले, मां! अपने उद्गम से मुख तक तूने अनेक राज्य देखें होंगे, इन सभी में सातवाहनों-जैसा धर्मवन्त-कुलवन्त कीर्तिवन्त राजा तूने कहीं देखा क्या?

सच बता मां गोदावरी ! तू
सागर तक, बहती रही
अगणित देखें होंगे, नरवर नगर
पर सातवाहन-सा नाहर देखा कहीं ?

'सातवाहन एक अलौकिक पुरुष था। ऐसा प्रजाप्रिय राजा दूसरा हुआ ही नहीं। उसने इस सरस्वती के जनपद की घाटियों, प्रकृति की सुखद गोद में खोए-बिसरे ग्रामों घरों, कुलों के कवियों का मधुर सरस कवित्व ढूंढ़-ढूंढ़कर संग्रह किया। इस देश के नदी, तड़ाग, सर, निर्झरों के समान एकान्त गुंजन करने वाले सारे-के-सारे कवियों को प्रतिष्ठान नगर में निमन्त्रित किया, उन्हें क्या नहीं दिया? उनके मन के विश्व को उन्मुक्त, स्वच्छन्द अवकाश दिया। उसने मन में रमते मधुर गीतों की सरस्वती को, रसवन्ती को एकत्र गया। उनमें से अमृत मधुर बिन्दु-सी सात सौ गाथाएं एकत्र कीं। उसका नामकरण किया—गाथा-सप्तशती। ऐसा नागर और रस सरस ग्रंथ दूसरा नहीं। रानी साहिबा! अपनी पुस्तकशाला में उसकी एक प्रति है। बहुत ही यत्न से जुटाई है। उसमें विरहिणियों के विरह-गीत हैं। प्रेमियों के प्रणय-गीत हैं। निसर्ग के

लीला-गीत हैं। किसी से सुनो। प्राकृत भाषा में है। उन सतावाहनों ने गोदावरी के तीर पर राज्य किया—शान्त, समृद्ध, सुखमय ! वह समय सुखमय था। इस युग में वेरुल अजिंठा की टेड़ियों को कारीगरों ने, कलाकारों ने तराशना, साकारना शुरू किया।'

" वेरुल का स्मरण आते ही स्वामी का मन भर आया। उसी गद्-गद् स्वर में बोले—

'आपको वेरुल का स्मरण है ?'

" मैंने कहा—शैशव के माधुरी से भरे वे दिन भूल सकें ऐसी भी कोई दुर्दैवी लड़की होगी ?

"स्वामी बोले—कैसा सुख था वह, रानी साहिबा ! सिर पर पिताजी की कृपा का छत्र था। द्वार पर अश्वशाला में घोड़े बंधे रहते थे। मन में आता, तब घोड़े पर बैठकर काली माटी की गोद में, उन हरियाली से भरे जंगलों में घूमते। जंगल का मेवा खाते, तीर-कमान से पेड़ों की इमलियां तोड़ते, जंगल के आम टपकाकर खाते, हाथ-मुंह बिगाड़ लेते। लौटते हुए घृसणेश्वर के महादेव बाबा का दर्शन करते।

"स्वामी किसी घटना को यादकर उसी में खो गए। मन में आया कि जगाऊं, कहूं, कि इन खण्डहरों की गाथा सुना रहे थे—उसे ही चलने दीजिए—पर उनकी उस भाव-समाधि में क्षण-भर को मैं भी खो गई। तभी स्वामी का उर भर आया। छाती फुलाते और उसांसते हुए आगे बोले—हमने भी यह दख्खन का सारा भू-भाग देख लिया। इस देश के देवालय, शिवालय, मंदिर, गोपुर सब देखे। वह सारा इस काली मृदु माटी के अलंकार-सा लगता है। बड़े वजीर मलिकवर एक बार हमारे साथ वेरुल देखने गए थे। वहां कैलास की प्रतिकृति के सामने रुक कर क्या बोले, जानती हो ?

"मैंने पूछा—'क्या ?'

'स्वामी ने कहा—उस चित्र को देखकर बड़े वजीर कुछ क्षण अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते रहे फिर मेरे पास आकर बोले—राजा साहब ! मानते हैं आपके इस देश के कारीगरों के हाथों के जादू को भी मानते हैं। हमने बहुत कुछ देखा है, क्या बसरा, क्या बगदाद ! एक बार

दिल्ली भी हो आया हूं। वहां के गजब के महल देखें हैं। यहां जो कोठा हम देख रहे हैं, उसकी हद नहीं।

"रानी साहिबा, ये शब्द खुद बड़े वजीर के थे—हमारे उस कैलास की प्रतिकृति के लिए···"

माऊ साहिबा रुकीं। राणोजी, बाजीराव, राजाई, जानकी, शिदबा बायजी—सभी उस कौतुक को सुन रहे थे। खम्भे से टिककर अपने पिछोरे को, शरीर से लपेटकर दो-चार महतारे भी सुन रहे थे। वे भी कर्नाटक की उस यात्रा में आऊ साहिबा के साथ थे। वे रानी साहिबा की कहानी को गर्दन हिलाकर दाद दे रहे थे। तभी बीच में आऊ साहिबा ने पीछे मुड़कर देखा। एक दासी ने चांदी का प्याला आगे बढ़ाया। आऊ साहिबा ने दो घूंट पानी पिया, प्याला दासी के हाथ में लौटाकर आगे बताने लगीं—"स्वामी बोलते-बोलते, उठकर खड़े हो गए और अस्वस्थ होकर उसी चबूतरे पर इधर-उधर घूमते रहे। अचानक बीच में ही मेरे सामने खड़े होकर बोले—

'रानी साहिबा! आप तो जानती हैं कि वेरुल का शिल्प कैसा है! लगता है कि स्वर्ग के देवी-देवता क्षण-भर खुद को भूलकर वहां आकर उन विशाल गुफाओं के द्वारों पर ठहर गए हों। अभी तक उनके हाथ-पैर, नाक-कान, कितने हु-ब-हू हैं। आंखें ऐसी कि अब खुलीं, अब मुंदीं। होंठ ऐसे कि अभी-अभी बहुत कुछ बोलकर मुंदें हैं। और फिर बोलेंगे, और उनकी उस अमृतमयी बोली में यह सारा आसमन्त डूब जाएगा।

'उन स्त्री मूर्तियों के केश-विन्यास! लगता है कि हवा की जरा-सी हरकत से उनकी लटें हिलडुल डोलेंगी। उनके वे गहने, वे अलंकार वैसे देखने को काला याम प्रस्तर। पर कारीगरों ने उसमें चेतना भर दी है।' यह कहते-कहते स्वामी का गला भर आया। आंखों में पानी अटका, कुछ खंकारकर, मन शान्त कर बोले—

'पर, उन अमूल्य मूर्तियों को इन नरपशुओं ने बिगाड़ दिया। उनकी वे बोलती आंखें, उनके वे हँसते नाक, कान, स्तन सारे सुन्दर अवयवों को छेनियों से छिन्न-विछिन्न कर दिया। हेतु? कुछ नहीं। केवल एकमात्र लालसा। बुलाशिकन कहलाने मात्र की लालसा। बीजापुर में मस्जिदें और

कबरों बनाने वाले हाथ ही इन पर चलते रहे। एक भूतों का, पिशाचों का तमाशा रहा।'

"उस खण्डहर के सभी ओर हाथ उठा-उठाकर, स्वामी बोले—'कैसी सुन्दर नगरी थी यह, रानी साहिबा ! कितने ही फिरंगी-फरासी, कितने ही विदेशी प्रवासी यहां आए। इस नगरी को देख गए। उन्होंने लिख रखा है कि यह नगरी इस देश का दूसरा स्वर्ग है। इसकी तुलना नहीं। कैसे बाग, कैसे बगीचे ! कैसी नहरें, कैसे खेत ! धान की बालियां खेतों में लहलहातीं, सुगन्ध भरतीं ! कमलों से भरे भरे तालाब—कैसे-कैसे विशाल बाजार, रानी साहिबा ! इन बाजारों में न मिले, ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसी कोई चीज नहीं। सम्पूर्ण वसुधा के रत्न, नील, मोती, गोमेद, पुखराज प्रवाल—सारा-का-सारा यहां के बाजारों में बिकता था।

यहां के मंदिरों के कलश—राणी साहिबा ! आकाश से बातें करते थे। पताकाएं बादलों की कालिख पोंछती थीं।

'मंदिरों में नानाविधि वाद्यों के मंगल स्वर गूंजते। कितने ही सुरों के राजा—अपनी रुद्रवीणा, स्वर वीणा तुंबरु वीणा—ऐसे अनेक वाद्यों के सुमधुर स्वर झंकारों से यहां का आसमन्त झंकृत करते ! कैसा पवित्र था ! आनदमय था ! मंगलमय था !!

'पर रानी साहिबा ! एक दुर्दैवी दिन, यहां युद्ध हुआ। शुभ्र धवल केशों से मण्डित—ओजपूर्ण, उस नरसिंह राजा रामराय का मस्तक खुद हजरत निजामशाह ने कबन्ध से अलग किया—और भाले पर रखकर सेना के आगे के—जिलबी के सैनिकों की टुकड़ी के आगे-आगे प्रदर्शित किया। एक-दो दिन नहीं, पूरे छः माह तक। रानी साहिबा ! एक समय जिस रामराय ने इसी विजयनगर में इन्हीं राजप्रासादों के आंगन में खड़े रहकर याचकों को मुट्ठी भर-भरकर हीरे-सिक्के-रत्न, मोती, बांटे थे उसी रामराय का मस्तक इन दिनों विजापुर नगर की एक मोरी के मुहाने में जड़ दिया गया। और उसमें से प्रतिदिन इस नगर की गंदगी वह मुंह भर-भरकर थूक रहा है।'

"यह कहते-कहते स्वामी का उत्साह शांत हो गया। हाथ छाती पर बांधकर उस खाली-खाली वीरान पड़ी नगरी के खण्डहरों की ओर अपलक

उदास देखते रहे। निराश होकर बोले—

'रानी साहिबा ! दुःख आज एक ही है। उस देवप्रिय नगरी का—यह श्मशान-नाश जिन्होंने किया उन्हीं के सामने दीन-हीन होकर पातशाही गाभी कहकर हमें आज बार-बार बंदगी करनी पड़ रही हैं। हमारा दुर्दैव इससे बढ़कर क्या है !

'मेरी इस जिन्दगी की शुरूआत ही गलत हुई। जीवन के प्रवाह की दिशा ही गलत हो गई पर, आज बहुत देर हो गई। अब कुछ नहीं हो सकता। अब कोई भी इलाज नहीं।

'इनको धर्म की चिन्ता नहीं, ईमान की चिन्ता नहीं। दीन-दुनिया की चिन्ता नहीं, सच-झूठ की परवाह नहीं, न्याय-अन्याय का अदब नहीं, रिश्ते-सम्बन्धों का विचार नहीं। उन्हें चाहिए—राज्य, राज्य-भोग, तख्त और ताज।

'और इस सबको पाने के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं। तख्त पर बिठाये अबोध छोटे बालक के पेट में अपने पैने खंजर भी खोंसकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं। कितना और क्या बताऊं ! तब भी उनकी नीयत को बखाना नहीं जा सकता। गांव की गंदगी को कुरेदें तो वहां सिवा नरक के और क्या मिलेगा !"

यह सब बताते-बताते आऊ साहिबा का मन भर आया—आंखें गीली हो गईं—होंठ थरथराने लगे।

बड़े ही यत्न से मन पर काबू कर आंचल से मुंह पोंछकर आऊ-साहिबा बोलीं—"उस दिन स्वामी को बहुत मनस्ताप हुआ। पूरी जिन्दगी भर स्वतंत्रता के लिए मछली से तड़फड़ाते रहे। सोचते रहे कि इस देश में न्याय का, धर्म का राज्य प्रतिष्ठित हो। इस ध्येय के लिए मन में कितना उत्साह था, पर सभी उनके प्रयत्न टूट गए, मिट गए। आखिर शिऊबा को यहां भेजा, मैं भी इधर आने को निकली, तब स्वामी ने कहा था—

"रानी साहिबा ! हमारा इधर क्या होगा, इसका विचार या खेद मत कीजिए। श्री शिवशंकर भगवान आपको जैसी बुद्धि देंगे वैसे ही निर्भय मन से काम कीजिए, और क्या कहूं ?"

यह कहते-कहते आऊ साहिबा का मन, आंखें भर आईं। बहने को

तत्पर हुई, अपनी उस भावुकता को अपने ही आंचल से और हाथों से संजोये— रानी साहिबा दीवानखाने से उठकर धीरे-धीरे भीतर चली गईं।

सायंकाल का समय। गणराज का दर्शन लेकर आऊ साहिबा लाल-महल को लौट आईं। राणोजी और बाजीराव उन्हींकी प्रतीक्षा में दीवान-खाने में बैठे थे। आऊ साहिबा भीतर आईं। दोनों ही बड़े ही अदब से उठकर खड़े हो गए। तभी राणोजी ने कहा—"आऊ साहिबा! ननावरे देशमुख राजी नहीं है।"

शाल उतारते हुए आऊ साहिबा ने ननावरे की ओर देखा, चौकी पर बैठते हुए बोली—"क्या कहते हैं?"

"कहते हैं कि मैं भी आता हूं। कहते थे कि छोटे राजे साहब उधर पहाड़ों, गांवों, घाटियों में घूम रहे हैं और मैं यहां आराम करूं?"

आऊ साहिबा तभी कुछ कठोर होकर बोलीं, "नहीं, नहीं, ननावरे, नहीं!"

तभी बाजीराव दो कदम आगे बढ़कर, अदब से बोले, "मैं अब बिलकुल ठीक हूं।"

"नहीं, देशमुख एक बार आइने में अपने आपको देखो।"

"पर राणोजी भी तो आदबखाने में थे।"

राणोजी बोला—"था क्यों नहीं! पर कितने दिन? आठ-पन्द्रह दिन। तुम जैसे—महीनों, महीनों नहीं पड़ा रहा?"

इस पर बाजीराव कुछ नाराजी से बोले—

"छोटे सरकार उधर गांव-गांव और नगर-नगर घूम रहे हैं और मैं यहां दूध-घी खाकर पड़े-पड़े आराम करूं।"

आऊ साहिबा बोलीं—"यह सब सही है, पर तबियत ठीक नहीं। इसके लिए क्या किया जाए। उसे तो पहले दवा-पानी कर ठीक होना ही चाहिए।"

"मैं भी उधर कहीं बड़ा भारी बोझ उठाने तो जा नहीं रहा!"

"ननावरे, हम मना करते हैं। सोचो जरा, क्या छोटे सरकार फिर इस जनम में इधर आएंगे नहीं, ऐसा तो है नहीं।"

"पर वे तो रायरेश्वर के दर्शन को उधर गए हैं।"

"जाने दो देशमुख ! वह रायरेश्वर भी दो-चार दिन में वहां से उठकर कहीं दूर चले नहीं जाएंगे। अभी यहां हमारे ही पास रहो—दवा-पानी करो, तबीयत सुधारों, फिर जनम भर कष्ट उठाने ही हैं। और देशमुख ! हमारी बिटिया जानकी की ओर भी तो जरा ध्यान दीजिए—इन महीनों में सूखकर उसकी क्या दशा हो गई है !"

इस चर्चा को यहीं समाप्त करने की इच्छा ये आऊ साहिबा ने राणोजी से पूछा, "राणोजी ! तुम कब यहां से निकल रहे हो ?"

"अभी ! देर हो गई तो छोटे सरकार रायरेश्वर छोड़कर आगे बढ़ जाएंगे।"

"पर, जरा सबर से। उधर तुम फिर से आदिलशाही के इलाके में जा रहे हो।"

"आऊ साहिबा, आप चिन्ता न करें। मैं अबकी बार बहुत ही सावधान हूं।"

"शिदबा को भी साथ ले जा रहे हो क्या ?"

"जी, आऊ साहिबा ! वह आपके पास आने के लिए ही तैयार नहीं है।"

"क्यों ? क्या हुआ ?"

"कहता है—आऊ साहिबा का दर्शन करने जाऊं, और उन्होंने कहीं मुझे भी रख लिया तो ? वह तो बाहर महल के दरवाजे के पास ही रुका खड़ा है ?"

आऊ साहिबा हँसकर बोलीं—"तुम सभी एक-से हो। ठीक है। उसकी घरवाली बायजी का क्या है ?"

तभी राणोजी दुपट्टे में मुंह छिपाकर हँसने लगा।

आऊ साहिबा ने पूछा—"क्यों रे, हँसने को क्या हुआ ?"

"कुछ विशेष नहीं···।"

"कुछ है जरूर ! नहीं तो वह हँसी कैसी ?"

तभी बीच में बाजीराव ने आगे बढ़कर कहा—"मैं बताता हूं। शिदबा और उसकी घरवाली का कल झगड़ा हो गया है।"

चिन्तित होकर आऊ साहिबा बोलीं—"क्यों राणोजी, यह सब सही है क्या ?"

"कुछ विशेष नहीं। वह बोली कि मैं तुम्हें आदबखाने से खींचकर बाहर लाई। अब क्या मालिक की सेवा करने के लिए तुम्हें मैं अकेले ही भेजूंगी ? बस शिदबा तभी से रूठकर बैठा है।"

कौतुक से आऊ साहिबा ने आगे पूछा—"फिर ?"

तो आगे वह बोली—"सरकार की जूठन खाएंगे। रात में किसी पेड़ के नीचे एक-साथ सोएंगे। तुम काम के लिए निकलो तो। मैं भी साथ चलूंगी।"

तब शिदबा बोला, "ठीक है। और, मैं उसी काम में कहीं मर गया तो ?"

इस पर बायजी बोली, "तो क्या ! मैं क्या रोती रहूंगी ? झट मैं गड्ढा खोदूंगी, तुम्हें उसमें सुलाऊंगी, साथ मैं भी सो जाऊंगी और आने-जाने वालों से कहूंगी कि हम दोनों पर मूठ-मूठ माटी डाल दो।"

उन दोनों का यह प्यार देखकर आउ साहिबा की आंखों में पानी आ गया। अपने आंचल से उसे पोंछकर बोलीं—"तुम शिदबा को भी मत ले जाओ और उसे बताओ कि मैंने उसे जल्दी और जरूरी में बुलाया है। नहीं आई तो मैं तब तक पानी पीऊंगी नहीं···।"

छब्बीस

रायेरेश्वर के मंदिर का बाहर का परिसर, पास ही जंगमों के कुछ घर।

चंदाऊ जंगम की पत्नी, भीतर घुसते हुए बोली—"आज है क्या ? कोई मेला या यात्रा है क्या ? आज शिवरात्र भी तो नहीं है ?"

जंगम पूजा को जाने की तैयारी में बोला—"पूजा की तैयारी कर दो। आज रायेरेश्वर का अभिषेक करना है।"

"पर मैं पूछती हूं कि यह सब आज क्यों हो रहा है ?"

"तुम जैसे कुछ जानती ही नहीं हो ! जागीरदार का पूत आज

रायेरेश्वर के दर्शन के लिए आ रहा है। कल ही सिपाही कह गया था—जैसे कुछ तुम्हें याद ही नहीं···।"

आज आसपास के गांव के बड़े बूढ़े आसामी घोड़े पर सवार होकर रायेरेश्वर की पहाड़ी चढ़ रहे थे। कुछ मंदिर तक पहुंच गए थे। मंदिर के परकोटे के भीतर एक ओर लगी लोहे की कड़ियों में घोड़ों को बांध रहे थे। परिचित व्यक्ति को देखकर 'राम-राम' की झड़ी निकल रही थी। बरावरी के लोग गले मिल रहे थे। पीठ थपथपा रहे थे। हाथों में हाथ गुंथ रहे थे। हँसी के फव्वारे उड़ रहे थे। यह आनन्द उस वास्तु में बहुत दिनों बाद बह रहा था।

तभी दूसरी ओर से, पहाड़ी से वृद्ध नरसी प्रभु देशपाण्डे दो-चार साथियों के साथ घोड़ों पर सवार धीरे-धीरे नीचे उतरकर मंदिर की ओर ही आ रहे थे। मंदिर के परिसर में आते ही घोड़े से उतरकर उन्होंने पगड़ी उतारकर हाथ में ली, सिर का पसीना दुपट्टे से पोंछा और धीरे-धीरे मंदिर के भीतर की ओर बढ़े। उन्हें कुछ सुस्ताए हुए देखकर, वहीं दूर खड़े लोग एक-एक कर उनके आसपास आकर खड़े हो गए। राम-राम, जौहार, मुजरे हुए। तभी एक युवक ने पूछा—"नरसू दादा! दादूजी नहीं आया?"

तब तक नरसी प्रभु देवालय की सीढ़ी पर बैठ गए थे।

बोले—"लड़का, उधर छोटे सरकार के साथ रुक गया है। वे सभी अभी तक यहां आ ही जाते, पर कोंडेखल के पाटील ने रोका—बोले 'अपने घर पर आपके पांव पखारूंगा, तभी जाने दूंगा, क्या करें? माना ही नहीं। सभी वहां रुके हैं। अब उनका भोजन वहीं हुआ होगा। सायंकाल तक सभी यहां आ पहुंचेंगे। मैं यहां की व्यवस्था देखने के लिए आगे आया हूं।"

"कोंकण में से कौन-कौन आए हैं? तुको जी, तुम···?"

"आए हैं—बहुत से लोग आए हैं।"

"यह तो दिख रहा है, पर कौन-कौन? कुछ नाम, गांव भी बताओगे।"

"मैं अब बूढ़ा हो गया हूं। पहले जैसा दिखता नहीं। नाम भी अब बहुतों के भूल गया हूं।"

तुकोजी हँसते हुए बोला—"ठीक-ठीक दादा ! फिर भी इस उमर में तीर से पेड़ का आम टपकाते हो—और फिर भी कहते हो कि नाम भूल गया।"

"वह रहने दे। ये कौन है ? तेरे पीछे खड़ा है ?"

"यह खमोजी।"

"अच्छा ! व्यवस्थित खंड है—फुर्ती भी है।"

"कहीं किसी की सेना में था।"

"अच्छा, और वह परे जो खड़ा है ?"

तुलोजी ने उस ओर मुड़कर देखा फिर बोला—"ए कल्लू रे, बता भी। तेरा नाम, गांव—धन्धा—हमारे मुंह को क्यों तकलीफ देते हो ?"

नरसी प्रभु दादा ने भी गर्दन हिलाकर हामी भर दी और बोले—"कल्लूजी, आप अपना परिचय खुद ही दो तुलोजी राव का मुख बड़ा ही कोमल है। देखो थक गया है ?"

"इस पर सभी हँस पड़े।"

कल्लू ने भी कुछ संकोच के साथ कहा—"जी, मुझे 'कल्ला सिंह' कहते हैं।"

"कहने दो, कहने दो। हमें कोई शिकायत नहीं और इन सभी को भी नहीं है। क्यों ? नहीं है न ?"

तभी तुलोजी ने पीछे खड़े सभी जवानों को कहा—"रे भाई, नरसू दादा इतना पूछ रहे हैं तो खुद ही क्यों नहीं बताते। चलो, आगे बढ़ो एक-एक, और अपना-अपना परिचय दो। हर एक को बोलने के लिए भी सुपारी देनी पड़ेगी क्या ?"

यह डपट पड़ते ही सारे ही नरसू दादा के आसपास आकर खड़े हो गए और एक-एक ने अपना परिचय दिया—

"राम-राम दादा ! मैं—माधवजी गांव : तावदर वाड़ी।"

"जी ! मैं आतकर, वाड़ी का हूं।"

"ठीक है जी, पर नाम तो बताओ।"

"अरारा। यह रह ही गया—मेरा नाम अकूजी।"

इस प्रकार हँसते-हँसते सभी का परिचय हुआ। क्षण, दो क्षण रुककर तुलोजी ने अपने दोस्तों की ओर देखा। कुछ आंखों में बातचीत-सी हुई

सभी का संकेत पाकर, तुलोजी ने दादोजी से पूछा—"दादोजी, यह सब ठीक है, पर यह भी तो बताइए कि हम सब लोगों को यहां किसलिए बुलाया है ?"

"काम वैसे कुछ-बहुत बड़ा नहीं है और आपके लिए नया भी नहीं है। छोटे राजा साहब, शाहाजी राजे भोंसले के पूत हैं—कर्यात-घाटी की जागीरदारी भोंसलों की और बहुत सालों से है। अभी तक बड़े राजे साहब इधर ध्यान नहीं दे पाए थे। अब उनका यह पूत यहां रहने आया है। साथ में दादोजी कोण्डदेव हैं यह आदमी उमदा है। मैं उन्हें अच्छी तरह से जानता हूं, परखता हूं। ऐसे नेक चतुर आसामी बहुत ही कम मिलते हैं। छोटे राजे भोंसले की माता जीजाऊ साहिबा भी—जागीर में मुक्काम के लिए आई हैं।"

"दादोजी ने कहला भेजा था कि राजे रायरेश्वर आ रहे हैं। शंकर-जी का दर्शन होता। साथ ही आसपास के गांव के लोग भी यहां उस समय इकट्ठे हों तो सभी से भेंट होगी, जान-पहचान होगी—शिउबा राजे छोटे हैं, पर उमदा स्वभाव, तीखे नाक-नक्श और दिलदार हैं।"

"उन्हें पहाड़ों, घाटियों में घूमने का बड़ा शौक है।" तभी भारी उत्सुकता से एक ने पूछ लिया—

"आपने देखा है उन्हें ?"

"हां-हां, एक दो बार मैं पूना गया था। आलंदी में ज्ञानेश्वर की समाधि के दर्शन को गया था, तब उनसे भेंटकर पाया था। तुलोजी ने सुनी बात को आजमाने की इच्छा से पूछा—

"तलवार चलाने का भी बड़ा शौकीन है ?"

तभी अकोजी बीच में ही बोला—"मैंने बताया उस पर विश्वास नहीं, क्यों ?"

"अरे, मैंने खुद कोंढणपुर में उन्हें देखा था। क्या बताऊं ! उनका रूप, गोरा-गोरा रंग, नये गुड़-जैसा पीला-पीला। और बोल भी कैसा ? मीठा ऐसे, जैसे टपकता शहद। एक बार किसी की उससे पहचान हुई, बातें हुईं तो वह राजे को छोड़ नहीं सकता। मेरे सिर पर पगड़ी बांधी थी बेटा ! मैंने कुश्ती जो जीती थी !

"खुद राजा ने बांधी थी ?"

"खुद तो नहीं, पर उसके साथ चट्टान-सा मजबूत आदमी था—उसने बांधी थी ?"

अब सभी की बातचीत का केन्द्र तुलोजी बन गया। उनकी बातचीत को बीच में रोककर नरसी प्रभु बोले—"मित्रो ! अब अपने सारे काम से निपट लो, भोजन भी कर लो। एक बार बातचीत के लिए बैठक में बैठेंगे तो फिर उठना नहीं हो पाएगा।"

तुलोजी बोला, "नानाजी, दाल-आटा लाए हैं। उसे बनाएंगे। रायेरेश्वर को भोग लगाएंगे और फिर सभी एक साथ ही भोजन करेंगे। कैसा रहेगा ?"

"इससे भी अच्छा कुछ हो सकता है ?"

"हमारे पूछने का मतलब यह कि छोटे सरकार बड़े सरकार के बेटे हैं। हम लोगों के साथ वे थाली पर बैठेंगे ?"

"करेंगे जी, करेंगे। छोटे सरकार हैं वे। वे सभी के साथ बैठेंगे—मिलेंगे, खाएंगे। चलो, अपना काम शुरू करो। बर्तन तो जंगमों के यहां के ही लोगे न !"

शिवालय के बाहर आंगन में सभी लोग ढाक की पत्तलें बनाकर बैठे थे। चावल और कढ़ी परोसी गई थी। यह सब होते-होते सूरज डूबने को हो गया था। राजे खुद भी एक पत्तल लेकर सभी के बीच में बैठे थे। सभी को असीम आनन्द हो रहा था। सभी राम-नाम की गर्जना कर रहे थे—'लो, लो ! और लो !!

तानाजी खुद परोस रहे थे—सभी डकार ले-लेकर पेट पर हाथ फेर रहे थे।

तानाजी ने चावल के बर्तन को बजाना शुरू किया। राजे बोले—"सुनो रे, भोजन समाप्त होने की निशानी हो गई।"

तभी एक बोला, "जी नहीं, यह तो तानाजी की शरणागति की घण्टी है।"

"अब उनके पास कुछ बचा ही नहीं है।"

"तो तानाजी क्या खाएंगे।"

"यही तो वे बर्तनों से पूछ रहे हैं।" इस पर सभी हँस पड़े।

इतने समय तक दादोजी कोण्डदेव और नरसी प्रभु देशपाण्डे—एक ओर मंदिर में बैठकर बातें कर रहे थे। इन लोगों का खाना-पीना हुआ तो दोनों बाहर आंगन में आ गए। नरसी दादा ने दादोजी से पूछा—

"दादोजी बैठक कहां होगी ?"

"भीतर रायेरेश्वर के सामने ही।"

सभी तब तक हाथ-मुंह धोकर देवालय में आ चुके थे। सभी ने अपने पिछोरे बिछा दिए। राजे के लिए घोड़े पर चढ़ाया गया गासिया बिछाया गया। देवालय में रखी मशालों में तेल डालकर उन्हें ठीक किया गया। सभी व्यवस्था ठीक हो गई थी। तभी राजे भीतर आए। उनके लिए खास बनाई गई बैठक को देखकर बोले—"पन्त चाचा! ईश्वर के द्वार पर सभी एक-से हैं। मेरे लिए इस विशेष बैठक की जरूरत नहीं।"

नरसी प्रभु बोले—"अब बिछा दिया है तो रहने भी दीजिए।"

राजे बड़ी ही नम्रता से बोले—"नहीं, यह नहीं हो सकता।"

"आप इस घाटी के माननीय हैं। आप इस बैठक पर बैठेंगे।"

"मैं तो एक बालक मात्र हूं। मैं यहां अपने भाइयों के साथ बैठूंगा।"

नरसी प्रभु ने राजा का रुख देखा। समझ गया कि यह पानी कुछ अनोखा है। उठे, और उस गासिया को उठाकर एक ओर रख दिया।

सभी अपने-अपने पिछोरे पर बैठ गए। राजा को सभी लोग कितनी ही देर से देख रहे थे, पर फिर भी सभी की निगाहें राजा की ओर ही थीं। दादोजी पन्त ने राजा की ओर देखा। राजा के संकेत करते ही दादोजी उठकर खड़े हुए···खंकारकर वे बोले—"रोहिड़-घाटी और बेलखण्ड-घाटी के मेरे मित्रो! राजे शिवाजी भोंसले—जागीरदार—कर्यात-घाटी के परगना पूना की उपस्थिति में, मैं आप सभी का यहां स्वागत करने की इजाजत आप से चाहता हूं।

"दो-चार साल हो गए। राजे मुकाम पूना में रह रहे हैं। जागीरदार के घर के खास लोग—पूना में आकर बसते ही—कितने ही उजाड़, गांव फिर से बसने लगे हैं। आबाद हो रहे हैं। लोगों में विश्वास जगा है। लोगों ने पड़त पड़ी जमीन को भी आबाद करना शुरू किया है। जंगलों,

बीहड़ों, चरागाहों में जंगली पशुओं का ऊधम था—डर था—राजा की आज्ञा से उन पशुओं को मारकर जंगलों-बीहड़ों को, चरागहों को—आवाद करने वालों को—नकद इनाम और तनखा मिलने लगी है। लूट, डाके-राहजनी करने वालों का बंदोबस्त किया गया है। जो उद्दण्ड थे, बेकाबू हो गए थे, उन्हें दण्ड देकर सीधा किया गया है। नवयुवक काम-धाम न होने के कारण घर बैठे थे, उन्हें राजा ने अपने पास बुलाकर काम दिया है, उनको सेना में रखा है, उनकी कमर में शस्त्र बांधा है।

"बैठने के लिए घोड़े दिए, जमीन के महसूल को ठीक किया है। घुड़-सवारों को साथ लेकर राजे खुद सारी जागीर के गांवों में घूमने लगे हैं। स्थान-स्थान पर नये-पुराने झगड़े थे, उन्हें खतम किया है। इस प्रकार सारी जागीर की सीमा में आबादानी हो गई है। उसी क्रम में राजे आज यहां आए हैं।

"यहां आने का एक कारण और है—वह भी आगे बताता हूं—कर्यात घाटी के लोगों के सगे-संबंधी रिश्तेदार इस इलाके में रहते हैं—पर यह आदिलशाही का प्रदेश है। प्रत्यक्ष बादशाह का मुलूख है, उसी का शासन यहां चलता है। कहीं कुछ कम-ज्यादा होता है—बदइंतजामी होती होगी—बादशाह कृपावन्त है—फिर भी उनके शासन में अपने ही सगे-संबंधियों का कुशल-मंगल खुद आकर पूछना ही चाहिए, जान-पहचान बढ़ानी चाहिए, यह एक साधारण व्यवहार है। पर है आवश्यक, जरूरी भी। बस, आज आने का राजे भोंसले का यही एक मात्र प्रयोजन है।"

दादोजी पन्त इतना बोलकर रुके। बोलने का प्रभाव देख रहे थे। पहले शान्तचित्त से सुनने वाले लोग आदिलशाही का नाम आते ही कुछ बेचैन-से हो गए थे। यह दादोजी की तीखी दृष्टि ने देख लिया। उन्होंने लोगों को एक प्रेरणा और देने की दृष्टि से क्षण, दो क्षण रुककर कहा—"हमें और राजे भोंसले को यह मालूम है कि इस इलाके में जीवन कष्ट का है। आजीवन पहाड़ों-दर्रों से ही वास्ता है। पहाड़ भी कैसे! ऊंचे आस्मान से बातें करने वाले। उन पर चढ़ना-उतरना पड़ता है। हवा, आंधी, पानी को सहना पड़ता है। यहां की इसी परेशानी के कारण बादशाह सलामत ठीक-ठीक निगाह नहीं रख पा रहे हैं। नहीं तो बादशाह का शासन

नेक है।"

तभी आवेश से तुलोजी बोले—"बादशाह की यह नेक निगरानी—बस हो गई। हमें उनका यह नेक शासन नहीं चाहिए और न यह नेक निगरानी ही चाहिए।"

उन सभी युवकों के मत में आदिलशाही की बातें साफ-साफ कहने की थीं। पर प्रश्न एक ही था कि इस आग को पहले कौन छुए? तुलोजी ने उठकर उसे रास्ता दिया तो उनमें से एक-एक उठकर बोलने लगा—

"पन्त चाचा, आपकी आदिलशाही का वह नेक अमल रहा दूर विजापुर में—इधर यहां तो बारहों मास तपता बैसाख-ही-बैसाख है। आप जागीरदार हो, आप क्या जानो! यहां हमें जलती आग पर दिन भर बैठना पड़ता है। दूसरे का दुःख शीतल होता है, यह सही ही तो है।"

बीच में ही मुधोजी उठा। उसका मुंह लाल हो रहा था। बोला, "इस आदिलशाही से तो उस रावण की रावनाई अच्छी ही थी। जिसके नीचे जलता है, उसे ही उसकी जलन मालूम होती है। हम किसानों, मजदूरों के संसार उजाड़ हो गए, बहू-बेटियों का पता नहीं। आज ठीक कल क्या होगा, इसका भरोसा नहीं। ऐसी बेबन्दशाही की हमें परवाह नहीं। इसका भरोसा नहीं···दयावन्त बादशाह का हमें कुछ भी सुख-दुःख नहीं। वह उधर मर भी जाए तो कोई मातम-पुरसी भी करने नहीं जाएगा, न ही सिर मुड़ाएगा।"

ये बातें जरा ज्यादा तीखी थीं। नरसी प्रभु उठकर खड़े हो गए—उनपर जिम्मेदारी अधिक थी। दूर तक की सोचकर ही कुछ करना उनका स्वभाव था। उन्हें बादशाही में रहकर मावलों का मन भी रखना था। उन्हें सम्भालना था—इस शाही शासन की आग की चिनगारी से वे भी तो झुलस सकते थे। यह सब सोचकर वे हाथ उठाकर सभी को रोककर बोले—"मेरे पूतो! जरा, मुझ महतोरे की भी कुछ सुनोगे?"

सभी लड़कों में आज कुछ जोश था, जरा बेपरवाही से ही बोले—"ठीक है आप भी बोलिए।"

"बादशाह सलामत का हमें शुक्रगुजार होना चाहिए, उनकी मेहरबानी से ही हम खुशहाल हैं। उनके शाही बंदोबस्त के मुआमले में, ऐसी

गैर जिम्मेदारी की बातें नहीं करनी चाहिए। मन में आग सुलगी हो तो भी लहू गर्म हो गया हो तो भी—"

तभी मुधोजी बोला—"नानाजी ! हम गंवार ठहरे। हमारी सारी बातें साफ रहती हैं। आप जैसे प्रभु बामनों जैसे पेट में एक, और होठों पर दूसरा—ऐसा हम बोल नहीं पाते। बादशाह क्या करेगा ! फांसी लगाएगा, कोल्हू में डालकर हड्डियों को पीस डालेंगे, इससे बढ़कर क्या करेंगे ?"

इतना कहते-कहते उसका चेहरा लाल हो गया था। नाराजी के कारण उसकी आंखों से चिनगारियां फूट रही थीं।

"मेरी बहन खान ने घोड़े पर डालकर भगाई। मैं वहीं हाथ उठा सकता था। फिर भी आपके पास फरियाद लेकर आया था या नहीं ? कुछ करूंगा—कहकर आपने मुझे समझा-बुझाकर लौटाया था। इस बात को कितने साल हो गए—उस अपमान का जहर पेट में छिपाए घूम रहा हूं। बहन को घूम-घूमकर ढूंढ़ा, फिर से आपकी शरण आया—तब आपने कहा था—यह तो अब बहुत पुरानी बातें हो गईं—अब क्या हो ? आपने यही तो कहा था ?"

मुधोजी की आग न जाने कितनी बढ़ती, बरसती ! पेट में जल जो रहा था।

नरसी प्रभु ने 'बेटा, बेटा' कहकर जैसे-तैसे उसे समझा-बुझाकर शान्त किया और बोले—"मेरे बेटे, तेरी एक-एक बात सोलह आने खरी है, पर आज हम यहां इन बातों को ही कहने नहीं आए हैं। हमें छोटे सरकार से जान-पहचान करनी है तब इस ओर भी तो ध्यान देना है ?"

मुधोजी कुछ धीमे स्वर में पर नाराजी से ही बोला—"वे तुम्हारे छोटे सरकार भी यदि यही कहने वाले हों कि तुम भी ठीक—हम भी ठीक—तुम्हारा हमारा बांटकर खा-पीकर चुप रहेंगे तो उनका राज्य उन्हें ठीक हो, हमें क्या ?

"हमें बताया गया था कि कुछ सुख-दुःख की बातें करेंगे—सुख क्या होता है—वह तो हमने जीवन में कभी देखा नहीं, न ही स्वप्न में और न ही जागते में। कभी उस सुख की हमारी भेंट होती ही नहीं है ? हां, दुःख अपमान, पीड़ा, अत्याचार हमारे पास खूब हैं। हर रोज, क्षण-क्षण स्थान-

स्थान पर, इन सभी से हमारी भेंट होती है। इसीको हमने छोटे सरकार के सामने रखा। आप मना कर रहे हैं तो ठीक है, ये चले हम उठकर। राम-राम, दादा राम रा···म।"

यह कहकर वह उठा और चलने लगा। तभी उन जवान लड़कों में से दो-चार ने उठकर उसे समझाया मनाया—और कहा—"मुधोजी ! तुम ठीक हो, पर थोड़ा सुनोगे भी ? नरसू नानाजी क्या कह रहे हैं ? उसे भी तो सुन लें। यह सब सुन लिया तो क्या बिगड़ता है ! कैसे मर्द हो—इतने में गरम-नरम हो गए ?"

मुधोजी उसी गुस्से में बोला—"यह सब सुनने की कोई जरूरत नहीं है ऐसा कोरा उपदेश तो हम भी किसीको कर सकते हैं।" उसके साथी उसकी 'हां' भरते रहे, बोले—"मुधोजी का कहना भी तो ठीक है।"

नरसी प्रभु ने देखा कि अब तो सारी सभा ही हट रही है। नानाजी भी इस इलाके की स्थिति से खुश थे, ऐसी बात नहीं थी। पर वे अब इस परिस्थिति में ही झुक गए थे। उनमें आज इस प्रकार तनकर खड़े रहने की, छाती तानने की ताकत नहीं थी। वे सब समझते थे कि इस आग को विवेक से ही धीरे-धीरे ठण्डा करना चाहिए। कुछ तो होना ही चाहिए, किया जाना चाहिए। यह वे भी समझते थे, सोचते थे। पर वह क्या हो, कैसे हो, उसकी योजना उनके पास नहीं थी। उनके मन में भी दुःख था, रोष था, संताप था। पर वह इन लड़कों-जैसा उग्र नहीं हो पा रहा था।

देशपाण्डे ने सोचा—'इस समय लड़कों की इस उग्रता को राजा की ढाल पर ही रोका जा सकता है।' उन्होंने दादोजी कोण्डदेव की ओर देखा और बोले—"पन्त, मेरा विचार यह है कि खुद राजा साहब ही कुछ बोलें तो ठीक होगा। आज बड़े राजे शाहाजी भोंसले-जैसा चतुर आदमी पूरे इस दखन में नहीं है। छोटे सरकार शिवाजी उनके पूत हैं वे ही इन लड़कों को जख्मों को फूंककर कुछ ठण्डा करें···?"

छोटे सरकार ने पन्त की ओर देखा। उनकी आज्ञा मिलते ही राजे शिवाजी उठकर खड़े हो गए और सीधे रायरेश्वर के शिवलिंग की ओर चलने लगे। सभी लड़कों ने एक ओर होकर उन्हें रास्ता दिया। राजे गर्भ-

गृह के दरवाजे पर खड़े हुए। नम्रता से मस्तक झुकाया और धीरे-धीरे लौटकर अपने स्थान पर आकर खड़े हो गए। दोनों हाथ छाती पर बांध लिए। एक बार फिर भगवान की ओर देखा।

दो लड़कों ने उठकर मशालों का काजल झाड़ दिया। उन पर तेल डाला। मशालें अब प्रकाश फैला रही थीं।

सारे ही उत्सुकता से राजा के मुख की ओर अपलक देख रहे थे राजा की मुख-मुद्रा भी कुछ लाल हो गई थी। राजा ने क्षणभर होंठ भींचकर, मन को स्थिर किया। सामने बैठी मण्डली को शान्त नजर से देख लिया। उन पर नजर स्थिर की। कुछ क्षण वे स्थिर शांत रहे। इस समय मशालों की जलती लौ की तड़तड़ ही मात्र सुनी जा सकती थी।

क्षण भर बाद धीर-गंभीर स्वर में राजा शिवाजी बोलने लगे। उनका हर शब्द उनके हृदय से निकल रहा था। सुनने वालों के कानों में से उनके ठीक हृदय तक पहुंच रहा था।

"भगवान रोहितेश्वर के सपूतो ! आदि कुल-देवता के उपासको, इन पहाड़ों, दर्रों के जुझारू वीरो ! मैं भी एक छोटा तुम जैसा ही, इसी माटी का पूत हूं।

"भगवान शंकर जैसी प्रेरणा दें, वैसे ही दो-चार शब्द मैं बोलने वाला हूं। वह भी इसलिए कि यहां बैठे बड़े लोगों ने आज्ञा दी है। वैसे देखा जाए तो आपके दुःख को समझकर उस जख्म को फूंककर ठण्डा करना यह काम उन्हीं का है। यह उनके मन में है भी। किन्तु वही काम वे मुझसे करा रहे हैं।

"मैं भरी दोपहरी में रायरेश्वर की पहाड़ी पर चढ़ने लगा। उस समय इस पहाड़ी की उन्मुक्त हवाएं मेरे शरीर को भर-भराकर छू रही थीं। मेरे वस्त्र उड़ रहे थे। रास्ते से चढ़ना कठिन हो रहा था। आंखों में धूल उड़ रही थी।

"क्या वह केवल हवा थी ? नहीं। मेरे मित्रों ! वह केवल हवा नहीं थी। आपके दुखों के प्रखर निश्वास थे।"

राजा के इस वाक्य ने सभी लड़कों के मनों को छू लिया। अनायास सभी ने हुंकार दी। शिवाजी ने आगे कहा—"मेरे मर्दो ! वह तो हमारी माताओं का बहनों का, दुःख भरा दर्द भरा हुंकार था। काटने ले जाई जाने

वाली गौओं का दर्द भरा रंभाना था। इस तीखी तपती भूमि की आवाज थी। पीड़ित शोषित गिरिजनों, किसानों का मूक रुदन था। ये सारे दर्द-दुःख इन पहाड़ों के दसों-बीसियों मार्गों से बहकर मेरे शरीर को झकझोर रहे थे।

"जो युद्धों में काम आए, जो झगड़ों-टंटों में काट दिए गए, उन बेकसूर लोगों के दुःख भरे उद्गार थे। जिनकी उस अन्तिम क्षण भी कामनाएं अतृप्त ही रहीं, उनकी वे करुण हुंकार थीं। दुःख भरा रुदन था। भगाई, भ्रष्ट की गई माताओं, बहनों के मन की शाप-वाणी थी। जहाजों में भर-भरकर दूर देश में ले जाकर बेची गई बहनों के वे आर्तनाद थे, जो उस भयंकर क्षण में उनके मुख से निकल रहे थे।

"कितने ही कुलवन्तों की बहू-बेटियों को, जिनके आंचल कभी जूड़े से नीचे नहीं पड़े थे, भोगकर उनके मुर्दे नालों-गड्ढों में फेंक दिए गए थे। वहां रिस-रिसकर जमे थे, उनके वे आंसू ही आज उठ-उठकर मुझे झकझोर रहे थे।

"अमीनों, हाकिमों के घुप अंधेरे आदबखाने में जो सड़-सड़कर, गल-गल कर मार दिए गए, उनके वे करुण चीत्कार थे। बोरों में भरकर समुद्र के पानी में डुबोकर मार दिए गए, उन अभागों के वे अस्पष्ट क्रन्दन के दर्द भरे स्वर थे।

राजा के उन शब्दों के साथ-साथ सुनने वालों के शरीर सिहर उठे। राजा का स्वर अब करुण हो गया था। आंखें पानीदार हो रही थीं। मुख तेज से ललक रहा था। राजे क्षणभर रुककर आगे तीखे स्वर में बोले—"मेरे भाइयो! मेरे जवान मर्दो!! जुंझारू हिम्मत वाले बहादुरो!!! ऐसा यह सब एकमेक होकर उठा हुआ महाभूत मेरे शरीर पर बरसने लगा। मेरे कानों में भर-भर, घुसकर मुझे बताने लगा—शिवा! यह गाड़ दी गईं आवाजें हैं। यहां बैठे शंकर के आसपास घूम रही हैं। उसके दरबार के दरवाजे पर युगों से दस्तक दे रही हैं। उग्र होकर हुंकार रही हैं। अब देखना इतना भर है कि वह शंकर दयासागर प्रलयंकर है। उसका वह तीसरा नेत्र कब खुलता है! उसकी उस आग की लौ के साथ उठने वाली पुकार को साथ देने की तेरी छाती में हिम्मत हो, तभी इस रायरेश्वर

के शिवालय की ओर पैर बढ़ा। नहीं तो लौट जा! जा, तेरी राह खुली है। तू लौट सकता है।

"मैंने रुककर, अपने इस छोटे शरीर की ओर देखा। सोचा—'ठीक ही तो है। मैं छोटा, मेरी छाती छोटी।' पर तभी एक साथ साहस उमड़ पड़ा। हिम्मत जग उठी। मन में एक आवाज उठी। कहा—'अरे यह केवल तेरे ही लिए पुकार नहीं है। तू छोटा है। तेरी छाती छोटी है पर तेरे भाइयों के चौड़े शरीर, फौलादी सीने किसके हैं? उनके मजबूत बाजुओं की फुरफुराती ताकत किसकी है? आकाश को अपने हाथों में भर लेने वाली ताकत, उनकी हिम्मत किसकी है?'

"सारे एक होकर हाथों में हाथ गूंथकर खड़े हो जाओ तो यह सारा-का-सारा क्या तुम समेट नहीं सकोगे?

यह सुनते-सुनते ही मैं रायरेश्वर के सामने जाकर खड़ा हो गया तो उसने भी मेरे मस्तक पर हाथ रखकर कहा—'मेरे बेटे, चिन्ता मत करो। अब लौटना कैसा! पैर जमाया है—उसे पक्का करो—अब लौटना हो ही नहीं सकता। यहां हिन्दवी स्वराज्य हो—यह मेरी कामना है! ये सारे नये शिलेदार तुझे दिए हैं। ये सब मेरे ही गण हैं। इन्हें साथ लेकर पराक्रम की पराकाष्ठा करो। प्राणों की चिन्ता न करते हुए बढ़ते रहो। आगे-ही-आगे बढ़ते रहो। तुम्हारी सारी इच्छाएं, आकांक्षाएं मैं पूरी करूंगा। इस जनपद में न्याय का, धर्म का राज्य होना चाहिए। दुष्ट म्लेछों का नाश होगा। अन्यायी, अत्याचारियों के मुण्ठ धूल में लुढ़केंगे। नीच पाखण्डी नष्ट होंगे। यह मेरा आशीर्वाद है, यह समझो।"

यह कहकर राजे चुप हो गए। उनके इस भाषण से सारी सभा प्रभावित हो गई थी। सभी चित्र से राजा की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे। तभी राजे अपने स्थान से हिले। महादेव के गर्भगृह की ओर बढ़े। उनके पैर जल्दी-जल्दी चल रहे थे। एकाएक भीड़ दो भागों में बंट गई। राजे गर्भगृह के पास जाकर खड़े हो गए और एक अद्भुत घटित हो गया।

शिवाजी ने फुर्ती से कमर का खड्ग खींचा, अपनी छोटी उंगली पर चलाया और उस रक्त की धार महादेव की पिण्डी पर धर दी।

सारी सभा चकित थी। सभी भर्राकर उस कौतुक को देख रहे थे।

तभी एक ने विभोर होकर गर्जना की—"हर हर महादेव !"

सारा मंदिर, सारा शिवालय गूंज उठा—"हर हर महादेव !"

सत्ताईस

रायेरेश्वर का मंदिर घुप अंधेरे में शान्त था। उसके आंगन में छोटा-सा अलाव जल रहा था। उसकी लौ बीच-बीच में जग-सी उठती थी। क्षण, दो क्षण आसपास के दृश्य को उजला देती और फिर सो-सी जाती थी। उस अलाव के आसपास गोल घेरे में कुछ लोग बैठे थे। अब तक उनकी बातचीत समाप्त हो चुकी थी। एक-एककर उनमें से उठकर अपने सोने की व्यवस्था में जुटने लगे थे।

शिदबा अपनी कम्बली ओढ़कर मंदिर के बाहर खुले में आकर खड़े हो गए। तभी उनका एक हुजरा पास आकर बोला—"पन्त चाचा वहीं अलाव के पास सो रहे हैं। वहीं नरसू नाना भी सो रहे हैं। आपके लिए कहां व्यवस्था की जाए ?"

राजे चुप थे। उनकी नजर आसपास के दृश्य पर टिकी थी। आधी रात बीत चुकी थी। आकाश में चन्द्रमा अब मुरझा रहा था। नक्षत्र-तारिकाओं का तेज भी फीका-फीका हो रहा था। उस बुझती चांदनी में आसपास की पहाड़ियां झिलमिला रही थीं। उनमें से दो पर्वत-शिखर कुछ उभरे हुए दिख रहे थे। सामने मुरुमदेव नाम का पर्वत-शिखर था। उसी के परे दूर तोरणा किले का उभरा मस्तक दिख रहा था। राजा का मन मस्ती में खड़े उस किले के शिखर ने खींच लिया था। हुजरे की बातें सुनकर भी वे चुप थे। उस किले को देखते हुए ही उन्होंने उसे कहा—"तानाजी ! मालसुरे को भेज दो।"

हुजरा लौटा। मंदिर के आंगन में तुलोजी के पास खड़े तानाजी कुछ बातें कर रहा था। उसे राजा की बात बता दी। तानाजी तत्परता से वहां से राजा के पास पहुंचा।

राजा ने कहा—"तानाजी ! काम तो कुछ है नहीं। नींद आ नहीं रही

है। सोचता हूं इस बीहड़ में ही कुछ दूर तक घूमा जाए। चलते हो ?"

"आता हूं। कम्बल लेकर आता हूं।"

इतना कहकर तानाजी लौटा। अलाव के पास पड़े कम्बलों में से एक कम्बल उठाया। उससे शरीर को ओढ़कर उसकी गांठ पीठ पर कस ली। हाथ में एक खड़ग लिया और राजा के पास आया और बोला—"किस ओर चलना है ?"

राजे बिना बोले ही मंदिर को पीछे छोड़कर आगे जंगल की ओर बढ़ गए। उनके पीछे तानाजी और हुजरा चल रहे थे। तानाजी को कुछ कहने की इच्छा हो रही थी, पर राजा की तंद्रा कुछ ऐसी थी तानाजी खामोश ही रहा।

दोनों ओर घास उगी थी। हवा की हरकत से पहाड़ी की ढलान पर उगी घास पर एक छोर से दूसरी ओर तक एक लहर-सी उठती। उस दृश्य में खोए-से वे सभी आगे बढ़ रहे थे। बीच-बीच में चार-पांच वृक्षों की कतार-सी आती तो सामने का तोरणा किला ओझल हो जाता। वह कतार समाप्त होते ही तोरणा दिखाई देता था। राजा की नजर बार-बार सामने आने वाले उस किले पर पड़ती। एकाएक उन्हें राणोजी की याद आई। उसको उन्होंने उसी ओर भेजा था। उसी आंचल में उसका गांव भी तो था। धीरे-धीरे राजा के सामने का दृश्य धुंधला हो गया और उनके सामने बीते कितने ही दिनों की घटनाएं उभरने लगीं। कोण्ढणपुर की यात्रा। वहां से लौटते हुए भूतेश्वर की टेकड़ी पर दिखता तोरणा। वहां से वह दक्षिण की ओर दिखता था। आज इस रायेरेश्वर की टेकड़ी से वह उत्तर की ओर चमक रहा था। राजा का मन सैहयाद्री के विस्तार एवं उसकी दुर्गमता पर चकित हो रहा था। कितना इसका विस्तार है! कितने शिखर! कितनी पहाड़ियों की कतारें! एक, दो, तीन···इसमें से कितनों पर मनुष्य के पद-स्पर्श हुए हैं ? कितने शिखर आज अभी भी अछूत हैं!

इनमें से कितने शिखरों को इस देश के पराक्रमी पुरुषों ने तटों, बुरुजों से सजाया है। कब सजाया ? कोण्डाना किले का पुराना नाम कोडंण्य दुर्ग। यह नाम उसका पुराना जीवन बता रहा है। कितने वर्ष बीत होंगे ? हजार, दो हजार ? शिवनेर-शिखर, उसकी गुफाएं, उसका

किला, यह भी कितना पुराना लगता है। वह भी कोण्डाना किले जैसा ही लगता है।

बीजापुर में राजा शिवाजी ने सुन्दर पत्थरों से बने नाजुक, सलोने, महल देखे थे। पर वे किले ! कितने भिन्न, इनके पत्थर अनगढ़। काले, विशाल ! एक-से-एक लोहे-जैसा। उनसे बने ये किले। दुर्लंघ्य। इस देश के लोगों-से अजेय चौड़े, विशाल सीने-से।

तभी राजा को तानाजी का स्मरण हो उठा। उन्होंने क्षण भर पीछे देखा। तानाजी को देखकर राजा का मन सदा ही कौतुक से भर जाया करता था। आज भी उनकी दृष्टि कौतुक से भर गई। प्रस्तर अडिग विश्वस्त तानाजी साथ रहने पर सदैव किले-सी सुरक्षितता प्रतीत होती थी। राजा आगे बढ़कर तानाजी के कन्धे पर हाथ रखकर कुछ कहना ही चाहते थे, तभी तानाजी ने ही कहा—"राजे, जरा रुकिए।"

"क्यों ? क्या हुआ ?"

सामने अंधेरे में कुछ आहट-सी आ रही है। आप जरा यहीं रुकिये।" इतना कहकर तानाजी अपना खड़ग पेलते हुए आगे बढ़ गया। आगे जाकर एक टीले पर ठहरकर उसने पहले आवाज दी—"कौन है ?" पर उत्तर नहीं आया। तब जरा कठोर आवाज में हांक दी—

"कौन है ?" तभी पेड़ों की कतार में से दो आदमी घोड़े दौड़ाते निकले। उन्होंने तानाजी की करड़ी आवाज सुनी। घोड़ों को रोका। तब तक तानाजी की तीसरी आवाज उठी थी। उनमें से एक ने रुककर उत्तर दिया—"हम कपड़ा बेचने वाले हैं।"

"तो कापाड़िया हो और इतनी रात बीते रास्ता नाप रहे हो ?"

तानाजी को विश्वास नहीं हुआ। उसने उन्हें वहीं रुकने को कहा और लम्बे डग भरते हुए उनके पास जा खड़ा हो गया। और डांटते हुए पूछा—"कौन गांव के हो ?"

"हम कानन्दी घाटी के हैं।"

"यह ठीक है पर गांव का कुछ नाम तो होगा !" कहते हुए तानाजी ने घोड़े की रास थाम ली। अब तक उनमें से एक ने तानाजी को पहचान लिया और वह आनन्द से घोड़े से नीचे कूदते हुए बोला—"कौन ?

मालूसरे तानाजी ?" अब तानाजी ने भी उन्हें कुछ-कुछ पहचाना था। उसने भी आवाज दी—"तुम राणोजी ही हो न ?" दोनों ने एक-दूसरे को आनन्द से बाजुओं में कस लिया। क्षण, दो क्षण बाद उसे दूरकर उसके दोनों कन्धों पर हाथ रखकर तानाजी ने पूछा—"जनाब ! आज इतने दिनों कहां रहे, कितनी प्रतीक्षा की जाए ?"

"बताता हूं, पर राजे कहां हैं ?"

तब तानाजी हँसकर बोला—"अजी, राजा को तुम्हारे बिना चैन कहां ? खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता उन्हें। मुझे अब तक कई बार पूछ चुके हैं।"

यह ठीक है, पर वे हैं कहां ?"

"तुम्हारी तलाश में पहाड़ी किलों पर घूम रहे हैं।"

"नहीं जी।"

"ठीक है, विश्वास नहीं होता तो चलो दिखाता हूं।"

अब तक दूसरा घुड़सवार दूर खड़ा था। उस ओर देखकर राणोजी ने कहा—"शिदबा, नीचे उतरो। यहां से पैदल ही चलेंगे।

चलते हुए तानाजी ने एक बार फिर से राणोजी को पूछा—"तब भी तुम इतने दिन थे कहां ?" "छोटे राजा की भेंट होने पर सिलसिले वार बताऊंगा।" अब तक रात काफी ढल चुकी थी भोर होने को थी।

तानाजी ने पूछा—"पर तुम्हारी तबियत तो ठीक रही ?"

"तबियत ! तबियत को क्या हुआ ! वह तो एकदम ठीक है।"

"ननावरे का कुछ पता लगा ?"

"लगा तो। पर उसके हाल ठीक नहीं थे। इसीलिए आउ साहिबा ने उन्हें इधर आने नहीं दिया।"

"अच्छा तो आप पूना से आ रहे हैं !"

तभी राणोजी ने सामने देखा। उसे उस धुंधले प्रकाश में दूर टीले पर दो व्यक्ति खड़े दिखे। उसने तानाजी से पूछा, "जी वे दो कौन खड़े हैं। इतनी रात में गए ? पहचानो !" क्षणभर राणोजी ने उस ओर देखा और अचरज से बोला—"ये तो छोटे सरकार !"

"तो बता तो रहा था तुम्हें ही ढूंढ़ने निकले थे।"

राणोजी ने घोड़े की रास तानाजी के हाथ में दी और खुद दौड़ते हुए राजा की ओर भागा। पास पहुंचा तो उसका स्वर भीग गया। बोला, "छोटे सरकार ?"

राजा ने भी चकित होकर पूछा—

"कौन, दौलतबंकी ?" राजा ने राणोजी को ऊपर उठाते हुए उसे सीने से लगा लिया। बोले—"कितनी रात कर दी !"

तभी राणोजी ने उन्हें याद दिलाई—

"मैं फरार जो हूं।"

रायेरेश्वर के मंदिर के बाहर आंगन का अलाव अब कुछ मुरझा रहा था, तभी शिदबा झटके से उठा, बोला—"मैं कुछ ईंधन ले आता हूं।"

उस वीरान जंगल में ईंधन की क्या कमी ! शिदबा जंगल में घुस गया। पेड़ की एक बड़ी-सी सूखी फांदी काट लाया और अलाव में डाल दी। अकोजी जंगल से कुछ गोबरियां उठा लाया था। दोनों ही अलाव के पास बैठकर फूं-फूंकर उसे फूंकने लगे। सामने ही शिवबा बैठे थे। उनकी आंखों में धुआं जाने लगा। तभी एक ने चिल्लाकर कहा —"बुद्धुओ ! राजा की आंखों में धुआं जा रहा है न !"

राजे हाथों से धुआं रोकते हुए बोले—"रहने दे, रहने दे। अभी लौ उठेगी तो आंखों का यह दुःख भी दूर हो जाएगा।" अलाव में ज्वाला उठी। सभी के चेहरे उसमें दमक उठे। तभी राजा ने तानाजी को पूछा—"तानाजी इस तोरणा किले की चढ़ाई का नायक किसे बनाया जाए ?"

जरा गंभीर होकर तानाजी ने कहा—"राजे ! मैं सोचता हूं—राणोजी ने अभी तक का हमारा ही काम किया है। अब आगे भी सभी को उन्हीं के साथ रहकर उनके कहे के अनुसार काम करना चाहिए। वे बताएंगे, वह आखिरी बात रहेगी और यह ठीक भी रहेगा। क्योंकि राणोजी उसी आंचल के हैं। वहां कितने ही लोगों से जान-पहचान है। इसीलिए इस चढ़ाई के मुखिया वे। इस पर भी आप की बात सिर माथे होगी।"

राजे कुछ चिन्तित स्वर में बोले—

"मुझे आशंका एक ही है।"

"वह कौन-सी ?"

"दिन में राणोजी उस इलाके में उजागर घूम नहीं सकेंगे।"

राजा ने राणोजी से पूछा—"दौलतबंकी, सारा जंगल रात में पार करना पड़ेगा, कर सकोगे ?"

"जी !"

"देखो, बहुत होशियारी से। उनकी चौकियां होंगी, पहरे होंगे। हमारी हलचल और हरकत का अता-पता जानकर वे तैयार हो जाएंगे।"

तभी मुधोजी बोले—"मैं जरा बीच में कुछ कहूं ?"

"कहो, कहो।"

"राजे, हम उस इलाके के बशिन्दे हैं। जंगल के डगर पगडंडियां, चौपायों की लीकें, बन्दरों, रीछों—जैसे पशुओं के राबते के रास्ते, ऊंचे-नीचे, गहरे जंगली रास्ते, घाटियों की भूल-भुलैयां, ये सारा जितना हम जानते हैं उतना, उनके बाहर के आए चौकीदारों को मालूम होगा ही नहीं। हम बताएंगे और वे बैलों-जैसी गर्दन झुकाकर मान लेंगे। वे पूछेंगे—'यह रास्ता किधर जाता है ?' हम दाबकर कहेंगे—मक्के की ओर और वे उस ओर मोहरा कर नमाज पढ़ेंगे।"

इस पर सभी खिल-खिलाकर हँस पड़े। राजा भी इस आनन्द में मिल गए। तभी तुकोजी बोला—"राजे, यह जंगल भी कैसा है ? हम लोगों का यहां इतना राबता है पर कभी-कभी हम भी फंसते हैं। हमें भी जंगल में भूल पड़ जाती है तो ये नये बाहर के आये पहरेदारों की चिन्ता आप बिलकुल न कीजिये।"

"तो यह मुहीम तय हो गई।"

"जी !"

"और इस मुहीम के नायक, जिम्मेदार नायक, दौलतबंकी होंगे।"

तभी रोणोजी ने उठकर राज को मुजरा किया। तुकोजी, अकोजी, मुधोजी सभी ने राजा को मुजरे किए। तानाजी ने कहा—"अरे मर्दो, हमारे नायक को मुजरा तो करो !"

तभी खुश होकर राणोजी ने तानाजी का हाथ पकड़कर उसे अपने सीने से लगा लिया।

सभी खुशी से उछल पड़े। और उस दिन तोरणा किले की मुहीम

पक्की हो गई।

इस पूरे पठारी आंचल के मुख्य बाजार का गांव बिभर दूर था। इस अंचल के गांव के लोगों को बेल्हगांव जरा पास पड़ता था। यहां बाजार तो बना नहीं था। पर दो-चार बनियों की दुकानें थीं। यहीं आसपास के लोग आते, छोटा-बड़ा सौदा खरीदते। यहां लोग मिलते, इधर-उधर की बातें होतीं और एक बात हजार रूप लेकर हजारों के मुखों से दूर-दूर तक पहुंचती।

एक दिन भोप्पाजी बड़े मटके में हाथ डालकर गुड़ निकाल रहा था। एक हाथ में ढाक का हरा पत्ता लेकर उसे कमर में पहने पंचे पर मल-मलकर साफ करते हुए बोला—"देख सखा! आज तेरे घर पूजा है। आज तो सौदा दे रहा हूं, पर यहां से आगे ये उधारी चलेगी नहीं।" ऐसा कहते हुए उसने गुड़ का टुकड़ा उस पत्ते में लपेटा और ऊपर से ही रखमा के हाथ पर छोड़ दिया और पास ही बैठे चिलम भरते साथी से बोला—"जात मांगों की, पर नाम देखो तो—विठुबा, रखमाई। अरे, जरा अपनी जाति को देखकर नाम रखो। जैसे—बिरनाक, हीरनाक।

रखमाई रुकी। बोली—"सही है दद्दा, पर यह नाम मां-बाप ने रखा। उसे अब मैं क्या करूं?"

"हां, यह भी ठीक है, पर अपने लड़की-लड़कों के क्या नाम रखेगी, ज्ञानोबा मुक्ताई?" यह बोलते हुए उसने चिलम में फूंक मारी। उसका धुआं छाती में पहुंचा तो लगा खां-खांकर खांसने। रखमाई हँसते हुए बोली—"नाम लेते हैं बड़ों के, पर तब भी छाती में मुंह में, मुई चिलम है,।" और चिढ़ाती हुई अपने घर भाग गई।

चिलम ठोककर मावले किसान ने भोप्पाजी से कहा—"भई, जरा जल्दी करो और निपटाओ हमें भी।"

"हां, हां भई, निपटा देता हूं। इतनी भी क्या जल्दी है?"

"चावल नहीं है क्या?"

"नहीं, इस साल चावल खरीदा ही नहीं। इतनी इधर खरीदारी भी तो नहीं है। बहुत-सा सामान ले रहे हैं। कुछ कारज है क्या?"

"हां, डोकर नहीं रहा। उसका सराद्ध है। अब बातें रहने दो। देर

मत करो, घर लौटने को देर हो जाएगी और यह जंगल का रास्ता।"

"हां भई, पर क्या यह रास्ता आज ही देखना है ?" इधर-उधर देखकर मावला किसान धीरे से बोला—"क्या तुम जानते नहीं ?"

अजी आजकल रात-बेरात जंगल में जिंदों की सवारी निकलती है। आज इस पहाड़ी पर, कल उस पहाड़ी पर। कभी आधी रात, कभी रात के दूसरे ही पहर। हजार-हजार मशालें जलती हैं। एक साथ एक क्षण दिखती हैं, दूसरे क्षण गायब। क्या कहें भई, आजकल तो इधर रात-बरात जंगल में पैर डालने की हिम्मत ही नहीं होती।"

तब तक दो-चार मावले किसान दुकान के पास आकर खड़े हो गए। उन्होंने कुछ सुना था। पर फिर भी जरा बढ़कर बोले—"जी, क्या ? किसकी सवारी निकलती हैं।"

पहले ने धीरे से कहा—"बिजापुर के बादशाह की।"

भोप्पा बनिया पहले ही यह बात सुन चुका था। आज फिर से सुन रहा था। वह भी मन में डरा था। उसे भी तो जाना था। वह बुदबुदा रहा था और जल्दी-जल्दी सौदा मटकों से निकाल-निकालकर पत्तों में रखता और केले के रेशों से उन्हें लपेटकर लोगों को दे रहा था। तभी एक ने फिर से पूछा, जब वह सहमी आवाज में बोला—"देखो जी, जिंद की, बेताल की, ऐसी हँसी नहीं करनी चाहिए। अभी आकर छाती पर बैठ जाए तो दम छोड़ दोगे। उठो, उठो। जल्दी करो और घर पहुंचो। खा-पीकर दरवाजे लगाकर राम-नाम जपो। चलो।" कहकर उसने दुकान बढ़ाई। दुकान का दरवाजा लगाया। चाबियां कमर में खोंसी और राम-राम बुदबुदाता घर की ओर भागा।

हुसैन खां घर के बाहर-दुकान में ही पड़ा था। कमरी ओढ़ ली थी। तभी उसे हुक्के की तलब लगी। उसने लड़के को पुकारा—"ईस्माईल ! यहां आ बेटा।"

दस साल का इस्माईल टूटा खिलौना हाथ में लिए—सूं···सूं··· फुर्र-फुर्र करता उसके सामने आया। उसे देखते ही हुसैन खां चिल्लाया—"धत् तेरे की ! अबे, जरा नाक तो धो। सूं-सूं कर रहा है। और देख, जरा हुक्का तो भरके ला।"

इतना कहकर हुसैन खां ने धार करते समय बैठने के लिए रखे छोटे लकड़ी के पट्टे को सिरहाने रखकर लेटना ही चाहा था कि आयदानजी और ग्येनू पुरानी कमरी में लपेटकर ढेर-सी पुरानी तलवारें लेकर उसकी दुकान में घुस आए। हुसैन खां उन्हें देखकर मन में जल-भुन गया था।

बहुत दिनों बाद आज उसके घर मुर्गा बना था। उसके सालन के साथ उसने पेट भरकर खाना खाया था। अब वह दीया-बत्ती कर सोने वाला था तो यह आफत आ खड़ी हुई। मना कर नहीं सकता था। कटाई पर घर-घर जाकर वह खलिहानों से मुजौरी करके अपने हिस्से से कुछ ज्यादा ही अनाज वसूलता। और लोग भी मुजोर मुसलमान कहकर उस ओर अनदेखा कर उसे मुट्ठी, दो-मुट्ठी ज्यादा देकर टाल देते थे। इसके बदले उसे उनके काम भी तो करने पड़ते।

न चाहकर भी उसे आज उठना ही पड़ा। बोला—"आओ, शेलार जी! क्या काम लाए हो?" उसे तलवारों का ढेर दिख रहा था। पर बातें कर वह काम कल तक टालना चाहता था।

तलवारों का बोझ इधर-उधर करते आयदानजी ने कहा—"देखो हुसैन! इस काम को देर मत करो। इन सभी पर हाथ फेर दो।"

हुसैन उस ढेर में से एक-एक को उठाता, उलट-पुलट कर देखता हुआ बोला—"अजी, ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा। अमीन की चौकी से बुलावा आया है क्या? कहीं कुछ लड़ाई पर जाना है क्या?" ग्येनू कुछ कहने वाला था, तभी आयदानजी बोला—"देखो खान! अमीन से तो कभी भी बुलावा आ सकता है और आता भी है। तब समय पर हथियार के लिए भागना पड़ता है। अपना हथियार हमेशा तैयार चाहिए। नहीं?"

"सो तो ठीक है, पर ये कहां का कूड़ा उठा लाए हो। इससे तो हँसिये अच्छे!"

"अब क्या करें! बाप-दादों से घर में यही लोहा पड़ा है। नया कहां से लाएं, खरीदें भी तो कहां से और दाम?"

"छोड़ो भी। जो है उसे ही ठीक-ठीक कर रखना चाहिए। चलो, आज शाम तक तैयार कर दो।"

हुसैन उठ बैठा। लकड़ी का पट्टा चक्के के पास ठीक-ठाक कर जमाया,

पास रखा ईंट का टुकड़ा उठाया। इस प्रकार धार करने की तैयारी कर वह बोला—"भाई, यह चक्का कौन चलाएगा ?"

आयदानजी ने चक्के का पट्टा ठीक तरह जमाया।

दोनों पैर चक्के के नीचे जमाकर, झुककर उसने उस पट्टे को खींचा—और धार करने का वह यंत्र छरर्र-छरर्र कर अपना काम करने लगा। ईंट की धूल उठने लगी। हुसैन ने एक तलवार उठाई और चक्के पर आड़ी रखी। छरर्र आवाज के साथ उसमें से चिनगारियां निकलने लगीं। हुसैन का माथा ठनका। बड़े अनमने मन से वह यह काम कर रहा था। उसमें भी माल बढ़िया हो तो काम करने में भी मजा आता।

एक-एक तलवार में जगह-जगह दांते पड़े थे। वह उसी नाराजी से बोला—"आयदानजी, यह क्या कूड़ा है ?"

पर आयदानजी को उस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी। आज उसे जो था, उसे ही तैयार कर आगे का काम करना था। वह चुप रहकर चक्का खींचने लगा।

ईंट की उड़ती धूल से दोनों के मुंह बंदर-से लाल हो रहे थे। और भीतर बैठी हुसैन की घरवाली इन दोनों मरहट्ठों पर लाल हो रही थी। वे आराम से पड़े उसके घरवाले को बेवक्त परेशान जो कर रहे थे !

अट्ठाईस

'बामदेव की पहाड़ी से घिरा मेणोली गांव। वहां आज शिवालय का छप्पर छाया जाना था। अमावस्या के दिन यह काम करने की बात तय हुई थी। अमावस्या के दिन गांव के लोग जंगल में काम को जाते नहीं। जाते भी तो खुद के काम के लिए या फिर देवालय या शिवालय के काम के लिए।'

यह सब सोचकर गांव के पटेल ने गांव भर के लोगों को डुग्गी पिटवा दी।

"सुनो रे—भाई सुनो रे दादा···आज अमावस है—गांव के शिवालय का छप्पर छाना है, 'हर एक को' अपने घर का जो भी सामान हो, लेकर शिवालय पर आना है—रे···रे···।"

एक पहर दिन चढ़ गया—एक-एक आदमी शिवालय के आंगन में उतरने लगा। गांव का काम याने किसी का भी काम नहीं। जिन्हें काम की जिद्द होती है—ऐसे ही घर-बार छोड़कर ऐसे कामों में आगे आकर काम करते। ऐसे लोगों ने पुआल के गट्ठे लाकर शिवालय के आंगन में रख दिये। बांस आए—दोरी आदू। पर वल्लियों के लिए काम अड़ गया—दोपहर के आसपास वल्लियां भी आईं।

एक-एक व्यक्ति छप्पर छाने के लिए ऊपर चढ़ने लगा। तभी एक ने धीरे से कहा—"काम जरा जल्दी निपटाओ। दिन डूबने के पहले काम हो जाना चाहिए।"

"क्यों ? दिन डूबने पर काम न निपटा तो क्या भूत खा जाएगा ?"

"अरे पगले, आज अमावस जो है।"

"तो क्या हुआ ? इसके पहले कभी अमावस आई ही नहीं क्या ?"

तब पहला बोला—"तुम जानते नहीं ? आजकल इधर जिंदों की सवारी रात-बरात निकलती है।"

यह सुनते ही सभी एक बार चुप हो गए। बात सही थी।

एक दिन शिद्दू बैल को ढूंढ़ने जंगल गया। तब उसे सौ-पचास मशालें पहाड़ी के एक छोर से निकलकर दूसरी पहाड़ी की घाटी में घुसती दिखी थीं। भानूजी को भी एक दिन भूत दिखे थे—उछलने-कूदते, चिल्लाते। आनन-फानन उसके सामने ही पहाड़ी की टूटी कगार से भागते गए थे। भानू जी उस दिन मरने ही वाला था, पर हनुमान जी का जप कर रहा था, इसलिए बच गया।

तभी एक ने बताया कि उसके समधी को भी ऐसा ही तमाशा दिखा था। कोंकण से वह घाट चढ़कर ऊपर आ रहा था। तभी उसे पश्चिम की ओर भूतों का जमघट बैठा दिखा था। वे कुछ खा रहे थे। वह भागा था। भागते-भागते उसे कुछ-कुछ दिखा था पर उसका कहना था कि वे सब भूत ही···।

सुगमा आंगन में बैठा दरी के ताने बना रहा था। उसकी घरवाली वहीं एक ओर बैठी सूत कात रही थी। उसके बच्चे हाथ में टिककर लेकर टूक-टूक खा रहे थे। तभी उसका पड़ोसी यूसूजी तकली के सूत की लच्छी बनाते-बनाते सुगमा के आंगन में आया। नीम के नीचे पड़े बड़े-से पत्थर पर टिककर बोला—"तो सयानों का क्या अंदाज है ?"

"किसके लिए ?"

"आजकल ये रात-बरात जो तमाशा चल रहा है।"

सुगमा होठों को भींचकर बोला—"आज अमावस है न ?"

"हां, आज ही तो है।"

"तो मैं आज देखूंगा यह क्या है ?"

तभी सुगमा की घरवाली आंखें फाड़कर देखती बोली—"क्या देखोगे ?"

"यह जिंदों का क्या तमाशा है—वही देखने वाला हूं।"

"अकेले ही ?"

"नहीं, तुम्हें भी गोद में रखकर ले जाऊंगा ?"

ऊंची आवाज में घरवाली भी बोली—"मैं भी देखती हूं, तुम कैसे जाते हो ?"

"क्या करेगी ?"

"इस नीम पर फांसी लगा लूंगी—"

"लगा ले, मैं दूसरी ब्याह लाऊंगा।"

"हां जी ! तू तो मेरे मरने की ही सोचता है—मैं कब मरती हूं और तू दूसरी कब लाता है !"

उस दिन, दिन डूबते ही सुगमा हाथ में फरसा और कमली लेकर जब घर में से निकला तब उसकी घरवाली दरवाजे के पास खड़ी रुंआसी होकर बोली—"तुम नहीं मानोगे जाओगी, ही ?"

"कुछ जड़ी-बूटी भी साथ है ?"

तभी सुगमा ने अपनी फौलादी मुट्ठी हवा में उछालते हुए कहा—"यह रही। तू घर में बैठ, मैं अभी आया।"

पहाड़ी की गहरी खोह के मुहाने पर राणोजी खड़ा था। हाथ में बड़ी-

सी तलवार थी, म्यान की हुई। उसे जमीन पर टेककर उसके सहारे खड़ा वह अंधेरे में देख रहा था। खोह के भीतर एक मशाल जल रही थी। पास ही एक कड़ावीन रखी थी। एक ओर जलता तोंडा टंगा था।

राणोजी उस घने अंधेरे में दूर तक की टोह ले रहा था। पहाड़ी की तलहटी के पेड़ों के सिरे दिख रहे थे। कहीं-कहीं पेड़ों पर जुगनू चमक रहे थे। बीच में ही सियार चिल्ला उठते। कुछ देर पहले बाघ भी हुंकार भर गया था। उस खोह की आड़ में लटके चिमगादड़ उस आवाज से उड़-उड़-कर बाहर चले गए थे।

बहुत देर बाद राणोजी को पास की पहाड़ी के कगार पर कुछ मशालों का प्रकाश दिखा। थोड़ी देर बाद झाड़ियों के बाहर कुछ मशालें भी दिखी और फिर से आगे की झाड़ी में वे सब छिप गईं। राणोजी समझ गया था—उसके ही आदमी बुलाने पर आ रहे थे।

थोड़ी देर बाद बाईं ओर की एक खोह में से सात-आठ मशालें पहाड़ी पर चढ़ती दिखाई दीं। साथ ही, पास ही कुछ आहट भी आई। राणोजी मशाल बुझाकर खोह चढ़ गया और वहीं छिपकर उसने मोर की आवाज दी। दूसरी ओर से प्रत्युत्तर मिला। तब भी उसने नीचे उतरने की उता-वली नहीं की। कुछ ही समय में आयदानजी, ग्येनू, रूपा और हुकमाजी और चार-पांच शेलार कगार के नीचे से खोह के मुहाने पर आए। उनको पहचानने पर ही उसने ऊपर से उनके पास अंधेरे में कूद लगाई। उसकी आवाज से आयदानजी ठिठक कर एक कदम पीछे हटा। उसने अपनी तलवार की मुट्ठी पर हाथ रखा, तभी राणोजी हँसकर बोला—"आयदानजी! मैं हूं, राणोजी।"

आयदानजी ने भी 'राम-राम' किया और बोला, "खोह में अंधेरा दिखा तो मैं समझा कि···।"

राणोजी ने बीच में ही टोककर कहा—"तुम लोग रोज का रास्ता छोड़कर दूसरे ही रास्ते से आए। मुझे कुछ शक था इसलिए मैंने मशाल तुरंत बुझा दी थी।"

"क्या करें! बीच में एक आफत आ गई। उस मस्जिद का बागी बीच में आया। बोला—कहाँ जा रहे हो?" तब उसे कहना पड़ा कि बिझर

को जा रहे हैं। वहां कल तेरई है—फिर बिझर की ओर से ही पहाड़ी पर चढ़ना पड़ा—इससे थोड़ा चक्कर बढ़ गया।"

"ठीक है, पर कौन-कौन आए हैं ?"

"हम सात-आठ शेलार हैं।"

"आज तक क्या-क्या किया है ? कैसी तैयारी की ? शस्त्रों की व्यवस्था क्या की ?"

"पहले, कहे के अनुसार हम दस-बीस परसों तोरणा किले पर गए थे। कारखानीस ने रोजंदारी की बातें भी की। तब हम उसी बात पर अड़ गए और कहा कि हमारे आसामी दिन भर काम करेंगे तो इतनी-सी मजदूरी से काम नहीं चलेगा। इसी बात पर कितनी देर तक झगड़ा चलता रहा। तब तक हम सभी ने किला अच्छी तरह देख लिया।"

"तो बताओ किले की पश्चिम की जगह हमारे लिए ठीक है क्या ?"

"क्यों रूपा, तुमने उधर से देखा है ना ?"

"गया तो था। मैंने देखा भी है। उस ओर एक टूटी कगार है। वहां तट नहीं है। पहरा भी खास नहीं है। उस ओर से चढ़ना सहज है।"

तभी राणोजी को खोह के मुहाने पर किसी की आहट लगी—वह बोला—"देखो तो कौन है वहां !"

आयदानजी ने बाहर जाकर देखा—लौटकर बोला—"हमारे ही आदमी हैं।"

राणोजी बोला—"मशालें लेकर रात में जंगलों में घूमना अब ठीक नहीं।"

आयदानजी बोला—"अब तक तो ठीक ही रहा। इस प्रकार घूमने से इस ओर सब दूर—यह भय छा गया है कि रात को जिंद की सवारी निकलती है। अब इधर प्रायः सभी गांवों में लोग शाम को जल्दी ही खा-पीकर घर के किवाड़ बंद कर लेते हैं।"

"राणोजी बोला—"ठीक है, पर इस गफलत में लोग कितने दिन रहेंगे। कभी कोई हिम्मत वाला इसको परखने भी तो निकल सकता है। साथ ही चौकियों के पहरेदार भी तो हैं और यह जिंद हर साल तो निकलते नहीं। इसी साल क्या हुआ ? यह सोचकर इसकी सभी ओर से

खोज खबर शुरू होगी—तब क्या होगा ?"

"और अब पानी का भी कुछ भरोसा नहीं। वह कभी भी बरसने लगेगा। आज ही सुबह कितने बादल थे पहाड़ी पर। पहाड़ी उनमें डूब गई थी। पास का आदमी भी नहीं दिख रहा था।

तभी कुछ और लोग खोह में उतरे। आते ही 'राम राम' की झड़ी लगी। सारे लोग बैठ गए। दो-चार मशालें रखकर बाकी सब बुझा दी गईं। तभी उनमें से एक ने बताया—"हम सीधे ही आ रहे थे। बीच में दो नालों के पास की चौकी पर पूछताछ हुई। बोला—क्या डाके डालोगे ? तब उसे समझाया कि आजकल रात को ये जो सवारी निकलती है वह क्या है—उसे देखने-परखने जा रहे हैं।"

यह सुनकर राणोजी जरा गंभीर बन गया—कुछ सोचकर बोला,—

"दोस्तों ! यदि कल-परसों की बात पक्की की गई और चढ़ाई करने का विचार किया तो हमारी सब तैयारी है क्या ?"

प्रीताजी बोला—"अभी कल-परसों ही ?"

राणोजी जरा कड़ककर बोला—"देखो जी, मनसूबा बात अलग है और प्रत्यक्ष युद्ध करना बात अलग है। मनसूबा आंकते वक्त हम सोचते हैं कि सभी-कुछ उसी के अनुसार होगा। पर ठीक चढ़ाई के वक्त क्या होगा, यह कहना मुश्किल है। शेर के शिकार की तैयारी करें तब कहीं एकाध छोटा जानवर हाथ लगता है। और सामना आदिलशाही की सेना से है—उसे धूल चटाएंगे, की बातें करना ठीक नहीं।"

सात-आठ जनों ने हुंकार भरकर, राणोजी का समर्थन किया।

राणोजी आवेश में आकर बोला—"पर दोस्तो ! एक बात ध्यान में रखो कि हममें एक बात ऐसी है जो उनके पास नहीं हैं।"

"वह कौन-सी ?"

क्षणभर रुककर राणोजी ने कहा—"हम सभी ने रायेरेश्वर के शिवालय में भगवान शंकर का फूल और बे-लपत्ती उठाकर कसमें खाई हैं कि हम अपने राजा का ईमान रखेंगे। इस आंचल में न्याय का, धरम का राज्य स्थापित करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। यह सही है कि नहीं ?"

सभी लोग गरज उठे—"हां, यह सब यही है।"

"पर उनके पास क्या है ? उनकी सेना के सभी आदमी किराये के टट्टू हैं। उनमें वह जिद्द, वह जीवन कैसे आ सकता है ? इसलिए बिना डरे हमें यह काम करना है। आवाज मिलते ही जिसे जितना हम सभी को तैयार रहना है। मेरे संकेत की काम दिया है उतना ही उसे करना है। अब और दिन बिताना ठीक नहीं। ये सात-आठ रोज बहुत मौके के हैं। कोई भी कहीं बाहर या दूसरे गांव को जाएगा नहीं।"

तभी राणोजी को बाहर फिर से किसी की आहट लगी, बोला—"कौन है, उधर ? देखो वहां बाहर है कोई।

"कहां कौन है ?"

सात-आठ लोग हाथों में मशाल लिए बाहर लपके तो देखा कि कोई एक आदमी कगार की ओर भागा जा रहा था। इन लोगों ने उसे पकड़ लिया।

डरा हुआ सुगमा दोनों हाथ जोड़कर बोला—"दादा मेरे, भाई रे, मैं पैरों पड़ता हूं। मैं तो इस जिद की सवारी की बात को देखने के लिए आया था।"

"ठीक है, पर तुझे भेजा किसने ?"

"किसी ने नहीं, मैं खुद ही आया था।"

क्षण भर राणोजी ने सोचा और बोला—"इसे मारो मत। इसके हाथ-पैर बांध लो और यहीं इसी खोह में इसे पड़ा रहने दो—हमारा काम होने तक।"

राणोजी ने आकोजी से पूछा—"कुछ समझे ?"

"क्या ?"

"यही कि अब देर नहीं की जा सकती—हमारी बात बाहर फूटने के पहले हमें अपना काम करना है।"

किला तोरणा—नरसी प्रभु देश पाण्डे गड़ देख रहा था। मुख पर चिन्ताओं की रेखाएं थीं। तभी वहां का कारखानीस आवेश के साथ बोला—"आप ही बता दें देशपाण्डे जी ! हम कितनी ही जल्दी क्यों न करें, उसका कुछ लाभ नहीं। खुद किलेदार को भी तो ध्यान देना चाहिए।

हमें खूब लगता है कि किले की मजबूती बढ़िया हो, यह किला बुलंद हो। पहले भी एक बार मेरे ही जीवट के कारण कानड़ी बेलदार आया था। उन्होंने सारा पत्थर बनाकर ढेर लगा दिया पर यह किलेदार उनकी रोज ठीक-ठीक मजदूरी ही नहीं देता। हार कर वे कारीगर वापिस चले गए।

मजदूरों की रोटी-रोजी की व्यवस्था नहीं है। आजकल नीचे से पहाड़ी चढ़कर मजदूर ऊपर आते हैं। तब तक दिन पहर भर चढ़ जाता है कुछ आराम कर काम शुरू करते हैं कि नीचे भागने की जल्दी! आजकल रात-बेरात जिंदों की सवारी की अफवाह क्या फूट रही है, कोई भी दिन डूबने पर ऊपर रहने को तैयार नहीं होता और उन्हें रोके भी तो किसके बल पर!"

इधर-उधर देखकर जरा धीमे स्वर में कारखानीस ने आगे कहा—"एक बात और भी है, समधीजी! बड़े अमीन की चौकी से थैलियां भर-भरकर आती हैं। वे सारी इनके पेट में उतर जाती हैं।"

"ऐसी स्थिति में आप ही बताइए हम क्या करें?"

"लगता है—यह किला ऐसा ही पड़ा रहेगा।"

"चारों ओर से ढहा इसका ढीला-ढीला रूप ऐसा पड़ा रहेगा—बड़े दरवाजे के सिर पर की पट्टी भी ढीली-ढीली है वह भी फिर से बनानी है। ये बड़े बुरुज, इन्हें उतारकर फिर से बनाना है, पर यह भी होना नहीं। इसे देखकर मन बार-बार कचोटता है..."

कारखानीस को बीच में ही ठोककर नरसी प्रभु ने पूछा—"समधीजी! मैं एक बात पूछूं तो आप सही-सही जवाब देंगे?"

"पूछो भी!"

"आपकी कितनी पीढ़ियां इस किले पर बीत गईं?"

"क्या बताऊं? हमारे पुरखे आपके पुरखे के साथ ही तो घाट चढ़कर ऊपर आए थे। आपके पूर्वजों ने नीचे वतन और जहांगीर पाई। हमारे पुरखों ने यहां किले पर काम पाया। यह कहानी ठीक यादवों के युग से चली आ रही है। आगे इन शाहियों के झगड़ों में इस किले की दुर्दशा हो गई, गढ़ बेबसाऊ हो गया। तो हमारे दादा भी नीचे उतरे थे।

आदिलशाही ने इधर कुछ इस ओर ध्यान दिया, तब हम फिरकर किले पर हाजिर हो गए।"

"फिर भी कारखानीस जी ! एक बात बताइए—आपका ईमान इस पुराने हमारे किले से है या इस डूबती-उतरती आदिलशाही या निजामशाही से है ?"

चकित होकर कारखानीस ने नरसी जी से कहा—"मैं इस प्रश्न को नहीं समझ सका।"

"वाह ! यह भी क्या कहते हो ! इसका तो मतलब बिलकुल साफ है। यदि इन किलों से, इस सारे आंचल से मुहब्बत करने वाला कोई उमदा आदमी आपसे आकर कहे कि जनाब आपकी किलों पर जो मुहब्बत है उसकी हम कदर करते हैं—यह लो ढेर-ढेर पैसा। हम आपको ही किलेदार बनाते हैं और अब इस किले को जैसा भी सजाना चाहते हो सजाओ तो आप क्या कहेंगे ?"

यह सुनते ही कारखानीस नरसी प्रभु की ओर क्षणभर अपलक देखता रहा और उसने उनके हाथ में अपना हाथ थामकर अपने मन के निर्णय पर मुहर लगा दी।

किलेदार शाही ठाठ की मसनद पर बैठा था—पास ही एक लौंडा हुक्का लिए खड़ा था। किलेदार ने उसे कहा—"हुक्का इधर ला।"

लौंडे ने हुक्का पास रखा और उसकी नली खान के मुंह में दी। उसे लेकर खान साहब हुक्का पीने लगे। मुंह से धुआं उगल रहे थे। तभी खिड़की से जोर से आंधी का झोंका आया। सारा धुआं खान के चेहरे पर छा गया। पास ही एक बागी खड़ा था।

उस ओर देखकर खान बोले—"गजब की आंधी है भाई जान ! और मुरशिद साहब को यही मौका मिला इन्तकाम के लिए।"

बागी झुककर बोला, "पता किसे था कि बीमार है। जब गुजर गए तब वहां के चौकीदार ने खबर दी।"

"वहां का चौकीदार काफिर ही तो है ?"

"हां, जी !"

"साले ईमानदार होते तो तीमारदारी करते मुरशीद साहब की।

खैर !"

"अब कब्र कहां बनाओगे ? दफन कहां करोगे ?"

"यहां किले पर ही क्यों नहीं लाते ?"

बागी धीरे से बोला—"क्या कहें हुजूर ! लाश बिलकुल सड़ गई है। बदबू आ रही है। इधर लाएं तो भी कुछ कठिन नहीं है। पर बली साहब जिस ठिकाने पर इतने दिन रहे, जहां इतनी जिन्दगी बसर की, जहां आखिरी सांस ली···।"

"क्या ! बहुत ठाठबाट से जनाजा निकालोगे ? ले जाओ भाई आदमी जितने चाहो—हां, देखना काम सब बखूबी ठीक होना चाहिए। हां, और एक यह भी ध्यान रखना किसी को भी यह पता न चले कि किले पर आदमी बहुत कम हैं और शाम तक सभी किले पर वापिस आ जाएं।"

बंदगी करते हुए बागी ने कहा—"जी, दफनाना हुआ कि जरा खाना-वाना खाकर सभी वापिस आ जाएंगे।"

"क्यों जी, बली साहब का ठिकाना क्या बहुत दूर है ?"

"नहीं जी, कानंदी-घाटी के पास की पहाड़ी के परे उतार पर गांव है।"

"तब तो बहुत दूर है। खैर जाओ।"

"ए सुनो तो—कहते हैं कि आजकल पहाड़ों पर रात को मशालें नजर आती हैं ? पर असल क्या माजरा है ?"

बागी [illegible]ड़ा-सा गया। कान पकड़कर बोला—"खुदा रहम करें। एकाध बार तो हमने भी देखी हैं। पहाड़ी की एक ओर से उठीं दूसरी ओर आसमान में जा छिपीं।"

"नमाज पढ़ते हो—पांचों वक्त।"

"हां, हां जी ?"

"तब ये जिंद क्यों जग उठे ? देखो जी, यह सब हमारे सिपाहियों के कानों पर न पहुंचे। वे कहीं सुन लेंगे तो यहां से भागकर ठीक बीजापुर जाकर ही दम लेंगे—बड़े बहादुर जो हैं !"

बागी बंदगीकर धीरे-धीरे पीछे हटकर बाहर आ गया और किलेदार के बाड़े की सीढ़ियां उतरकर किले पर छाए धुंध में छिप गया।

उन्नतीस

प्रातः काल का समय। छोटे सरकार ने घूमने के लिए घोड़े बाहर निकाले थे। उनके साथ तानाजी और चिमणाजी भी थे। पूना के पश्चिम की ओर कुछ खेत थे और उसके पीछे सूखी जमीन थी। उन खेतों में से घोड़ों को दौड़ाते हुए राजे जंगल में घुस गए और उधर से मुठा नदी के प्रवाह की ओर घोड़ों का मोर्चा घुमाया। प्रवाह में घोड़ों को उतारकर पानी दिखाया और पास ही के एक टीले पर खड़े होकर आंखों पर आड़ा हाथ रखकर दक्षिण की ओर भुलेश्वर की पहाड़ियों की ओर ताकने लगे।

बीते दो दिन से राजे चिन्तित थे। राणोजी की ओर से संदेश आया था कि प्रायः सभी तैयारी हो चकी हैं और अगले चार-छः दिन में हम काम पूरा करेंगे। आप चिन्ता न करें।

राणोजी ने यह अपनी ओर से कहला भेजा था। तब भी छोटे सरकार के मन को चिन्ताएं घेरे रहती थीं। एक को दूर करते तो दूसरी सामने आती।

कलेजे के टुकड़े के समान प्यारे मित्र मुहिम में जुटे थे। उन सभी ने रायेरेश्वर के शंभु महादेव का बेल निर्माल्य उठाकर सौंध खाई थी कि राजे आप यहीं रहें—हम या तो फतह करेंगे या स्वर्ग पहुचेंगे। हर प चिन्ता न करें, ऐसे जीवट के मित्र उधर शत्रु के साथ मैदानों पर लड़ेंगे और खुद लालमहल में छिपकर सुरक्षित रहें यह शिवाजी को ठीक नहीं लग रहा था।

नजर गड़ागड़ाकर राजे कोण्डाणा किले के पश्चिम की ओर की पहाड़ियों को देखते। पर धुंध ऐसी छाई रहती कि कहां जमीन खतम होती और कहां पहाड़ी शुरू होती, कुछ दिखता ही नहीं था। उस धुंध के परदे के पीछे राजा के सभी मित्र जीवट से तोरणा किला जीतने की शपथ लेकर उसके आसपास चढ़ाई करने की योजना कर रहे थे।

तभी राजा के मन में कुछ आया। एकाएक उन्होंने घोड़ों को लौटने का इशारा किया। सभी घोड़े पलटकर महल की ओर सरपट भागे। अचम्भे से तानाजी ने राजा की ओर देखा। राजा के पीछे दोनों तानाजी और चिमणाजी भी लौटे।

नगर का परकोट पास आते ही राजा ने लगाम खींचकर घोड़ों को धीमा किया और तानाजी से बोले, "भाई, हमें अभी ही निकलना होगा।"

"कहां ?" तानजी ने पूछा।

"तोरणा किले के पास आज ही हमारे मित्र चढ़ाई करने वाले हैं। वे सारे वहादुर हैं। उनका शब्द खाली नहीं जाएगा। राणोजी ! हमारे पिताजी, बड़े राजासाहब के कायदे में रहे हैं। वे अपने काम में ढिलाई करें, यह संभव नहीं। वे आज तोरणा किला ले ही लेंगे फिर भी उस बांके समय में हमें वहां पहुंचना ही चाहिए।".

घोड़े लाल महल के विशाल दरवाजे से भीतर घुसे। तभी शिववा को आऊ साहिवा की दासी चांगुणा, उन्हींकी प्रतीक्षा करती दिखी। शिवाजी घोड़े से कूदे तो मोतद्दार ने घोड़े की रास थामकर उसे पकड़ लिया। तब तक शिववा ने महल की सीढ़ियां चढ़कर चांगुणा के पास तक पहुंचकर उससे पूछा— .

"क्यों चांगुणा ! क्या बात है ?"

"कितनी [illegible] कर दी ? आऊ साहिबा आपकी बाट जोह रही हैं।"

आगे की कुछ सीढ़ियां चढ़कर राजे भीतर के दालान में पहुंचे। तभी आऊ साहिवा हाथ में एक चंदन की सुन्दर डिबिया लिए राजा के सामने आईं।

राजा ने झुककर चरणम्वंदन किया।

आऊ साहिवा ने उन्हें उठाया, उनके मुख पर हाथ फेरकर उसे चूम लिया और बोली—"आज सुबह की घुड़सवारी के लिए बड़े जल्दी ही निकल गए ? मैं तो तुम्हें बहुत सुबह से देख रही थी।"

राजे अस्वस्थ-से थे। बोले—"मैं आपके ही तो पास आ रहा था।" हँसते हुए आऊ साहिवा बोली—"बूझो तो, मैं आज तुम्हारे लिए क्या लाई

हूं।"

राजे जिज्ञासा से उस अनोखी डिबिया को देख रहे थे।

क्षणभर रुककर मां साहिबा ने डिबिया खोलकर उनके सामने कर दी। उसमें पंचधातु की बनी एक सुन्दर मुहर थी। राजे उसमें तराशे अक्षरों को पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। इतने में आऊ साहिबा ने उस मुहर के अक्षरों का कागज उनके सामने किया।

राजे कुतूहल से देख रहे थे—अष्टकोनी रेखाओं के बीच में सुन्दर अक्षरों में लिखा था—

प्रतिपच्चन्द्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववन्दिता।
साह-सूनोः शिवस्येषा मुद्रा भद्राय राजते॥

उसे पढ़कर राजा के मुख पर आनन्द उमड़ पड़ा। अपने संकल्प के इतने जल्दी मिले उस अति उत्तम शुभ शकुन को उन्होंने मस्तक से लगाकर ग्रहण किया और मां से बोले—"बहुत ही सुन्दर है, मां साहिबा!"

"शिऊबा! इसका अर्थ इससे भी सुन्दर है—यही सब तो हमारी इच्छा है—यह एक मन में संजोया स्वप्न है।"

"शुक्ल पक्ष के पड़वा के चन्द्रमा की लेखा के समान दिनों-दिन बढ़ने वाले तुम्हारे यश के सामने सारा विश्व नतमस्तक हो, तुम्हारा वह यश पावन और निष्कलंक हो, सभी का कल्याण करने वाला हो, मंगलमय हो।"···आगे के शब्द मां के गले में ही रुंध कर रह गए। तब तक राजा ने फिर से मां का चरण-स्पर्श कर उस मुद्रा को मस्तक पर धारण किया और बोले—"आऊ साहिबा! आपका यह आशीष हमारे लिए आज्ञा है। ऐसा हम मानते हैं और आज ही इसकी तामील की इजाजत चाहते हैं।"

आऊ साहिबा ने जानना चाहा, बोली—

"किस चीज की इजाजत—इतनी कौन-सी बड़ी बात है?"

"मां! दौलतबंकी राणोजी, तोरणा किले की व्यवस्था में अकेले ही हैं, तब मुझे घर बैठना ठीक नहीं लग रहा है।"

राजा के मन की इच्छा और भाव पढ़कर आऊ साहिबा का मन भी भाव-विभोर गया—बड़े जतन से उन्होंने मन को रोककर शिवबा के मस्तक पर हाथ रख कहा—

"यह सोचना, करना आपके पिता की रीति-नीति के अनुसार ही है। उनका घोड़ा हमेशा सेना की अगली पंक्ति में ही दौड़ता दिखता है। पर सम्भलकर साहस करना ही चाहिए। यह हम भी चाहते हैं। उसमें अविचार न हो।"

तानाजी की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "तानाजी ! आज इतने दिनों तक मां की ममता के आंचल के नीचे पला यह छोटा राजा, आज शत्रु से जूझने निकला है।"

स्वाभिमान से तानाजी बोला—"मां साहिबा ! किसी बात की चिन्ता न करें, मैं साथ हूं—शत्रु के हर घाव को आगे बढ़कर मैं अपनी छाती पर लूंगा।"

प्रहर भर में राजा के साथ पचास हथियारबंद, घुड़सवारों की टोली लाल महल के विशाल तोरण-द्वार से बाहर निकल पड़ी, तभी दादोजी ने राजा से कहा—राजे ! सुनो। हमें साथ आने दीजिए—मैंने भी बड़े राजा साहब के साथ युद्धों में तलवार चलाई है।"

राजा ने मस्तक नवांकर दादोजी की बात सुनी और उसी स्थिति में उनसे कहा—"दादोजी ! आज आपका केवल आशीर्वाद चाहिए। इससे बढ़कर हमें दूसरा बल नहीं—उसके बल पर हम निश्चित ही विजयी होकर आएंगे"—

यह कहते-कहते ही राजा ने घोड़ी को इशारा किया और देखते-देखते टप-टप-टप [illegible] घाड़ गांव से बाहर निकल गए···

[illegible]ड़ी ही देर में घोड़े कायज की घाटी चढ़ने लगे।

आंधी के रुक जाने के बाद भी पहाड़ी की घाटियों में धूल की धुंध-की-धुंध छाई थी। उस धुंध में भी पेड़ की आड़ में छिपे जुगनू ने देखा कि किले से पांच-पचास सैनिक गप्पें लड़ाते हुए उतरकर दूसरी घाटी चढ़ गए। यह खबर लेकर वह भागता हुआ उसी खोह में पहुंचा। राणोजी ने पूछा—"यह फकीर कौन-सा ? कोण्डाना किले के दर्रे के पास वाले मजार का तो नहीं ?"

"वही जी, वही।"

राणोजी खोह के बाहर आया।—दिन कितना बाकी है, इसका कुछ

अंदाज लिया और भीतर लौटकर मित्रों से बोला—

"मुधोजी ! ईश्वर का स्मरण करो और अब उठो। दिन सिर पर चढ़ा आ रहा है। ये किले के सिपाही उस दर्रे तक पहुंचेंगे उस फकीर को दफनाएंगे—उसकी कब्र पर पत्थर रचेंगे, तब तक दिन डूब जाएगा और इतने अंधेरे में उनकी किले पर लौटने की हिम्मत होगी नहीं।"

"और यदि लौटे तो !"

"अरे मर्दो ! यह धुंध आज छटती नहीं। उनके ऊपर आने के पहले हम किले पर होंगे फिर क्या होगा ? जानते हो ?"

"क्या ?"

"हम ऊपर होंगे—हम मौके की जगह पर होंगे—ये नीचे से चढ़ते रहेंगे, थके, हांपते—उन्हें ढेर करना क्या मुश्किल ! अब निकलो दिन कुछ-कुछ डूबने को होगा। तभी हर हर महादेव करते हुए बड़े दरवाजे से भीतर घुसना है। तभी बाकी की टुकड़ियों को चारों ओर से किले पर चढ़ना है। पश्चिम की ओर से आतकर बाड़ी के लोग चढ़ेंगे, कोंकणी दरवाजे से नीचे के लोग चढ़ेंगे और हम सभी बड़े दरवाजे से घुसेंगे। ठीक ? यह सब तय हो गया। अब खबर तेने वालों को पहले जाने दो। एक पहर के भीतर सभी टुकड़ियों को पूरी तरह योजना और खबर मिल जानी चाहिए। इसमें जरा भी गलती नहीं होगी भी तो यहां क्षमा नहीं हुआ करती।"

आतकर बाड़ी तोरणा किले के पश्चिम में है। इस किनारे होकर ही एक रास्ता उतरकर कोंकण की ओर उतरता है। गांव से कुछ ऊपर [illegible] के पेड़ों की घनी राई थी। पांच सौ के करीब पेड़ थे। यहां गांव के ढोर आकर बैठते और जुगाली करते। धुंध से यह राई भी ढक गई थी। कहीं जरा-जरा धुंध छटती तो राई के पेड़ों के सिर दिखते, उस के नीचे बैठे ढोर दिखते। एक पेड़ के नीचे मुधोजी खड़ा था। साथ में हथियार थे। बाड़ी का एक-एक मर्द उसके सामने आकर खड़ा हो रहा था। वह भी एक-एक की की पूरी पूछताछ कर रहा था। उसने पूछा—"सर्फूजी नहीं आया ?"

"आ रहा है। वही तो सबको आवाज देकर घर के बाहर निकाल

रहा है।"

"और गणूजी ?"

"उसे पैरों में लगी जो है। सर्फूजी ने उसे आने रोक दिया है।"

"तब ?"

"अजी, वह रुकने वाला है ! वह पहले ही घर से निकल कर रास्ते में दूर जा बैठा है।"

तभी एक-एक कर कितने ही मर्द आ-आकर जमने लगे। साथ सर्फूजी भी था।

मुधोजी ने पूछा—"सर्फूजी, बहुत देर हो गयी ?"

"अरे, ये बूढ़े लोग हों तो परेशानी, न हों तो भी परेशानी। शिरीपत बाप को पूछने गया तो उसने उसे छाती से लगा लिया और लगा रोने, जैसे कोई मर गया है। कहने लगा—घर के एकलौते हो, तुम ही जाओगे तो घर किसके लिए। तभी उसकी मां आई। उसने उसे अलग किया। बोली—सारा गांव किले के लिए लड़ने जा रहा है और मैं बच्चे को मुर्गे के पिल्ले का-सा दड़बे में रखूंगी ? तब शिरीपत हाथ में आया, ऐसा ही चल रहा है—किसी का कुछ, किसी का कुछ—"

"खैर ठीक है। सबके पास हथियार तो हैं ?"

"हैं तो।"

मुधोजी हर एक के पास जाकर एक-एक को देख रहा था। "अरे गंगूजी, यह तलवार है ? इससे तो केले का ठूंठ भी नहीं उतरेगा।"

अनसुनी कर गंगू बोला—"अजी धार की क्या जरूरत ? ऐसे जमकर सिर पर दूंगा कि साला वहीं ढेर हो जाएगा।"

"और संभाजी, तेरे पास है तलवार ?"

"नहीं, यह जो है।"

"यह क्या ? यह तो बल्लम है।"

"इसी से लड़ूंगा—एक-एक के सिर पर दूंगा—देखो तुम, पीछे नहीं हटूंगा।"

तभी मुधोजी ने ऊपर देखा। बोला—"अभी दिन डूबने को पहर भर बाकी होगा। अब हमें निकलना चाहिए।"

उसने एक बार सर्फूजी को पूछा—"क्यों, सभी आने वाले आ चुके हैं ?" उसने उत्तर दिया, "हां ! आ ही गए हैं।"

मुधोजी ने आसामी गिनने को कहा। एक बार गिने तो पचपन थे। मुधोजी ने गिने तो अठावन बने। बार-बार गिनते। एकाध संख्या नयी आती। मुधोजी ने कहा—"छोड़ो, हमने पचास की बात कही थी। पचास से ऊपर ही हैं।

"नहीं जी, सात-आठ ज्यादा ही हैं।"

"गुनोजी—जो आगे जाकर बैठा है।"

"ठीक करो रे, ईश्वर का सुमिरन और चलो।" तभी एक ने कहा—"चिल्ला क्यों रहा है ?"

मुधोजी ने कहा—

"जरा, मेरी ओर ध्यान दो। सभी जरा भी न बोलते हुए मेरे पीछे चुपचाप चलेंगे। होशियारी से चलो। आगे हमें सपासप कगार चढ़नी है।" सभी ने हुंकार दी।

"अब चलो।" कहकर मुधोजी आगे बढ़ा। उसके साथ सारे मावले चलने लगे।

पेड़ों के झुरमुटों में से वह लठैतों की टोली पहाड़ी से सटकर चुप-चाप जा रही थी। जरा भी आवाज नहीं। जरा-सी भी आहट किए बिना ये सारे ही बंदरों-सी फुर्ती से कगार चढ़ रहे थे।

तोरणा किला। कारखानीस घर में चिन्ता में बैठा [illegible] किले के शिवालय की पूजा करने नीचे से जोशी आया करता। वह आज [illegible] आया नहीं। वह कुछ सोचकर उठना ही चाहता था—तभी जोशी आया। दोनों की चुप-चुप बातचीत हो रही थी। आज होने वाली घटनाओं की सूचनाएं वह उसे दे रहा था। तभी किसी की आहट आई—जोशी ने जल्दी अपनी बात समाप्त की और वह चला गया।

अब कारखानीस का मन अधिक अस्वस्थ हो गया। किले पर धुंध अधिक हो रही थी। हाथ भर दूर की चीज दिख नहीं रही थी। दोपहर में भीतर से भोजन का बुलावा आया तब चार कौर खाकर खाना समाप्त

किया। वह फिर से अपनी बैठक में आ बैठा। तीसरे पहर तक वह ऐसे ही पड़ा रहा। तभी उसे किलेदार की ओर से बुलावा आया, उसने कहला भेजा कि—हजरत को आदाब अर्ज फर्माकर कहो कि दीया-बत्ती हो जाने पर हाजिर हो रहा हूं।"

जैसे-तैसे दीया-बत्ती का समय हुआ। कारखानीस अपने देवघर में गए। वहां स्थापित कुल-देवता के सामने शान्त दीप जल रहे थे। कुल-देवता को नमस्कार कर मन की सारी दुश्चिन्ताएं उन्हें समर्पित कर—साहस से वह बाहर आया। रास्ते से चलते हुए उसे बाले किले के दुतर्फा घर दिख रहे थे। वहां से निकलकर वह नीचे उतरा। अब किले के लोगों का आना-जाना कम हो गया था। फिर भी एक-दो लोग मिल ही गए। उन्होंने उसे आदाब अर्ज की और वे आगे बढ़ गए।

कारखानीस किले के दरवाजे तक पहुंचा। वहां रोज बीस सैनिकों का पहरा रहता था, पर आज उनमें से आधे से अधिक नीचे वली को दफनाने गए हुए थे। यह शकुन है या अपशकुन है—यह कारखानीस सोच रहा था। पहरेदारों ने उसे सलाम किया। पर आज उस ओर उसका ध्यान था ही नहीं। कुछ देर वहां ठहरकर कारखानीस लौटा। जीना चढ़कर पास के बुरुज पर पहुंचा। वहां से उसने नीचे देखा। आज वहां से उसे नीचे कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। धुंध ने नीचे की सारी सृष्टि छिपा दी थी। आज नीचे की झाडियां-पगडंडियां, गांव, छोटी पहाड़ियां, सभी-कुछ उस धुंध में [illegible] गया था। वहां से किले के दरवाजे के बाहर खड़े प[illegible] के हाथ में कड़ावीन के लिए जलते तोड़े उस धुंध में जुगनू के-से चमक रहे थे। उनकी आपस की बातें भी आज ऊपर तक पहुंच नहीं रही थीं। धीरे-धीरे काला अंधेरा उस धुंध पर छाने लगा। कुछ ही देर में किले से नीचे की ओर काला दरिया उतरने लगा। कारखानीस उसमें खुद खोने लगा। उसकी सुध-बुध जाती रही। वह ऐसी ही स्थिति में कुछ देर तक रुका रहा। तभी उसे तलहटी में कुछ आहट आती-सी लगी। वह एकदम सजग हो गया। उस अंधेरे में भी रोजकी आदत के अनुसार जीना उतर-कर किले के दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया—दरवाजे के पीछे से आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। बाहर के लोग कह रहे थे—

"कारखानीस के पास काम है जी !"

और उन्हें बाहर के पहरेदार डांट रहे थे। कह रहे थे—"जहन्नुम में गया काम, अब इस वक्त दरवाजा नहीं खुलेगा।"

यह सुनते ही कारखानीस के तन-बदन को जैसे बिजली छू गई। स्फूर्ति से कारखानीस ने दरवाजे की सांकल को खोलने के लिए हाथ लगाया। तभी पहरेदार जरा सहमकर तलवार खींचता हुआ बोला—"जी, मालिक ! आप ! ठहरिए। मैं खुद खोल देता हूं। पर बाहर है कौन ?"

कारखानीस उसी आवेश में जोर से बोला—"खोलो।"

इस कड़कती आज के साथ ही दरवाजे की अर्गला खण-खणाती अलग होकर लटकने लगी। साथ ही बाहर की भीड़ की धकापेल से दरवाजा करकराता खुल गया। और साथ में 'हर हर महादेव' करते हुए शिवाजी के लोग भीतर घुस पड़े।

क्षण भर में उस दरवाजे में ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। बाहर खड़े पहरेदारों पर, उनकी कड़ाबिनी और उनके जलते तोड़ों पर बांस के डण्डों की ऐसी घात पड़ी कि दोनों पहरेदार क्या हो रहा है यह सोचते, तब तक उनकी कड़ाबिनी, उनके तोड़े, उस अंधेरे दरिया में कहीं-के-कहीं खो गए।

भीतर घुसती भीड़ की धकापेल में भीतर के पहरेदार घबड़ा गए। उन्हें उनके शस्त्र उठाने तक की फुर्सत नहीं मिली। कुछ पहरेदार-सांकल लगाकर दरवाजे को फिर से बन्द करने का प्रयत्न करने लगे। सभी चिल्ला रहे थे। तभी एक पहरेदार दौड़ा-दौड़ा सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गया और धोखे की सूचना देने के लिए—घंटा ठोकने लगा। उस आवाज को सुनकर किला मानो सोते से जग उठा। जो उठा, वही शस्त्र ले-लेकर, किले के दरवाजे की ओर भागने लगा। अब तक कितने ही लोग आ चुके थे। अब भीतर के पहरेदारों को हिम्मत आ गयी—और सब जोर से चिल्लाकर भीतर घुसे लोगों की मार-काट करने लगे।

घुसनेवालों की 'हर हर महादेव' में भीतर वालों की 'या अलि मदद', 'दीन दीन', आवाजें खो रही थीं।

बाहर से भीड़ बढ़ती जा रही थी तभी सात-आठ हशम दौड़कर दरवाजे के बुर्ज पर चढ़ गए और वहां रखे बड़े-बड़े पत्थर नीचे की भीड़

पर लुढ़काने लगे। उन्होंने लुढ़कते हुए कुछ मावलों को भी साथ ले लिया था। इस मार को देखकर बाहर फैले हुए मावले दरवाजे की ओर भिड़ गए।

इन सभी में राणोजी बड़ी ही वीरता से आगे बढ़कर दरवाजे के रास्ते को साफ करने के लिए आगे बढ़ रहा था। उसे देखकर मावलों को जोश चढ़ रहा था। वे उसे पीछे कर खुद आगे बढ़ रहे थे। बाहर के कुछ मावले तटबंदी से ही बुर्ज पर चढ़ने के प्रयत्न करने लगे। ऊपर खड़े मुसलमान पहरेदार उनकी उस जीवट और बन्दरों-सी छलांगें और फुर्ती को देखकर दंग हो रहे थे। उनके भाले उन मावलों को छेदें, तब तक कुछ मावले उधर-से-ऊपर ही चढ़ गए। किले के सैनिकों की तलवारें नयी थीं, तेज थीं। उनके आगे इन टूंटे लोहों से लड़नेवाले मावलों की केवल छातियां लड़ रही थीं—सारा दरवाजा खून के कीचड़ से लथपथ हो गया—तभी राणोजी चिल्ला उठा—"शाबाश रे, मां के पूतो ! एक बार और बढ़ो—चलो। बोलो—'हर हर महादेव'।"

राणोजी अपनी मजबूत ढाल को आगे कर पहरेदारों को काटता हुआ आगे बढ़ा, पर भीतर वालों को अब तक नयी कुमक मिल चुकी थी। उनका जोर बढ़ रहा था।

अब तक किलेदार के लोग कड़ाविनी वाले मौके पर पहुंच चुके थे। वे अपनी कड़ाबीन को ठासते हुए दरवाजे की ओर बढ़ रहे थे।

दरवाजे [illegible] खड़ा कारखानीस मावलों की हिम्मत देखकर दंग रह [illegible]या। साथ ही उनका जोश कम होता देख मनमें घबरा भी रहा था। तभी उस घने अंधेरे में से सत्या और उसके सात-आठ साथी उस दरवाजे के पास आए और दिण्डी में से भीतर घुसे। अन्दर आते ही सत्या ने चौड़े पाने की तलवार से और लपलपाते पट्टे से ऐसा चक्र चलाया कि मशालों में केवल पट्टे की लपलप ही दिख रही थी। इस चक्र में पड़कर कितने ही हशम ढेर हो गए। तब तक सत्या के साथियों ने महाद्वार की बड़ी अर्गला खोल दी और किले का महाद्वार खुल गया। उसे देखकर 'हर-हर महादेव' की घोषणा करते हुए मावले किले में घुस गए। तभी राणोजी को घोड़ों के टापों की टप्-टप् के साथ घोड़ों की फूंकार और हुंकार सुनाई

दी। वह अचरज से नीचे देखने लगा। उसे छटती धुंध में खिंची तलवारें हवा में उछालते हुए पचास घुड़सवारों की टोली मशालों के प्रकाश में ऊपर चढ़ती दिलाई दी। उसे देखकर राणोजी आनन्द से विभोर हो गया और चिल्लाकर बोला—

"अरे मेरे दोस्तो ! खुद छोटे सरकार आ रहे हैं। वे ऊपर आएं, इसके पहले यह दरवाजे का रास्ता साफ करना है। बोलो—हर हर-महादेव।"

इसे सुनकर लड़ते जवानों में जोश भर गया। आवेश में भरकर उनके लोहे चलने लगे। जो सामने आया उसे जमीन पर काट कर गिरा दिया। उस आवेश से घबराकर भीतर के सैनिक पीछे मुड़कर भागने लगे। उनके पीछे भागते मावलों ने मुर्दों का ढेर कर दिया। वहां की जमीन पर खून का कीचड़ बन गया था।

अब तक छोटे सरकार और उनकी वह टुकड़ी दरवाजे तक आ पहुंची थी। उनके साथ तानाजी, चिमणाजी और अनेक थे। उन सभी को देखकर राणोजी ने सिर झुकाकर मुजरा किया और बोला—"दरवाजा साफ कर दिया है। पधारिये।"

सभी एक साथ भीतर घुसे। बाले किले की चढ़ाई चढ़ रहे थे। तब तक उधर से भी 'हर हर महादेव' की घोषणा सुनाई दी। आतकर वाड़ी के जवान बुधला माची की ओर से कगार चढ़कर आए। उन्होंने बाले किले के हशमों को काटकर किलेदार को गिरफ्तार कर [illegible] किया [illegible]। उसे बांधकर वे इधर ही ला रहे थे। किलेदार चकित था। वह अपनी [illegible] में हाथ भर-भरकर बुदबुदा रहा था—"कहर ढा दिया—गजब ढा दिया, इन कमीनों ने।"

पर राजा के दर्शन के कारण आनन्द विभोर मावलों की 'हर हर-महादेव' की घोषणा में उसका बुदबुदाना उसके कानों तक भी नहीं पहुंचने दिया।

तीस

प्रातःकाल होने के पूर्व ही सारा किला मराठों के हाथ में आ गया था।

पूर्व में सूर्य उगा। उसने देखा—कल तक जिस ध्वज-दण्ड पर हरा निशान फड़फड़ा रहा था, वहां आज करीब तीन सौ-साढ़े तीन सौ वर्षों बाद इस और इसी माटी के सपूतों का भगवा ध्वज ऊपर उठ रहा था। उस ऊपर उठते भगवे ध्वज के साथ ही दुंदुभी बज उठी। सारा आसमान उस मंगल ध्वनि से आनन्दित-पवित्र हो गया।

किले की तटबन्दी के पास दोनों ही पक्षों के मृत सैनिकों के शव रखे थे। एक ओर मुसलमानी हशमों के शव थे। दूसरी ओर मराठा शहीदों के शव थे। छोटे सरकार वहां पहुंचे। उनका मुख उन शहीदों को देखकर मुरझा गया, पर क्षण भर ही। दूसरे क्षण उनका सीना फूल उठा। मुख गौरव से दमक उठा। उन्होंने उसी स्थिति में दोनों ही पक्षों के मृतों को माथा नवाकर अपना आदर दिया।

क्षण भर मौन रहकर चिमणा देशपाण्डे की ओर मुड़कर, राजे बोले; "इन हशमों को दफनाने की व्यवस्था करो। जो मावले इस स्वराज्य के लिए आज खप गए, इनके घरों पर ढाल भर-भरकर होन पहुंचाने की व्यवस्था करो।"

[illegible] यह सब व्यवस्था हो रही थी, तभी किले के दरवाजे के पास [illegible]सवली के पीर को दफनाकर, मस्जिद में रात भर मौज-मजा उड़ाकर सुबह लौटे आदिलशाही हशमों को गिरफ्तार कर लिया गया था। उनके हथियार छीन लिए गए थे, और उन्हें एक कतार में एक ओर खड़ा कर दिया गया था।

राजे उधर पहुंचे। उन्होंने उन हशमों को कहा—

"तुमसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। हम तो इस मुल्क की आजादी चाहते हैं। तुम यदि इसमें हाथ बंटाना चाहो—ईमानदारी से इस मिट्टी को, इस मुल्क को अपनाना चाहो—तो हमारी फौज में आ सकते हो।

नहीं तो वापिस बीजापुर जा सकते हो।"

यह सुनकर, उनमें से बहुतों ने राजा की बात स्वीकार की और उन्होंने बंदगी कर राजा की नौकरी स्वीकार कर ली। राजा ने तानाजी की ओर मुड़कर कहा—

"राव, इनकी व्यवस्था करो।"

अब तक कारखानीस राजा की यह सब व्यवस्था कौतुक से देख रहा था। उस ओर मुड़कर राजे उससे बोले—

"तात्याजी! आज आपने जो कुछ किया, वह इस स्वराज्य के कार्य में मंजूर हो गया है—आपके कार्य की कीमत नहीं हो सकती। पर फिर भी हम चाहते हैं कि आप इस किले के साथ रक्त से जुड़े हों। आपका ईमान इस स्वराज्य के साथ इसी प्रकार जुड़े। इसी गरज से आपको इस किले की किलेदारी भी दे रहे हैं।"

सत्या बरेड़ ने कभी ऐसा धनी, ऐसा व्यवहार, मनसूबा देखा नहीं था। वह यह सब तमाशा आवाक् देख रहा था। उस ओर बढ़कर राजा बोले—"नाईक जी! आपकी हिम्मत पर्वतों-सी अडिग है, अभेद्य है। आज आपने जो तेज दिखाया वह बेजोड़ था। आपको क्या दूं?"

सत्या ने हाथ उठाकर कहा—

"रे राजा! मैं इस जंगल का राजा हूं। आज यहां, कल वहां। मेरा क्या! मैंने सुना तुम कुछ छोटे-छोटे किला स[illegible] किले हो तो मैं भी मौज से आ मिला—और यह दरवाजा खाली कर दिया, [illegible]"

राजा ने सत्या के उसी उठे हाथ को थाम लिया, बोले—"न[illegible] नाईक! आज आपने कौन-सा दरवाजा खोला है, आप शायद नहीं जानते।"

यह कहते-कहते राजा ने अपने गले का मोतियों का कण्ठा निकाला और सत्या के उस बलिष्ठ बाहू की कलाई में लपेट दिया। बोले—"यह हमारी याददाश्त अपने पास रहने दीजिए। और फिर भी कभी हम छोटे लोग ऐसा कोई अचरज का काम करने निकलें तो आप हमारी मदद को आएंगे?"

आनन्द से विभोर सत्या उस कण्ठे को अपने गले में पहनते हुए बोला—"जरूर! जरूर! मैं हाजिर रहूंगा।"

अब वे राणोजी की ओर मुड़कर उसके जखमों को छूते हुए बोले—"दौलतबंकी, तुम्हारा गांव इसी किले के आंचल में आता है।"

"जी।"

"कानन्द-घाटी में शिवालय की मस्जिद बनायी गयी है। उसे फिर से शिवालय में बदलने का हुकुम दे रहा हूं।"

इस पर राणोजी का मन गद्‌गद् हो उठा।

बोला—"सरकार! इससे बढ़कर आज किसी भी चीज की इच्छा नहीं। आपने बहुत दिया।"

पास ही शिदबा महार कुछ कहने को था। उसे देखकर राणोजी ने उससे पूछा—"नाईक, तुम्हें कुछ कहना है?"

तब वह आगे बढ़ा। झुककर उसने राजा को जौहार किया और अपनी पगड़ी में खौंसी गांठ में से कुछ खोलते हुए बोला—

"छोटे सरकार! मेरा नाम बाबा के नाम पर रखा गया है, तब मुझे उसका काम पूरा करना ही चाहिए। मेरे उसी बाबा से घर में यह होन है। यह शंभू महादेव का होन है। आज के इस स्वराज्य के तोरण-द्वार पर आपको यह नजर कर रहा हूं।" कहकर वह उस होन को राजा के पैरों के पास रखने लगा।

राजा [illegible] बीच में थाम लिया। उसे गले लगाया और उस होन को [illegible] वह विजयनगर के प्रतापराय देव का होन था, उसके एक ओर शिवपार्वती की प्रतिमा उभरी हुई थी।

सूर्य की प्रथम किरण उस पर पड़ी तो वह होन चमक उठा। उन्होंने अत्यन्त भक्ति-भावना से उस होन को सिर-माथे लगाया।

वहां खड़ी जनता के मुख से अनायास ही 'हर हर महादेव' का जय-घोष फूट पड़ा।

●●●